226.1
नागा। सि

सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्

एस० एन० खण्डेलवाल

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२७७

सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्

(सिद्धनागार्जुनकक्षपुटम्)

हिन्दी०व्याख्योपेतम्

हिन्दीव्याख्याकार
एस० एन० खण्डेलवाल

सम्पादक
डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
साहित्य-आयुर्वेद-ज्योतिष-आचार्य
एम. ए., पी-एच्. डी., डी. एस-सी. ए-वाइ.

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वा रा ण सी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन
पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३३३४३१

226.1
नागा।सि

[redacted]

सर्वाधिकार सुरक्षित

थम संस्करण १९९६ ई०
मूल्य ७५-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर
पो० बा० नं० २११३
दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

मुद्रक

फूल प्रिण्टर्स

वाराणसी

भूमिका

'सिद्धनागार्जुन-कक्षपुटम्' के रचयिता नागार्जुन के सम्बन्ध में अनेक मतभेद परिलक्षित होते हैं। कश्मीर के बौद्धधर्म-प्रचारक राजा नागार्जुन, बोधिसत्त्व नागार्जुन, सिद्ध नागार्जुन ही नहीं, प्रत्युत जैन नागार्जुन का भी उल्लेख ग्रंथों में मिलता है। परन्तु इस ग्रंथ के प्रणेता निर्विवाद रूप से चौरासी सिद्धों की परम्परा में अंकित तथा नाथसिद्धों द्वारा मान्य सिद्ध नागार्जुन ही हैं, जो बौद्ध अथवा जैन न होकर आगमिक एवं यौगिक परम्परा की मान्यताओं का वरण कर इस ग्रंथ के रचयिता के रूप में सदियों से प्रसिद्ध रहे हैं।

यह तथ्य ग्रंथ में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ग्रंथकार ने मंगलाचरण-प्रसंग में सर्वप्रथम 'नित्यपदार्थाश्रय' तथा 'संकल्प-संकोचक' परमशिव की वन्दना की है। ग्रंथ में सर्वत्र भैरव, शम्भुदेव तथा शिव का उल्लेख मिलता है। इन सब से यह स्पष्ट होता है कि सिद्धनागार्जुन पूर्णतः भारत की सिद्ध आगमिक परम्परा के अनुयायी रहे हैं।

ग्रंथकार एक अन्वेषक तथा संकलनकर्त्ता थे। यह ग्रंथ स्वतंत्र लेखन न होकर उस समय की तांत्रिक प्रक्रिया, तांत्रिकों के उपदेश, जन-जातियों तथा वनवासी लोगों में प्रचलित तांत्रिक प्रकिया, विभिन्न तांत्रिक ग्रंथों में वर्णित प्रयोग और परम्परागत प्रचलित तांत्रिक उपाय एवं जड़ी-बूटियों के मन्त्रात्मक प्रयोग का संकलन है। तन्त्र किसे कहते हैं, इसका निदर्शन वाराहीतन्त्र में विशद रूप से मिलता है। उसमें सृष्टि, प्रलय, देवपूजन, साधन-पुरश्चरण विधि, षट्कर्मसाधन तथा चतुर्विध ध्यानयोग का संकलन रहता है। अति उन्नत तन्त्रों में सर्ग-प्रतिसर्ग, यन्त्र-निर्णय, देवस्वरूप-संस्थान, तीर्थ-आश्रम धर्म, विप्र एवं भूत संस्थान, देवोत्पत्ति, कल्पतन्त्र, ज्योतिःसंस्थान, पुराण-आख्यान, कोषवर्णन, व्रत-शौचाचार, नरक एवं हरचक्र वर्णन, स्त्री-पुरुष लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म-व्यवहार, अध्यात्मतत्त्व अंकित रहता है। प्रथम विवरण उपतन्त्रों का है। द्वितीय विवरण है—तन्त्रशास्त्र का। इस कसौटी पर यह प्रस्तुत ग्रंथ उपतन्त्र तथा तन्त्र, दोनों की परिभाषा में नहीं आता। इतने पर भी इसकी उपयोगिता को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि इसमें तन्त्र के अतिस्थूल रूप षट्कर्म के अतिरिक्त अनेक औषधि-प्रयोग से सम्बन्धित उपाय वर्णित हैं, जो लोकहितकारी तथा लाभकारी हैं। इस दृष्टि से यह ग्रंथ एक उत्तम संग्रह-ग्रंथ का रूप लेता प्रतीत होता है, यह निर्विवाद है। ग्रंथकार प्रथम पटल में कहते हैं कि 'इस विस्तीर्ण भूमण्डल में विद्यासिद्धि के अनेक स्वरूप हैं। जैसे दूध का सार घृत है, उसी प्रकार मैंने विभिन्न तंत्र-ग्रंथ, अनुभवी तान्त्रिकों की स्वानुभूति, लोकोक्ति तथा प्रचलित

मान्यताओं का मंथन करके इस क्षेत्र के सारभूत अंश को ग्रंथ में प्रस्तुत किया है ।'

इस सन्दर्भ में नागार्जुन उस समय प्रचलित अनेक ग्रंथों का नामोल्लेख करते हैं । उनमें से शांभवतन्त्र, यामल, कौल, कौलेय, काकुल, शौच, राज, अमृतेश्वर, उच्छिष्ट, किंकिणी, कालचण्डेश्वर, रौद्र, अनुग्रह, निग्रह, शाल्य, हरमेखलक तथा गारुड़ तन्त्र पूर्णतः एवं अंशतः लुप्त हो चुके हैं । यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि ग्रंथकार ने चार्वाक नामक आगम का भी उल्लेख किया है—

'आथर्वणे महावेदे चार्वाके गारुडेऽपि च ।
इत्येवमागमोक्तञ्च……………………' ।

(प्रथम पटल ९।१०)

यह आश्चर्य का विषय है !

ग्रंथकार जिन तन्त्र-ग्रंथों का उल्लेख प्रथम पटल में करते हैं, उस काल में इनके अतिरिक्त भी अनेक तन्त्र प्रचलित थे, तथापि उनका लेखन नहीं हुआ था । वे परम्परागत रूप से गुरु द्वारा शिष्य को सुनाये जाते थे । ग्रंथकार ने उनका भी अध्ययन किया था । इसके लिए उन्होंने कोई एक निश्चित गुरु की शरण न लेकर अनेक गुरुओं का आश्रय लिया । यही कारण है कि वे किसी एक निश्चित गुरु की वन्दना न करके, विशुद्ध आगमिक परम्परा का आश्रय लेकर परमगुरु (गुरुओं के गुरु परमशिव) की वन्दना करते हैं ।

ग्रन्थकार ने प्रथम पटल में जिन तन्त्र-ग्रन्थों का संकेत दिया है, उनकी संख्या अधिक नहीं है । वे मात्र ३२ ग्रन्थ हैं । प्रतीत होता है कि उनके समय में उन ग्रन्थों का लेखन नहीं हुआ था, जो परवर्त्ती काल में लिपिबद्ध हुए थे । उस समय वे शास्त्र गुरुमुख में विद्यमान थे, जिनका उपदेश गुरुजनों से शिष्यों को आनुश्रविक रूप से प्राप्त होता था । उदाहरण के तौर पर आठवीं-नौवीं शती में उपलब्ध अनेक शैव-शाक्त तन्त्रधाराओं का नामोल्लेख उनके ग्रन्थ में नहीं है, परन्तु उनमें प्रतिपादित प्रयोगों की झलक इस ग्रन्थ में प्राप्त होती है । इन धाराओं के प्रयोगों का ज्ञान परम्परागत रूप से ग्रन्थकार को मिला था । इससे यह धारणा की जा सकती है कि ग्रन्थकार का काल आठवीं शती से भी पूर्व का हो सकता है । प्राचीन परम्परा यह रही है कि सिद्ध-विद्या युक्त शास्त्र तथा सिद्ध पुरुष देश-काल की सीमा से परे माने जाते हैं । अतः इन्हें देश-काल आदि से रंजित परिच्छिन्न दृष्टिकोण से देखना और उनकी प्रामाणिकता प्रतिपादित करना उचित नहीं माना जाता । उनके द्वारा उपदिष्ट प्रयोग एवं विधि का अनुशीलन करके सामर्थ्य अर्जित करना ही इष्ट होना चाहिए ।

सिद्धनागार्जुन ने प्रथम पटल में प्रतिपाद्य विषयों की सूची का अंकन इस प्रकार किया है—

'वश्यमाकर्षणं स्तम्भं मोहमुच्चाटमारणम् ।
विद्वेषव्याधिकरणं पशुशस्यार्थनाशनम् ।।
कौतुकञ्चेन्द्रजालञ्च यक्षिणीमन्त्रसाधनम् ।
चेटकञ्चाञ्जनं दिव्यमदृश्यं पादुकागतिम् ।।
गुटिकाखेचरत्वञ्च मृतसञ्जीवनादिकम् ।
तथा कक्षपुटीसिद्धिः साङ्गोपाङ्गमनेकधा ।।'

इसमें वशीकरण, आकर्षण, स्तम्भन, मोहन, उच्चाटन, मारण, विद्वेषण, व्याधि-उत्पादन, पशु, खेती तथा धन नाश, कौतुक, इन्द्रजाल, यक्षिणी-साधन, चेटक-साधन, दिव्य अंजन, अदृश्य होना, पादुका-सिद्धि, गुटिका-सिद्धि, आकाशगमन-सिद्धि । मृतसंजीवनी तथा कक्षपुटी सिद्धि का अंग-उपांग के साथ अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है ।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि अब तक उपलब्ध प्रतियों में अंतिम विषय 'कक्षपुटी सिद्धि' को छोड़कर कुछ पाठभेद के साथ प्रत्येक विषय का अंकन है, परन्तु 'कक्षपुटी-सिद्धि' नामक प्रकरण प्रत्येक प्रति में से लुप्त है । एशियाटिक सोसाईटी बंगाल, तंजौर राजमहल पुस्तकालय, जम्मू-कश्मीर महाराज पुस्तकालय, कलकत्ता संस्कृत कालेज पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता में संग्रहीत प्रतियों में भी उक्त प्रकरण 'कक्षपुटी-सिद्धि' लुप्त है । कहीं-कहीं यह ग्रंथ कक्षपुटी अथवा कच्छपुटी नाम से तो कहीं-कहीं सिद्धनागार्जुनीय नाम से उपलब्ध है । एक स्थल पर इसका नाम है 'सिद्ध चण्डेश्वरी' । परन्तु इन सबमें 'कक्षपुटी-सिद्धि' प्रकरण देखने को नहीं मिलता । भण्डारकर रिचर्स संस्थान पूना तथा डेकन कालेज पूना की प्रतियों में भी इस प्रकरण का सर्वथा अभाव है ।

डेकन कालेज पूना में ३२७ श्लोकों वाला एक 'कक्षपुटी-विद्या' नामक ग्रन्थ संग्रहीत है, परन्तु यह नित्यनाथ कृत है । इससे और सिद्धनागार्जुन कृत कक्षपुटी ग्रन्थ में कोई साम्य नहीं है । इसके अतिरिक्त 'कैटलागस कैटोलोगोरम' में नागार्जुनतन्त्र नाम से एक ग्रन्थ अंकित है, जब कि राजेन्द्रलाल मित्र के संस्कृत पुस्तक-विवरण में इसका नाम सिद्धनागार्जुनीय अंकित है । इन सब संदर्भित प्रतियों में २१ पटल से अधिक पटल (अध्याय) परिलक्षित नहीं होते, जब कि प्रस्तुत प्रति में तीस पटल है, तथापि 'कक्षपुटी-विषयक' अध्याय अनुपलब्धता के कारण संयोजित नहीं किया जा सका ।

इस संदर्भ में मुझे नेपाल-भारत सीमा के पास स्थित 'सुरसण्ड' रियासत के वंशधर तथा उ० प्र० के तत्कालीन राज्यपाल सर चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह ने एक पत्र द्वारा सूचित किया था कि नागार्जुन इस ग्रन्थ को सर्वदा अपनी बाँह के नीचे (काँख में) दबाये रहते थे और इसे कभी भी अलग नहीं करते थे, फलतः इसका नाम 'सिद्धनागार्जुनकक्षपुटम्' पड़ा । उन्होंने

इस सम्बन्ध में नेपाल तक विशेष खोज तब की थी, जब वे नेपाल में भारत के राजदूत थे। उनका कथन था कि इस 'कक्षपुटी' नामक अध्याय में भारत की प्राचीन रासायनिक विद्या पारा से सोना बनाने तथा चाँदी बनाने की विधि का अंकन था। अत्यन्त रहस्यमय बुभुक्षित पारा बनाने की विधि भी इस अध्याय में अंकित थी। पारा को अग्निस्थायी बनाकर उसे स्वर्णपिण्ड में परिवर्त्तित करने का अपूर्व कौशल इस अध्याय में अंकित था। सर चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह से इस सन्दर्भ में अनेक बार राजभवन में मिलने का अवसर प्राप्त हुआ था। उनका कथन था कि नेपाल दरबार लाईब्रेरी में एक प्रति अवश्य है, जिसमें किसी विशेष लिपि में 'कक्षपुटी' अध्याय भी है। परन्तु तत्कालीन नेपाली राजदूत श्री जगदीश शमशेर जंगबहादुर राणा से सम्पर्क करने पर भी मैं इस अध्याय को प्राप्त कर सकने में असमर्थ रहा। किंवदन्ती है कि इस अध्याय में पारद की अलौकिक परिवर्त्तित क्षमता द्वारा अमरत्व सिद्धि, सिद्ध देहप्राप्ति का भी कौशल समाहित है। इस स्थिति से नागार्जुन अवगत थे। इसका प्रमाण उपलब्ध अध्याय 'कालवञ्चन' के श्लोक से प्रकट हो जाता है—

'स्वकीयं ग्रसते योऽसौ चित्तं कालकुलाकुलम्।
ग्रासान्ते न स्मरेत् किञ्चित् कालस्तस्य करोति किम्॥'

सिद्ध नागार्जुन ने प्रस्तुत ग्रन्थ में वनौषधियों से तथा जड़ी-बूटियों से मंत्र-शक्ति का मणिकाञ्चन संयोग प्रदर्शित किया है। इससे प्रकट होता है कि उन्हें वनौषधियों की भी प्रचुर जानकारी प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त मृतसंजीवनी, महाभारत में वर्णित दिव्यास्त्र प्रयोग, अदृश्यकरणी विद्या आदि का समावेश पाठक के मन में एक प्रकार के कुतूहल का सृजन करता है। उपलब्ध-प्रकाशित तन्त्र-ग्रन्थों में संभवतः दिव्यास्त्र-प्रयोग तथा अदृश्यकरणी विद्या का कहीं भी वर्णन नहीं है। इस दृष्टिकोण से भी यह ग्रंथ अपने आप में अलौकिकता संजोये हुए है। इसमें वर्णित उपाय-प्रयोग सुसाध्य से लगते हैं, परन्तु जब तक कर्मठ उत्साहसम्पन्न साधक इनका उपयोग करने की क्षमता प्राप्त करके एक जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर देते तब तक ऐसे ग्रंथों के सम्बन्ध में तथा उनमें वर्णित विषयवस्तु के सम्बन्ध में एक प्रश्नचिह्न-सा लगा रह जाता है। ग्रंथ-प्रकाशन का उद्देश्य तभी सफल हो सकेगा, जब इसमें वर्णित लोकहित-कारी प्रयोगों के प्रति कर्मशील व्यक्तियों की रुचि जाग्रत् हो और वे इससे प्राप्त अभिज्ञता एवं अनुभव द्वारा लोककल्याण कर सकें।

इस ग्रन्थ की मूल प्रति ब्रह्मलीन स्वामी कौशलानन्द कौलाचार्य के पास देखने को मिली थी। सन् १९६२ ई० में फोटो स्टेट मशीनों का प्रचलन नहीं के बराबर था, अतः उनके सान्निध्य में इसकी प्रतिलिपि करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इस प्रति की विशेषता यह है कि इसमें सर्वाधिक ३० पटल

समाहित हैं। इस प्रतिलिपि उपक्रम में अनेक अशुद्धियाँ रह गई थीं। इन अशुद्धियों का संशोधन तथा ग्रन्थ का सम्पादन करके सम्माननीय विद्वान् डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठीजी ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

इस प्रसंग में गुरु द्वारा प्राप्त एक निर्देश अंकित करना आवश्यक प्रतीत होता है। शान्ति एवं पुष्टि तथा कालवंचन कर्म के अतिरिक्त जो कर्म अथवा प्रयोग हैं, वे अच्छे कर्म नहीं हैं। उनका प्रायश्चित्त साधक को ही भुगतना पड़ता है। इसका उपाय है—मन्त्रजप। समाहित चित्त द्वारा अयुतसंख्यक जप करने से इसका प्रायश्चित्त हो जाता है। मारण कर्म का प्रायश्चित्त अत्यधिक है। उसके लिए तीर्थाटन, महापुरुष-संश्रयत्व तथा सुषुम्ना में स्थित होकर जप करना ही प्रायश्चित्त है।

सर्वान्त में मैं स्वामी कौशलानन्दजी की पावन स्मृति में प्रणत होता हूँ, जिनकी कृपा से इस ग्रंथ की प्राप्ति हो सकी थी। इसी क्रम में श्री बलजीत सिंह लाली आई० ए० एस, प्रमुख सचिव—ऊ० प्र के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता का ज्ञापन करता हूँ, जिन्होंने मेरे लखनऊ प्रवास काल में इस ग्रंथ के अनुवाद के लिए एकान्तपूर्ण सुविधायुक्त आवास उपलब्ध कराया। वे ग्रंथ के अनुवाद कार्य की प्रगति के सम्बन्ध में बराबर जानकारी लेते हुए रुचि प्रकट करते थे, जिससे मेरा उत्साह-वर्धन हुआ। महामहिम राज्यपाल उ० प्र० श्री मोतीलाल जी वोरा का भी मैं चिर कृतज्ञ रहूँगा, जिन्होंने अपने व्यस्ततम क्षणों में भी इस ग्रंथ के प्रकाशनार्थ पत्र भेजकर मुझे उत्साहित किया और मिलने का अवसर प्रदान करके ग्रन्थ के सम्बन्ध में चर्चा की तथा भारतीय रहस्य-विद्याओं के प्रति सम्मान का प्रदर्शन किया।

महाशिवरात्रि
बी ३१।३२ लंका, वराणसी

एस० एन० खण्डेलवाल

विषय-सूची

पटल	विषय	पृष्ठ
१.	मंगलाचरण एवं मन्त्रसाधनादि वर्णन	१
२.	सर्ववशीकरण	१९
३.	राजवशीकरण-विवादजयलाभ	३२
४.	सर्वजनवशीकरणगृहक्लेश-निवारण	३८
५.	मोहन	४२
६.	विद्वेषण	४५
७.	नपुंसकीकरण	४९
८.	अत्याहारानाहारकथन	५१
९.	योनिबन्धन	५४
१०.	कुमाराञ्जन	५६
११.	अञ्जनविधि	५८
१२.	पादाञ्जन	६५
१३.	लेपाञ्जन-मात्राञ्जन	६७
१४.	द्रावण	७१
१५.	पतिवशीकरण	७५
१६.	कौतुक	८०
१७.	पादुकासाधन	८५
१८.	गुटिकासाधन-मृतसञ्जीवनीविद्या	९०
१९.	अदृश्यीकरण	९५
२०.	आकर्षण	१०८
२१.	उच्चाटन	११३
२२.	मारण	१२२
२३.	कालवञ्चन	१२९
२४.	अज्ञातनिधिग्रहणनियम	१३४
२५.	यक्षिणीसाधन	१४०
२६.	व्याधिजनन	१५१
२७.	आश्चर्यगुटिका	१६०
२८.	शत्रुस्तम्भन	१७३
२९.	दिव्यास्त्र	१८१
३०.	सर्वसिद्धिकर योग	१८९

॥ श्रीः ॥

सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्

(सिद्धनागार्जुनकक्षपुटम्)

प्रथमं पटलम्

(मंगलाचरण तथा ग्रन्थ सूचना)

य: शान्त: परमालय: परशिव: कङ्कालमाल्यन्तको
ध्यानातीत-अनादि-नित्यनिलय: सङ्कल्पसङ्कोचक: ।
आभासान्तरभासक: समरस: सर्वात्मना बोधक:
सोऽयं शर्म ददातु सर्वजगतां विद्यादिसिद्धाष्टकम् ॥ १ ॥
या नित्या कुलकेलिशोभितवपुर्बोधोदिता जृम्भते
पूर्णाभाऽमृतकुण्डला परपरा मन्त्रात्मिका सिद्धिदा ।
मालापुस्तकधारिणीं त्रिनयनां कुन्देन्दुवर्णोज्ज्वलां
नित्यानन्दकुलप्रकाशजननीं वाग्देवतामाश्रये ॥ २ ॥

जो शान्त, परम आलय (आश्रय), परमशिव, कंकालमाली, अन्तकस्वरूप, ध्यानातीत, अनादि, नित्यपदार्थाश्रय, संकल्पसंकोचक (समस्त संकल्प-समूह का नाश करने वाले) हैं, जो अपने आभास (प्रतिबिम्ब) द्वारा समस्त आभ्यन्तरीण (भीतरी) वस्तुओं के प्रकाशक हैं, जो समरस तथा सबके सर्वरूपों के प्रकाशक हैं; वे परमशिव समस्त जगत् का मंगल करें, साथ ही विद्या एवं अष्टसिद्धि प्रदान करें ॥ १ ॥

जो नित्या हैं, कुलक्रीडा द्वारा जिनकी देह शोभायमान है, वे ज्ञान से प्रकाशित होकर नृत्यशीला हो जाती हैं । जो पूर्णदीप्तिशालिनी, अमृतकुण्डलधारिणी, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठा, मन्त्रमयी और सिद्धिप्रदायिनी हैं, जो माला एवं पुस्तक धारिणी हैं, जो त्रिनयना, कुन्द तथा चन्द्र के समान शुभ्रवर्णा हैं, इसी वर्ण से समुद्भासिता हैं और जो नित्यानन्द-समूह की जननी हैं, मैं उन वाणीस्वरूपिणी देवता का आश्रय लेता हूँ ॥ २ ॥

येषां वक्त्राच्च्युतं किञ्चिन्मणिमन्त्रौषधादिकम् ।
तत्कर्मणि रतान् पूर्वं प्रणमामि महाजनान् ॥ ३ ॥

मैं ऐसे महाजनों को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने मणि, मन्त्र, औषधि प्रभृति के सम्बन्ध में कुछ श्रवण किया है और जो उन-उन कर्मों के सम्पादन में निरन्तर तत्पर भी रहते हैं ॥ ३ ॥

संसारे बहु-विस्तीर्णे विद्यासिद्धिरनेकधा ।
प्रोक्तवान् शङ्करः पूर्वं यदा पृच्छति पार्वती ॥ ४ ॥
अन्यैर्देवगणैः सिद्धैर्मुनिदेशिकसाधकैः ।
यद् यदुक्तं हि शास्त्रेषु तत्सर्वमवलोकितम् ॥ ५ ॥

इस अत्यन्त विस्तीर्ण संसार में विद्यासिद्धि अनेक प्रकार की है। पहले जब पार्वती ने जिज्ञासा की थी, तब महादेव ने जिन शास्त्रों का उपदेश दिया था और अन्य देवगण, सिद्धगण मुनिगण, मन्त्रोपदेष्टा आचार्य तथा साधकगण ने जो-जो शास्त्र कहे हैं, मैंने उन सबका अवलोकन किया है ॥ ४-५ ॥

शाम्भवे यामले शास्त्रे मौले कौलेयडामरे ।
स्वच्छन्दे काकुले शौचे राजतन्त्रेऽमृतेश्वरे ॥ ६ ॥
उड्डीशे वातुले तन्त्रे ह्युच्छिष्टे सिद्धिशाबरे ।
किङ्किण्यां मेरुतन्त्रे च कालचण्डेश्वरे मते ॥ ७ ॥
शाकिनीडाकिनीतन्त्रे रौद्रेऽनुग्रहनिग्रहे ।
कौतुके शल्यतन्त्रे च क्रियाकालगुणोत्तरे ॥ ८ ॥
हरमेखलके ग्रन्थे इन्द्रजाले रसार्णवे ।
आथर्वणे महावेदे चार्वाके गारुडेऽपि च ॥ ९ ॥
इत्येवमागमोक्तञ्च वक्त्राद् वक्त्रेण यच्छ्रुतम् ।
एतत् सर्वं समुद्धृत्य दध्नो घृतमिवादरात् ।
साधकानां हितार्थाय मन्त्रखण्डमिहोच्यते ॥ १० ॥

शांभवतन्त्र, यामल, मौल, कौलेय, डामर, स्वच्छन्द, काकुल, शौच, राजतन्त्र, अमृतेश्वर, उड्डीश, वातुल, उच्छिष्ट, सिद्धितन्त्र, शाबरतन्त्र, किंकिणीतन्त्र, मेरुतन्त्र, कालचण्डेश्वर, शाकिनी तथा डाकिनी तन्त्र, रौद्र, अनुग्रह, निग्रह, कौतुक, शल्यतंत्र, क्रियाकालगुणोत्तरतन्त्र, हरमेखलकग्रन्थ, इन्द्रजाल, रसार्णव, आथर्वण, महावेद, चार्वाक, गारुड़ इत्यादि आगमों व तंत्रों में जो कुछ कहा गया है; एक के मुख से दूसरे ने, उसके द्वारा तीसरे ने—इस प्रकार से परम्परा द्वारा भी जो कुछ सुना है, मैं साधकों के हितार्थ जैसे दधि से सार रूप घृत निकाला जाता है, उसी प्रकार उन सबके सारतत्त्व को उद्धृत करते हुए मंत्रखण्ड कहता हूँ ॥ ६-१० ॥

वश्यमाकर्षणं स्तम्भं मोहमुच्चाटमारणम् ।
विद्वेषव्याधिकरणं पशुशस्यार्थनाशनम् ॥ ११ ॥

कौतुकञ्चेन्द्रजालञ्च यक्षिणीमन्त्रसाधनम् ।
चेटकञ्चाञ्जनं दिव्यमदृश्यं पादुकागतिम् ॥ १२ ॥
गुटिकाखेचरत्वञ्च मृतसञ्जीवनादिकम् ।
तथा कक्षपुटीसिद्धिः साङ्गोपाङ्गमनेकधा ॥ १३ ॥

वशीकरण, आकर्षण, स्तम्भन, मोहन, उच्चाटन, मारण, विद्वेषण, व्याधि उत्पादन, पशु-शस्य तथा अर्थनाश करण, कौतुक, इन्द्रजाल, यक्षिणी-मन्त्रसाधन, चेटकसाधन, दिव्य अञ्जन, अमृतकरण, पादुकागति, गुटिका सिद्धि, खेचरत्वसिद्धि, मृतसंजीवनादि, कक्षपुटी सिद्धि—इन सब का सभी अंगों तथा उपांगों का अनेक प्रकार से वर्णन किया जा रहा है ॥ ११-१३ ॥

सुसाध्यं प्रत्ययोपेतं साधकानां हितं प्रियम् ।
तत्तन्मन्त्रमुखं ज्ञात्वा कर्त्तव्यं सिद्धिमिच्छता ॥ १४ ॥
मन्त्रसाधनकं पूर्वं सिद्ध्यर्थं साधकोत्तमैः ।
विना मन्त्रविधानेन न सिद्धिं लब्धवान् भवेत् ॥ १५ ॥

जो सुसाध्य, विश्वासयोग्य तथा साधकों के लिए प्रिय एवं हितकारी है, इच्छुक व्यक्ति पहले उस मन्त्रश्रेष्ठ से अवगत होकर कर्त्तव्य कर्म करे। साधक श्रेष्ठगण प्रथमतः सिद्धि हेतु मन्त्र साधना करें। मन्त्रविधान के अभाव में सिद्धि नहीं मिलती ॥ १४-१५ ॥

अथ मन्त्रांशकं वक्ष्ये मेरुतन्त्रे शिवोदिते ।
मन्त्र-साधकयोर्वर्णान् स्वरांश्च क्रमतः पृथक् ।
विधाय सिद्धसाध्याद्यैर्गणयेन्मन्त्रवित्तमः ॥ १६ ॥

शिव द्वारा उपदिष्ट मेरुतन्त्र में जो मन्त्रांश विद्यमान है, वह इसके पश्चात् कहूँगा। मन्त्रसिद्धि के लिए प्रथमतः मन्त्र-विचार आवश्यक है। मन्त्रवित् व्यक्ति श्रेष्ठ देय यन्त्र का तथा साधक के नाम के व्यञ्जन वर्ण को और स्वर वर्ण को क्रमशः पृथक् करते-करते सिद्ध-साध्यादि द्वारा गणना करे ॥ १६ ॥

मन्त्रं विचार्य क्रमेण साधयेत् क्रमतः पृथक् ।
विधाय सिद्धसाध्यारिसुसिद्धान्मन्त्रवित्तमः ॥ १७ ॥

मन्त्रवित् साधक सिद्धि, साध्य, अरि तथा सुसिद्ध क्रम से पृथक् करके क्रमशः मन्त्र-विचार करते हुए साधना करे ॥ १७ ॥

अनुस्वारं विसर्गञ्च जिह्वामूलीयसंज्ञकम् ।
सहितोच्चारणात् प्राप्तं क्लीबवर्णैरसंयुतम् ॥ १८ ॥

क्लीबवर्ण के साथ उच्चारण में प्राप्त अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय

संज्ञक वर्ण तथा अपभ्रंशाक्षर प्रभृति का त्याग करके साधक केवल मन्त्राक्षर का शोधन करे ॥ १८ ॥

व्यञ्जनैर्व्यञ्जनं शोध्यं स्वरैर्नाम स्वरांस्तथा ।
आद्यमाद्येन संशोध्यं द्वितीयेन द्वितीयकम् ।
अनेनैव प्रकारेण शेषाः शोध्या यथाक्रमम् ॥ १९ ॥

व्यंजन द्वारा व्यंजन का, स्वर द्वारा स्वर का शोधन करे । आद्य (प्रथम) द्वारा आद्य का और द्वितीय द्वारा द्वितीय का शोधन करे । इस प्रकार से क्रमशः शेष वर्णों का भी शोधन करे ॥ १९ ॥

आद्यं यदक्षरं नाम्नो स्थापयेत् तु तदादितः ।
एवं मन्त्राक्षरं स्थाप्यं मात्राङ्कानामयं क्रमः ॥ २० ॥

नाद का जो प्रथम अक्षर है, उस अक्षर को कोष्ठ के प्रथम कोष्ठ से क्रमशः स्थापित करते चलना चाहिए । इस प्रकार मन्त्राक्षर को भी स्थापित करे । यही स्वर संख्याओं को स्थापित करने का क्रम है ॥ २० ॥

चतुष्कश्च चतुष्कश्च परित्याज्यं पुनः पुनः ।
सिद्धसाध्यसुसिद्धारिसंज्ञयैव यथाक्रमम् ॥ २१ ॥
एवं क्रमेण सर्वेषां मन्त्राणां गणने कृते ।
कियत् सिद्धं कियत् साध्यमित्याद्यपि विचिन्तयेत् ॥ २२ ॥

बारम्बार चतुष्क कोष्ठ का परित्याग करे । सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि नाम के द्वारा क्रमशः गणना करे । इस क्रमानुसार समस्त मन्त्र की गणना करने पर कौन सिद्ध है, कौन साध्य है, इसका भी चिन्तन करे ।

यत्र मन्त्रे भवेदेतत् सिद्धादीनां चतुष्टयम् ।
स मन्त्रः सिद्ध इत्युक्तः साध्यो वै सिद्धिवर्जितः ॥ २३ ॥

जो मन्त्र इन सिद्धादि समूह में हो, वह सिद्ध है । सिद्धिवर्जित मन्त्र को साध्य कहते हैं ॥ २३ ॥

रिपुवर्जं यत्र मन्त्रं सा सुसिद्धिरिहोच्यते ।
सुसिद्धमरिहीनश्च मन्त्रं यच्छत्रुभूषितम् ॥ २४ ॥

जो मन्त्र रिपुवर्जित है, उसे सुसिद्ध कहते हैं; ऐसे सुसिद्ध मन्त्र को ग्रहण करे । शत्रु युक्त मन्त्र को ग्रहण न करे ॥ २४ ॥

आदिसिद्धोऽन्तसिद्धोऽयं मध्यसिद्धोऽथवा भवेत् ।
सुसिद्धः स तु विज्ञेयः साधकानां फलप्रदः ॥ २५ ॥

ऐसा मन्त्र आदिसिद्ध, अन्तसिद्ध अथवा मध्यसिद्ध हो सकता है, सुसिद्ध

भी हो सकता है। जो मन्त्र सुसिद्ध है उसे साधक के लिए फलप्रद जानना चाहिए ॥ २५ ॥

आदावन्ते सुसिद्धोऽयं त्रैलोक्यमपि दास्यति।
आदावन्ते च साध्यो यः सोऽतिकालेन सिध्यति।
आदावन्ते च यः शत्रुः साधकं मारयत्यलम् ॥ २६ ॥

आदि तथा अन्त में सुसिद्ध मन्त्र त्रैलोक्य की सम्पत्ति को भी दे सकता है। जो मन्त्र आदि तथा अन्त में साध्य है, वह दीर्घकाल में सिद्ध होता है। जो मन्त्र आदि तथा अन्त में शत्रु है वह साधक का विनाश कर देता है ॥२६॥

सिद्धः सिध्यति कालेन साध्योऽथ जपहोमतः।
सुसिद्धः स्मरणाद् देवि रिपुः साधकमारकः ॥ २७ ॥

सिद्ध मन्त्र यथाकाल में सिद्ध होता है। सुसिद्ध मन्त्र स्मरणमात्र से सिद्ध होता है। अरिमन्त्र साधक को मृत्युमुख में डाल देता है ॥ २७ ॥

एवं मन्त्रांशकं ज्ञात्वा सुसिद्धः सिद्धमेव च।
साध्यश्चापि क्वचिद् ग्राह्यं सिद्धार्थं मन्त्रमुत्तमम्।
शास्त्राद् वा गुरुवक्त्राद् वा ग्राहयेत् साधयेत् पुनः ॥ २८ ॥

इस प्रकार मन्त्रांश ज्ञात होने पर सुसिद्ध तथा सिद्ध मन्त्र को ग्रहण करना चाहिए। कहीं-कहीं उत्तम साध्य मन्त्र भी सिद्धि के लिए ग्रहणीय है। शास्त्र अथवा गुरुमुख से उत्तम मन्त्र जानकर तथा ग्रहण करके तब साधना करे ॥२८॥

साधना के स्थल

पुरे वा पत्तने ग्रामे कटके सिन्धुसङ्गमे।
वने चोपवने तीर्थे महापीठे च सागरे ॥ २९ ॥
पर्वते सिद्धवृक्षे च कुलवृक्षे श्मशानके।
मातृगेहे गुहायां वा पुण्यक्षेत्रे महानदे ॥ ३० ॥
सिद्धमन्त्रे शिवस्थाने गृहे वाथ यथोदिते।
दीपस्थानं सुनिश्चित्य कूर्मचक्रे सुसिद्धिदम् ॥ ३१ ॥

गृह, नगर, ग्राम, पर्वत के पास, नदीसंगम, वन, उपवन, तीर्थ, महापीठ, सागर, पर्वत, सिद्धवृक्ष की जड़ के पास, कुलवृक्ष के मूल में, श्मशान, गुहा, मातृगृह, पुण्यक्षेत्र तथा महानद प्रभृति स्थल पर मन्त्रसाधना करे। सिद्ध मन्त्र-साधना करने के लिए शिवमन्दिर अथवा गृह के यथोक्त स्थान में बैठकर साधना करे। कूर्मचक्र में सिद्धप्रद दीपस्थान सुनिश्चित करे और वहाँ बैठकर साधना करे ॥ २९-३१ ॥

कूर्मचक्र

सप्तवर्गं लिखेद्धीमान् मध्यतो यावदुत्तरम् ।
लक्ष्मीशपदे क्षेत्रे वेदास्ते नवकोष्ठके ॥ ३२ ॥
हृदास्यभुजकुक्ष्यङ्घ्रिपुच्छं वर्णक्रमात् स्थिताः ।
पदानि दीपसंज्ञानि तेषु क्षेत्राधिपालकः ॥ ३३ ॥

जपपूजा के लिए बैठने वाले स्थान पर उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम में ४ रेखाएँ खींचें। मध्य में संयुक्त ४ रेखाओं के मध्य में २-२ रेखा खींचकर ९ कोष्ठक बनाये। श्रीमान् साधक पूजा-पूजक के मध्य नामक पूर्व दिशा से उत्तर की ओर तक बाहर सात कोष्ठों में यथाक्रम से ७ वर्ग वर्ण लिखे। ईशान कोष्ठ में ल-क्ष लिखे। ७ वर्ग वर्ण कादि वर्ण हैं। यथा क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, य वर्ग तथा श वर्ग। शेष यादि एवं शादि वर्ग वेद-संख्यक अर्थात् ४ हैं। मध्य में ९ कोष्ठक में वे स्वर वर्ण-समूह हैं। हृदय, मुख, दो बाहु, दो कुक्षि, दो पैर तथा पुच्छ में वर्णक्रम अवस्थित है। शेष कोष को दीप नामक कोष्ठ कहा जाता है। इसमें दीप नामक क्षेत्रपाल स्थित रहते हैं ॥ ३२-३३ ॥

अमृतं वृषभञ्चैव शैलराजञ्च वासुकिम् ।
अमराजरकञ्चैव पूज्यं शक्तियुतं तथा ॥ ३४ ॥

साधक इस स्थान में निवास करके अमृत, शैलराज, वृषभ, वासुकि, अमर तथा अजर शक्ति के साथ क्षेत्रपालों की पूजा करे ॥ ३४ ॥

पद्मयोनिर्महाशङ्खो ज्ञेयस्तन्त्रादनुक्रमात् ।
मध्यात् पूर्वादितः पूज्या मन्त्रमत्रैव कथ्यते ॥ ३५ ॥

ॐ अमुकक्षेत्रपाल अमृतदेवीपुत्र अवतारमुर्वल्लि निपितं गृह्ण ॐ ख ख ल ल ख ख ल ल क्षेत्रपाल सर्वविघ्नान् हन हन स्वाहा। अनेन मन्त्रेण सर्वक्षेत्रपाला अमृतादयः पूज्याः ॥ ३६ ॥

क्षेत्रपाल-समूह की जो-जो योनि (जननी) है, उन्हें तंत्र से अनुक्रम में जानें। मध्य कोष्ठ से पूर्वादि क्रम से क्षेत्रपालगण का पूजन करे। अब मन्त्र कहा जाता है ॥ ३५ ॥

'ॐ अमुकं' आदि मन्त्र से पूजा करे। यहाँ अमुक क्षेत्रपाल के स्थान पर अमृत प्रभृति क्षेत्रपालों का नाम कहना चाहिए ॥ ३६ ॥

यत्र यत्र भवेद् वर्गे क्षेत्राणामाद्यमक्षरम् ।
तन्मुखं शेषवर्गेषु करकुक्ष्यङ्घ्रिकल्पना ॥ ३७ ॥

जिस-जिस वर्ग में क्षेत्र का अर्थात् ग्राम का आदि अक्षर अवस्थित है, वही

मुख है। अवशिष्ट वर्ग-समूह में हस्त, कुक्षि तथा पाद (पैरों) की कल्पना करनी चाहिए ॥ ३७ ॥

मुखस्थः क्षोभते यन्त्री करस्थः स्वल्पभोगभाक् ।
कुक्षिस्थितो दहत्युदासीनः पादस्थो दुःखमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥

मन्त्री मुख में अवस्थित होकर जप प्रारम्भ करने पर क्षुब्ध, हाथों में अवस्थित होकर जपलीन होने पर अल्पभोग्यभागी तथा कुक्षि में अवस्थित होकर जप करने से उदासीन होते हैं। पादस्थ जप द्वारा दुःख प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

पुच्छस्थितो वधं बन्धं तत्तदाप्नोति निश्चितम् ।
दीपस्थानमतः क्षेत्रं ज्ञात्वा मन्त्रं शुचिर्जपेत् ॥ ३९ ॥

पुच्छ स्थित साधक वध एवं बन्ध को प्राप्त होता है। अतः दीपस्थान क्षेत्र का ज्ञान करते हुए पवित्र होकर मन्त्र का जप करे ॥ ३९ ॥

क्षेत्रे साधनमन्त्राणामेकमेवाद्यमक्षरम् ।
यदि स्यात् स ध्रुवं मन्त्रं क्षिप्रमेव सुसिद्धयति ।
जपमालादिसिद्धान्ता मन्त्राणां साधनोच्यते ॥ ४० ॥

यदि क्षेत्र, साधक तथा मन्त्र का प्रथमाक्षर एक ही है, तब वह मन्त्र शीघ्र सिद्ध हो जाता है। जपमाला के जप में आदि से लेकर सिद्धि पर्यन्त मन्त्र की भावना कही जाती है ॥ ४० ॥

जपमाला की मणिसंख्या

अष्टोत्तरशतञ्चैव चतुःपञ्चाशदेव वा ।
सप्तविंशन्मणिर्वाथ कर्त्तव्या जपमालिका ॥ ४१ ॥
उत्तमा मध्यमा हीना त्रिधा प्रोक्ता क्रमेण तु ।
ब्रह्मग्रन्थान्विता प्रोक्ता मेरुतन्त्रे शिवोदिता ॥ ४२ ॥

मन्त्रसाधना में माला द्वारा जप करे। १०८ अथवा ५४ अथवा २७ मणियों की माला बनाये। इन्हें क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा अधम माला कहते हैं। मेरुतन्त्र में शिव ने कहा है कि ब्रह्मग्रंथि द्वारा माला का निर्माण करे ॥ ४१-४२ ॥

मन्त्रप्रत्यक्षतासिद्ध्यै शान्तिके वाथ पौष्टिके ।
स्फाटिकी मौक्तिकी वापि प्रोतव्या सितसूत्रकैः ॥ ४३ ॥

शान्तिकार्य तथा पुष्टिकार्य में स्फटिक अथवा मुक्ता की सफेद तागे में पिरोकर माला बनाये ॥ ४३ ॥

शुक्रभानुसुतोपेता प्रशस्ताऽऽकृष्टकर्मणि ।
अष्टमी पौर्णमासी च प्रतिपन्नवमी तथा ॥ ५६ ॥

शुक्र तथा शनिवार को पड़ने वाली अष्टमी, पूर्णिमा, प्रतिपदा तथा नवमी तिथि को आकर्षण कर्म करना विहित है ॥ ५६ ॥

शुक्रभानुसुतोपेता प्रशस्ता द्वेषकर्मणि ।
ततश्चतुर्दशी कृष्णा शनिवारे तथाष्टमी ।
उच्चाटनेऽतिशस्तेयं जपेच्छङ्करभाषिता ॥ ५७ ॥

शंकर का कथन है कि शनिवार की कृष्णा चतुर्दशी अथवा कृष्णा अष्टमी तिथि को उच्चाटन कर्म करना प्रशस्त है। इस कार्य हेतु इन्हीं तिथियों में जप करे ॥ ५७ ॥

अमावस्याष्टमी कृष्णा तादृशी च चतुर्दशी ।
भानुना तत्सुतोपेता भूसुतेनाथ संयुता ॥ ५८ ॥
मारयेदद्भुतं होमाद्रक्षितं शम्भुनापि वा ।
एवं सिध्यन्ति कर्माणि तिथिवारानुसारतः ॥ ५९ ॥

रवि, शनि अथवा मंगल को पड़ने वाली कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या के समय होम करने पर महादेव द्वारा रक्षित शत्रु व्यक्ति भी अद्‌भुद रूप से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार तिथि एवं वार के निर्देश को पालन करने से कार्यसिद्धि होती है ॥ ५८-५९ ॥

जप में आसन-नियम

यथोक्तासनमारूढो जपं मन्त्रे समाचरेत् ।
कुशाजिनेऽम्बरे रक्ते चतुरङ्गुलमूद्‌र्ध्वतः ॥ ६० ॥
चतुरस्रं द्विहस्तञ्च सुदृढं मृदुनिर्मितम् ।
तत्रोपरि नियुञ्जीत योगमन्त्रस्य सिद्धये ॥ ६१ ॥

यथोक्त आसन पर आरूढ़ होकर मन्त्र का जप करना चाहिए। कुशासन, अजिनासन तथा रक्तवर्ण रेशमी आसन चतुरस्र (चौकोर) दो हाथ के माप का, चार अंगुल ऊँचा, सुदृढ़ तथा कोमल होना चाहिए। योग तथा मन्त्र सिद्धि के लिए इस पर बैठकर जपादि प्रयोग करे ॥ ६०-६१ ॥

वदन्नश्नन् स्वपन् वाऽन्यमाश्रयन् किमपि स्मरन् ।
क्षुत्तृड्जृम्भणहिक्कादिविकलीकृतमानसः ।
मन्त्रसिद्धिं न चाप्नोति तस्माद् यत्नपरो भवेत् ॥ ६२ ॥

जपकाल में वार्ता करना, आहार करना, सोना, किसी व्यक्ति के आश्रय से जप करना, अन्य किसी बिषय का स्मरण करना, यह सब मन्त्रसिद्धि में

विघ्न रूप हैं। क्षुधा-तृष्णा-जँभाई-हिचकी आदि से विकल होने पर मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती। अतः इस विषय में यत्न से जप करे॥ ६२॥

व्याघ्रचर्मासनं वश्ये मोक्षे च धनसाधने।
आकृष्टौ यद्यदिष्टं स्याद् वारणं शान्तिपौष्टिके॥ ६३॥

वशीकरण, मोक्षसाधन तथा धनसाधनार्थ व्याघ्रचर्म का आसन, आकर्षण में कोई भी आसन तथा शान्ति-पौष्टिक कार्यों में गजचर्म का आसन प्रशस्त कहा गया है॥ ६३॥

उच्चाटे माहिषं चर्म मारणे नरकेशजम्।
शान्तिके स्वस्तिके प्रोक्तं पौष्टिके पङ्कजासनम्॥ ६४॥

उच्चाटनार्थ महिष के चर्म का आसन, मारणार्थ मनुष्य के केश से बना आसन प्रशस्त है। शान्तिकर्म में स्वस्तिकासन तथा पौष्टिक में कमल का आसन विहित कहते हैं॥ ६४॥

आकृष्टौ पार्ष्णिकं ज्ञेयं विद्वेषे कुक्कुटासनम्।
अर्धस्वस्तिकमुच्चाटे अर्धोत्थानस्तु मारणे॥ ६५॥

आकर्षण में पार्ष्णिकासन, विद्वेषण में कुक्कुटासन, उच्चाटन में अर्धस्वस्तिकासन तथा मारण में आधी उठी हुई स्थिति (अर्धोत्थान स्थिति) का आसन विहित है॥ ६५॥

जपस्थान तथा दिक्-नियमादि

महाकाल्याश्च दुर्गाया वश्ये प्रोक्तं शिवालये।
आकृष्टौ नियमो नास्ति विद्वेषार्थं श्मशानके॥ ६६॥
उच्चाटनं कुत्सिते च शून्ये देवालयोपरि।
श्मशाने कालिकाक्षेत्रे प्रेतमारुह्य मन्त्रवित्॥ ६७॥

वशीकरणार्थ शिवालय में महाकाली तथा दुर्गा मन्त्र का जप करना चाहिए। आकर्षण कर्म में कोई नियम नहीं है। विद्वेषणार्थ श्मशान में, उच्चाटनार्थ घृणित स्थान अथवा शून्य देवालय (जहाँ देवालय में प्रतिमा न हो) में जप करे। मारणार्थ मन्त्र का ज्ञाता साधक श्मशान में कालिका क्षेत्र में शव के ऊपर आरूढ़ होकर मन्त्र का जप करे॥ ६६-६७॥

दक्षिणाभिमुखो भूत्वा दन्तैः सम्पीड्य चाधरम्।
रिपुं स्मृत्वा जपं कुर्वन् सप्तरात्रेण मारयेत्॥ ६८॥

दाँतों के द्वारा अधरों को दबाकर शत्रु का स्मरण करते हुए जप करने पर सात रात्रि में शत्रु का वध हो जाता है॥ ६८॥

वासनाऽत्र यथा प्रोक्ता कर्मषट्कानुरूपिणी ।
शान्तिके सौम्यरूपा सा पौष्टिके वश्यकर्मणि ॥ ६९ ॥
काकोलूकादिभिः शत्रुं भक्ष्यमाणं मृतौ स्मरेत् ।
इत्येवं वासना कार्या स्थानध्यानमथोच्यते ॥ ७० ॥

जपकाल में षट्कर्म के अनुसार मन-ही-मन जैसा सोचा जाये वह कहा जाता है । शान्ति, वशीकरण तथा पुष्टिकर्म में वासना का सौम्यरूप होना आवश्यक है ।

मारण कर्म में शत्रु के सम्बन्ध में यह सोचना चाहिए कि वह कौआ तथा उलूक आदि के द्वारा खाया जा रहा है । इसी प्रकार अन्य कर्मों में उन-उन कर्मों के अनुरूप ही भावना करे । अब स्थान एवं ध्यान का वर्णन किया जा रहा है ॥ ६९-७० ॥

ध्यान-स्थान

चतुष्पत्राम्बुजे गुह्ये कुर्यान्मूले मनः स्थिरम् ।
रससिद्धि तथा वश्यमाकृष्टि कालवञ्चनम् ॥ ७१ ॥
जपनाद् विषभूतादि कार्यारम्भं गमागमौ ।
सारस्वतं स्तम्भनञ्च वामवाहेन साधयेत् ॥ ७२ ॥

जप के आरम्भ में गुह्यदेश में सन्निहित मूलाधार में चतुर्दल पद्म में मन को स्थिर कर के रससिद्धि, वशीकरण, आकर्षण, कालवंचन, विषभूतादि कार्यारम्भ तथा कहीं जाने हेतु—इन सब कार्यों के लिए जप करना चाहिए । जब वामनासिका से श्वास चलने लगे, उस समय सारस्वत साधन एवं भजन साधन करे ॥ ७१-७२ ॥

हृत्पद्मकर्णिकां ध्यायन् स्थिरचित्तेन योजयेत् ।
लभते पौष्टिकीं सिद्धि शत्रूच्चाटनमारणे ॥ ७३ ॥

हृत्पद्म की कर्णिका में ध्यान-जप करते-करते वहाँ स्थिरचित्त हो जाये । इससे पौष्टिक सिद्धि, शत्रु का उच्चाटन एवं मारण कर्म साधित होता है ॥ ७३ ॥

विद्वेषे रविवाहेन वरनारीविमोहनम् ।
शान्तिकं पौष्टिकं वश्यं साधयेच्छङ्करोदितम् ॥ ७४ ॥

जब सूर्यनाड़ी (पिंगला) में वायु बहती है, उसी समय सुन्दरी नारी के विमोहन, शान्ति तथा वशीकरण साधन में प्रवृत्त होना चाहिए । यह साक्षात् शंकर का उपदेश है ॥ ७४ ॥

भ्रुवोर्मध्ये द्विपत्रे च दक्षवाहेन साधयेत् ।
क्षुद्रविद्या महाविद्या मोक्षकौतूहलानि च ॥ ७५ ॥

जब दक्षिण नासिका में श्वास बहती है, उस समय भ्रुवमध्यगत द्विदलपद्म में चित्त स्थिर रखते हुए क्षुद्रविद्या, महाविद्या, मोक्ष-विषयक कार्य तथा कौतूहलजनक कर्म का साधन करे ॥ ७५ ॥

यस्य मन्त्रस्य यद् ध्यानं ध्यायेत् स्थानगतं बुधः ।
अथवा सर्वमन्त्राणां ध्यानं सिद्धिकरं शृणु ॥ ७६ ॥

जिस मन्त्र के लिए जो ध्यान कहा गया है, उसके लिए वैसा ही स्थान प्रयोज्य है । अथवा जो सभी मंत्रध्यानार्थ सिद्धिप्रद हैं, उसे सुनो ॥ ७६ ॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशं शान्तिके पौष्टिके शुभे ।
सारस्वते रसे मोक्षे खेचरत्वे रसातले ॥ ७७ ॥

प्राणशक्ति समुत्थित विन्दुगत कक्ष का शुद्धस्फटिक के समान ध्यान करते हुए शान्तिकर्म करना चाहिए । इसी प्रकार शुभ तथा पुष्टिकर्म, सारस्वत, रस, मोक्षसाधन, आकाश-विचरण कर्म, रसातल गमन आदि में भी यही ध्यान उपयोगी है ॥ ७७ ॥

सा रक्ता सर्ववश्येषु स्तम्भने मोहनेऽपि च ।
आकर्षणे ब्रह्मवादे कौतुके सिद्धिदायिनी ॥ ७८ ॥

समस्त वशीकरण, स्तम्भन, मोहन, आकर्षण, ब्रह्मवाद तथा कौतुक में सिद्धि देने वाली देवी का रक्तवर्ण वाला ध्यान करना फलदायी होता है । उच्चाटन तथा विद्वेषण में पीतवर्ण का ध्यान और मारणादि में कृष्णवर्णा देवी का ध्यान करे ॥ ७८ ॥

एवं ध्यात्वा जपं कुर्यान्मानसोपांशु वाचिकम् ।
शान्तिके पौष्टिके मोक्षे मानसं जपमाचरेत् ॥ ७९ ॥

इस प्रकार का ध्यान करके मानसिक, उपांशु, वाचिकादि जप सम्पन्न करे । शान्ति तथा पौष्टिक कर्म में, मोक्षसाधन में मानसिक जप फलदायक होता है ॥ ७९ ॥

वश्याकृष्टावुपांशु स्याद्वाचिकं क्षुद्रकर्मणि ।
शनैः शनैः सुविस्पष्टं न द्रुतं न विलम्बितम् ॥ ८० ॥

वशीकरण तथा आकर्षण में, उपांशु एवं क्षुद्र कार्य हेतु वाचिक जप श्रेयस्कर है । जप का नियम यह है कि धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से जप करे । अति द्रुत अथवा अत्यन्त धीरे-धीरे जप नहीं करना चाहिए ॥ ८० ॥

जपं सप्रणवं कुर्यात् सर्वकर्मार्थसिद्धये ।
जपप्रारम्भकाले तु मन्त्रायार्घ्यं प्रदापयेत् ॥ ८१ ॥
नातिरिक्तश्च न्यूनश्च जपं कुर्यात् सुनिश्चितम् ।
जपस्य च दशांशेन होमं कुर्यात् दिने दिने ।
अथवा लक्षपर्यन्तं होमः कार्यो विपश्चिता ॥ ८२ ॥

सर्वफलसिद्धि हेतु प्रणव युक्त मन्त्र जपे । जप के प्रारम्भ में (अर्थात् जप प्रारम्भ करने से पहले) मन्त्र के लिए एक अर्घ्य देना उचित है ।

अधिकसंख्यक अथवा न्यूनसंख्यक जप कदापि विहित नहीं है । जितना निर्दिष्ट है उतना ही जप करना चाहिए । प्रतिदिन जप का दशांश होम करे अथवा विद्वान् साधक से लक्षसंख्यक होम कराये ॥ ८१-८२ ॥

गव्यक्षीराज्यमधुभिर्वश्ये पौष्टिककर्मणि ।
त्रिकोणे वृत्तकुण्डे वा वायव्याभिमुखो हुनेत् ॥ ८३ ॥
लवङ्गः श्रीफलं जाती प्रियङ्गुः किंशुकं तथा ।
पञ्चद्रव्यैर्मितं होमं कुर्यादाकृष्टकर्मणि ॥ ८४ ॥

साधक वशीकरण और पौष्टिक कर्म हेतु वायव्यकोण की ओर मुख करके त्रिकोण कुण्ड में अथवा वृत्ताकृति कुण्ड में गाय के दुग्ध एवं घृत तथा मधु के द्वारा होम करे । आकर्षण हेतु लवंग, बिल्व फल, चमेली, प्रियंगु तथा पलाश द्रव्य के द्वारा निर्धारित परिमाण में होम करे ॥ ८४ ॥

लवङ्गैकेन वा कुर्यात् तिर्यग्वोदङ्मुखस्थितः ।
कार्यः समस्ततन्त्रोक्तस्तथा वाराटबीजकैः ॥ ८५ ॥

इसके अतिरिक्त उत्तरमुखी स्थिति में केवल लौंग अथवा कमलबीजों के द्वारा भी होम सम्पन्न हो सकता है । यह समस्त तन्त्रों में कहा गया है ॥ ८५ ॥

विद्वेषे जुहुयान्मन्त्री राक्षसीदिक्कृताननः ।
औदुम्बरवटाश्वत्थप्लक्षबीजैर्घृतप्लुतैः ॥ ८६ ॥

तन्त्रोक्त विद्वेष कर्म हेतु साधक नैर्ऋत्यकोण की ओर मुख करके और घृत से सने गूलर, वट, पीपल एवं पाकड़ के बीजों से हवन करे ॥ ८५ ॥

उच्चाटने मत्स्यकुण्डे जुहुयात् पावकाननः ।
अजासर्पिश्च तत् क्षीरं बीजं कार्पाससम्भवम् ॥ ८७ ॥

अग्निकोण की ओर मुख करके उच्चाटनार्थ मत्स्य की आकृति वाले कुण्ड में बकरी के घृत, बकरी के दूध एवं कपास के बीज का होम करना चाहिए ॥ ८७ ॥

दग्धास्थि नरमांसञ्च साध्यरोमनखांस्तथा ।

अष्टोत्तरसहस्रञ्च वज्रकुण्डेऽनलोत्थिते ।
दक्षिणास्यस्तु पञ्चत्वे जुहुयान्मारयेद् रिपून् ॥ ८८ ॥

मारण कर्म में दक्षिण की ओर मुख करे और कुण्ड में अग्नि की उठती लपट में जली अस्थि, नरमांस तथा (जिसे मारना हो उसके) रोम एवं नख का मिलित होम १००८ बार करे। इससे शत्रु का वध हो जाता है ॥ ८८ ॥

अथवा यत्र यद् द्रव्यं प्रोक्तं मन्त्रस्य सिद्धये ।
तथा होमः प्रकर्त्तव्यः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ८९ ॥

अथवा जो-जो द्रव्य मन्त्रसिद्धि के शास्त्र में विहित हैं, उनके द्वारा शास्त्र में प्रतिपादित विधि से हवन करना चाहिए ॥ ८९ ॥

होम के अन्त में मन्त्रसिद्धि

पूजयित्वाथ हुत्वाऽथ जप्त्वा ध्यात्वाऽथ देवताम् ।
मृदु सोष्णं सुपक्वञ्च भुञ्जीय लघु भोजनम् ॥ ९० ॥

अथवा मन्त्रसिद्धि हेतु जो-जो द्रव्य शास्त्र में कहे गये हैं, उनके द्वारा शास्त्रोक्त विधान से होम करे और होम-जप-देवध्यान के अन्त में हलके गर्म कोमल तथा जल्दी पचने वाले अन्न का आहार करे ॥ ९० ॥

यद्वा तद्वा परित्यज्य दुष्टानां कुत्सितौदनम् ।
शस्तमन्नन्तु भुञ्जीयाज्जितात्मा सिद्धिभाग्भवेत् ॥ ९१ ॥

कुत्सित अन्न का त्याग करे, जिसे पापी लोग खाते हैं और अच्छे अन्न का आहार करे, इससे सिद्धि मिलती है ॥ ९१ ॥

अन्यथा भोजने दोषः सिद्धिहानिश्च जायते ।
इति सर्वं शिवेनोक्तं मन्त्राणां साधनं शुभम् ॥ ९२ ॥

अन्यथा आहार-दोष से ही सिद्धि में हानि होने लगती है। इस प्रकार से शिव द्वारा उपदिष्ट शुभ मन्त्रसाधन कहा गया है ॥ ९२ ॥

अनुष्ठितो यथान्यायं यदि मन्त्रो न सिद्ध्यति ।
पुनस्तावदनुष्ठेयं ततः सिद्धो भवत्यलम् ॥ ९३ ॥

यदि नियमानुसार अनुष्ठान करने पर भी मन्त्र असिद्ध रह जाता है, तब उसका पुनः समुचित रूप से अनुष्ठान करना चाहिए। इससे सिद्धि निश्चितरूपेण प्राप्त होती है ॥ ९३ ॥

पुनस्त्वनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते ।
उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सप्त शङ्करभाषिताः ॥ ९४ ॥

यदि इतने पर भी मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती, उस स्थिति में भगवान् शंकर द्वारा निर्दिष्ट उपायसप्तक का अवलम्बन लेना चाहिए ॥ ९४ ॥

द्रावणं बोधनं वश्यं पीडनं शोष-पोषणम् ।
दहनं तत् क्रमं कुर्वन् मन्त्रः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ ९५ ॥

उपायसप्तक—द्रावण, बोधन, वशीकरण, पीडन, शोषण, पोषण तथा दहन । इन्हें क्रमशः करने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥ ९५ ॥

द्रावणं वारुणे बीजे ग्रथनं क्रमयोगतः ।
तन्मन्त्राद्यन्तमालिख्य शिलाकर्पूरकुङ्कुमैः ।
उशीररोचनाभ्याश्च मन्त्रं सङ्ग्रथितं लिखेत् ॥ ९६ ॥

वरुणबीज (वं) मन्त्रवर्ण को मालानुक्रम से ग्रथित करे । इसे द्रावण कहते हैं । मन्त्र को मनःशिला (मैनसिल), कपूर तथा कुंकुम से पूरा लिखे । उशीर-मूल (खस की जड़) तथा गोरोचन को मिलाकर इस ग्रथित मन्त्र को पुनः लिखना चाहिए ॥ ९६ ॥

क्षीराज्यतोयमधुभिर्मध्ये तं लिखितं क्षिपेत् ।
पूजनाज्जपनाद्धोमाद् द्रावितः सिद्धिदो ध्रुवम् ॥ ९७ ॥

दुग्ध, घृत, जल एवं मधु को एक पात्र में रखकर उस पर लिखे मन्त्र को इस पात्र में छोड़े । तदनन्तर पूजन, जप एवं हवन के द्वारा द्रावित यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥ ९७ ॥

द्रावितोऽपि न सिद्धश्चेद् बोधनं तस्य कारयेत् ।
सारस्वतेन बीजेन सम्पुटीकृत्य सञ्जपेत् ।
एवं बुद्धो भवेत् सिद्धो नो चेत् तर्हि वशीकुरु ॥ ९८ ॥

यदि द्रावणोपरान्त भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता तो उस स्थिति में उसका बोधन किया जाता है । 'ऐं' बीज से मन्त्र को पुटित करके जपे । इस प्रकार मन्त्र प्रबुद्ध होकर सिद्ध होने लगता है । इसमें भी सफल न होने पर मन्त्र का वशीकरण करे ॥ ९८ ॥

आरक्तचन्दनं कुष्ठं हरिद्रा मदनं शिला ।
एतैस्तु मन्त्रमालिख्य भूर्जपत्रे सुशोभने ।
धार्यं कण्ठे भवेत् सिद्धिर्वश्यमेतत् प्रकीर्त्तितम् ॥ ९९ ॥

गाढ़ा लाल चन्दन, कुष्ठजड़ी (कूठ), हल्दी, मदनफल एवं मैनसिल द्वारा एक भोजपत्र पर मन्त्र को लिखे और उसे गले में धारण करे । इससे मन्त्र-सिद्धि होती है; यही मन्त्र का वशीकरण है ॥ ९९ ॥

वशीकृतो न सिद्धश्चेत् पीडनं तस्य कारयेत् ।
अधरोत्तरयोगेन यदा तु परिजप्यते ॥ १०० ॥
ध्यायी तदैव तां तद्वदधरोत्तररूपिणीम् ।
विद्यामाविकदुग्धे तु लिखित्वा कच्छपाङ्घ्रिणा ॥ १०१ ॥
तथाभूतेन मन्त्रेण होमः कार्यो दिने दिने ।
पीडितो लज्जयाविष्टः सिद्धः स्याद् वाथ पोषयेत् ॥ १०२ ॥

यदि इतने पर भी मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती, तो उस स्थिति में मन्त्र का पीडन करो । कच्छप (कछुवे) की पैर की हड्डी के द्वारा ऊपर एवं नीचे भेडी के दुग्ध से मन्त्र को लिखे । मन्त्रजप के समय ऊर्ध्व एवं अधः विद्या का भी ध्यान करना चाहिए ।

तदनन्तर इसी मन्त्र से प्रतिदिन होम करे । इस प्रकार से पीड़ित मन्त्र सिद्धिदायक हो जाता है । वह लज्जा से आविष्ट होकर सिद्धिप्रद हो जाता है । इस पर भी सिद्धि न मिलने पर मन्त्र की पोषण क्रिया विहित है ॥ १००-१०२ ॥

नित्यायास्त्रैपुरं बीजमाद्यन्ते तस्य योजयेत् ।
गोक्षीरैर्मधुनोल्लिख्य विद्यां पाणौ विधारयेत् ।

मन्त्र के आगे और पीछे नित्यादेवी के त्रैपुर मन्त्र को लगाये और इसे भूर्जपत्र पर गोदुग्ध एवं मधु के द्वारा लिखकर हाथ में धारण करे । इस प्रकार से पोषित मन्त्र सिद्ध हो जाता है ।

पोषितोऽथ भवेत् सिद्धो नो चेत् कार्यास्य शोषणा ॥ १०३ ॥

यदि पोषण से भी मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती तब शोषण कार्य करना चाहिए ।

द्वाभ्यां द्वाभ्याञ्च बीजाभ्यां मन्त्रैः कुर्याद् विदर्भणम् ।
एषा विद्या गले धार्या लिखित्वा वटभस्मना ।
शोषितोऽपि न सिद्धश्चेद् दहनीयोऽग्निबीजतः ॥ १०४ ॥

दो-दो बीजों द्वारा मन्त्र का विदर्भण करे । इसे वटभस्म से लिखकर गले में धारण करना चाहिए । यह है पोषण । इससे भी सिद्धि न मिलने पर अग्निबीज (रं) द्वारा दहन क्रिया करे ॥ १०४ ॥

आग्नेयेन च बीजेन मन्त्रस्यैकैकमक्षरम् ।
आद्यन्तमध ऊर्द्ध्वन्तु योजयेद् दाहकर्मणि ॥ १०५ ॥
ब्रह्मवृक्षस्य तैलेन मन्त्रमालिख्य धारयेत् ।

कण्ठदेशे ततो मन्त्रसिद्धिः स्याच्छङ्करोदितम् ।
इत्येवं सर्वमन्त्राणामुपायः शम्भुनोदितम् ॥ १०६ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे मङ्गलाचरण-मन्त्रसाधनादिवर्णनं नाम प्रथमं पटलम् ॥

दहन क्रिया हेतु अग्निबीज (रं) के द्वारा मन्त्र के प्रथम अक्षर को और अन्तिम अक्षर को ऊपर-नीचे लिखे। तदनन्तर गूलर फल के तैल द्वारा इस मन्त्र को लिखकर गले में धारण करे। इससे मन्त्रसिद्धि होती है। सभी मन्त्रों की सिद्धि का यह उपाय शंकर ने कहा है ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के मंगलाचरण और मन्त्रसाधनादि वर्णन नामक प्रथम पटल समाप्त।

द्वितीयं पटलम्

वशीकरण

एकचित्तस्थितो मन्त्री मन्त्रं जप्त्वाऽयुतद्वयम् ।
ततः क्षोभयते लोकान् दर्शनादेव साधकः ॥ १ ॥

मन्त्र—ॐ ऐं पुरं क्षोभय भगवतीं गम्भीरय ब्लूं स्वाहा ।

साधक स्थिरचित्त होकर एकचित्त स्थिति में 'ॐ ऐं पुरं क्षोभय भगवतीं गम्भीरय ब्लूं स्वाहा' मन्त्र का दो अयुत (२० हजार) जप करे और तब वशीकरण कार्य हेतु उद्यत हो जाये । इस स्थिति में उसके दर्शन मात्र से समस्त व्यक्ति क्षोभित हो जाते हैं ॥ १ ॥

सर्वलोक-वशीकरण

विदारीवरमूलन्तु जलेन सह घर्षयेत् ।
विभूतया संयुतो मन्त्री तिलकं लोकवश्यकृत् ॥ २ ॥

विदारी तथा वट की जटा को जल के साथ घर्षण करे । तदनन्तर उसे विभूति के साथ मिश्रित करके ललाट पर तिलक लगाये । इस तिलक से सर्वलोक को वशीभूत किया जाता है ॥ २ ॥

पुष्ये पुनर्नवामूलं रुद्रदन्तीयमूलिकाम् ।
यवबीजं तथा बद्ध्वा करे सप्ताभिमन्त्रितः ।
पूज्यो भवति सर्वत्र मन्त्रश्चात्रैव कथ्यते ॥ ३ ॥

ॐ ऐं पुरं क्षोभय भगवतीं गम्भीरय ब्लूं स्वाहा । एतन्मन्त्रमयुतद्वयं जप्त्वा सिद्धो भवति ।

पुष्य नक्षत्र में पुनर्नवा की जड़ और रुद्रदन्ती (रुदन्ती) की जड़ लाकर जौ के बीज के साथ एकत्र करके उक्त मंत्र 'ॐ ऐं पुरं क्षोभय भगवतीं गम्भीरय ब्लूं स्वाहा' से सप्तधा अभिमंत्रित करके उसे हाथ में बाँध लेने पर सर्वत्र पूजनीय हो जाता है । यह मन्त्र २०००० जप से सिद्ध होता है ॥ ३ ॥

उद्भ्रान्तपत्रं मञ्जिष्ठां ककुभं तगरं समम् ।
खाद्ये पाने तथा स्पर्शे दत्ते वश्यं भवत्यलम् ॥ ४ ॥

वायु से जो पत्र उड़कर आता है, वह पत्ता, मजीठ, ककुभ (अर्जुन) की छाल तथा तगर की लकड़ी को तुल्य परिमाण में मिलाकर मर्दन करके

जिसके खाद्य अथवा पेय में मिलाकर दिया जायेगा अथवा जिससे इसका स्पर्श कराया जायेगा, वह व्यक्ति वश में हो जायेगा ॥ ४ ॥

सिंहीमूलं हरेत् पुष्ये कट्यां बद्ध्वा जगत्प्रियः ।
निशि कृष्णचतुर्दश्यां महानीलीं श्मशानतः ।
उद्धृत्य नरतैलेन ह्यञ्जने लोकवश्यकृत् ॥ ५ ॥

पुष्य नक्षत्र में कण्टकारी की जड़ लाकर कटि में बाँधने से वह व्यक्ति पृथ्वी में सबका प्रिय हो जाता है । कृष्ण चतुर्दशी तिथि के निशाकाल में श्मशान में उगे महानीली वृक्ष के जड़ की बत्ती को मनुष्य-शरीर के तैल द्वारा जलाये । उससे बने हुए अंजन को आँखों में लगाने से वह व्यक्ति समस्त लोक को वशीभूत कर लेता है ॥ ५ ॥

तन्मूलं स्वस्य शुक्रेण ह्यञ्जने लोकवश्यकृत् ।
तन्मूलं बन्धयेद्धस्ते सर्वलोकप्रियो भवेत् ॥ ६ ॥

श्मशानस्थ महानीली की जड़ और अपने वीर्य को मिलाकर चक्षु में अंजन करने से सभी लोक वशीभूत हो जाते हैं । उक्त जड़ को हाथ में बाँधने से भी यही फल मिलता है ॥ ६ ॥

चन्द्रे पुष्ये समुद्धृत्य ब्रह्मदण्डीयमूलकम् ।
भोजयेत् सर्वसत्त्वानां वशीकरणमद्भुतम् ॥ ७ ॥

पुष्य नक्षत्र में जब चन्द्रनाड़ी (इड़ा) में श्वास प्रवाहित हो रहा हो, उस समय ब्रह्मदण्डी की जड़ को लाकर जिसे भी भोजन में मिलाकर दिया जाता है, वही व्यक्ति वशीभूत हो जाता है । यह सभी प्राणियों के लिए उपयोगी वशीकरण है ॥ ७ ॥

उलूकहृदयं तुल्यं कुमारीरोचने सुधीः ।
अञ्जनं लोचने वश्यमानयेद् भुवनत्रयम् ॥ ८ ॥

सुधी साधक उलूक-हृदय का मांस, घीकुआर तथा गोरोचन को समान मात्रा में ले । उसके द्वारा अंजन बनाकर नेत्र में लगाने से त्रैलोक्य वशीभूत हो जाता है ॥ ८ ॥

इन सबके हेतु मन्त्र है—

ॐ नमो महायक्षिणि अमुकं मे वशमानय स्वाहा । अस्य मन्त्रस्य पूर्वमेवायुतं जप्त्वा उद्भ्रान्तपत्रादि सर्वैर्योगाः कर्त्तव्याः । शतवारमभिमन्त्र्य सिद्धा भवन्ति ।

इस मन्त्र को उपर्युक्त समस्त प्रयोगों में प्रयुक्त करना आवश्यक है । दस हजार जप करने पर यह मन्त्र सिद्ध होता है । परन्तु उद्भ्रान्त पत्र के

अनन्तर जितने भी प्रयोग कहे गये हैं, उन समस्त प्रयुक्त वस्तुओं को प्रयोगार्थ १०० बार इस मन्त्र से पवित्र करने से सिद्धि मिल जाती है; इसे दस हजार बार जपना नहीं होगा।

सर्वेषामेव मन्त्राणां मन्त्रध्यानं पृथक्-पृथक्।
उक्तस्थाने यथासङ्ख्यामनुक्ते त्वयुतं जपेत् ॥ ९ ॥
मृगशीर्षे तु सङ्ग्राह्यं सुरक्तकरवीरकम्।
नवाङ्गुलं कीलकन्तु सप्तवाराभिमन्त्रितम्।
यस्य नाम्ना खनेद् भूमौ स वश्यो भवति ध्रुवम् ॥ १० ॥

ॐ ऐं स्वाहा। प्रथममयुतं जपः।

समस्त मन्त्र का ध्यान तथा जपसंख्या अलग-अलग कही जाती है। जिस मन्त्र की संख्या जितनी निश्चित है उस मन्त्र का उतना ही जप करना चाहिए। जहाँ कोई भी संख्या का अंकन नहीं है, वहाँ दस हजार जप किया जाता है।

मृगशिरा नक्षत्र में रक्तवर्ण वाले करवीर (कनेर) के वृक्ष की जड़ को लाकर उससे एक नवांगुल कील बनाये। इसे 'ॐ ऐं स्वाहा' मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करे। अब जिसका नाम लेकर जमीन में गाड़ा जाय वह वशीभूत हो जाता है। यह मन्त्र दस हजार बार जपने से सिद्ध होता है ॥ ९–१० ॥

अपामार्गस्य कीलन्तु मूलमुत्सार्यं त्र्यङ्गुलम्।
सप्ताभिमन्त्रितं यस्य गृहे क्षिप्तं वशी भवेत् ॥ ११ ॥

ॐ मदनकामदेवाय फट् स्वाहा।

अपामार्ग के जड़ की तीन अंगुल की कील बनाये। इस कील को 'ॐ मदनकामदेवाय फट् स्वाहा' मन्त्र द्वारा सात बार अभिमंत्रित करे। अब इसे जिसके गृह में फेंका जायेगा, वह वशीभूत होगा ॥ ११ ॥

शतमष्टोत्तरं जप्त्वा पूर्वमेव ततो नरः।
सिद्धो भवति तत् सत्यं तिलकं कुरुते वशम् ॥ १२ ॥

इसी मन्त्र को १०८ बार जपकर इससे मानव सिद्ध हो जाता है। उक्त अपामार्ग की जड़ को पीसकर तिलक करने से सबको वशीभूत किया जा सकता है ॥ १२ ॥

स्वयम्भुकुसुमं वस्त्रे गृहीत्वा त्रिपथे दहेत्।
शनेर्भौमस्य वारे वा तद्भस्मतिलकं कृतम्।
वशं नयति राजानमन्यलोकेषु का कथा ॥ १३ ॥

शनि किंवा मंगल वार को स्त्री के रजः को कपड़े में लेकर तिराहे पर उस वस्त्र को दग्ध करे। इस दग्ध वस्त्र के भस्म द्वारा ललाट पर तिलक

लगाना चाहिए। इससे राजा भी वश में हो जाता है, अन्य लोगों की बात ही क्या ॥ १३ ॥

ॐ नमो भैरवीतरे आज्ञाकाले कमलमुखे राजमोहने प्रजावशीकरणे स्त्रीपुरुषरञ्जिनि लोकवश्यमोहिनि अमुकं मे मोहय गुरुप्रसादेन ।

इस मन्त्र से तिलक को अभिमन्त्रित करके तब तिलक करना उचित है।

रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां लाङ्गलीमूलमुद्धरेत् ।
श्वेतच्छगलिकागर्भे शय्यया नरतैलकम् ।
क्षौद्रतालकसंयुक्तं तिलकं सर्ववश्यकृत् ॥ १४ ॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को लांगलीमूल लाकर उससे श्वेतवर्णा छागी (बकरी) के गर्भशय्या में नरतैल, मधु तथा हरिताल मिलाकर मले और उसका तिलक लगाये। इससे सभी वशीभूत हो जाते हैं ॥ १४ ॥

अजमोदस्य मूलेन तुरगीगर्भशय्यया ।
हरितालश्च सम्पिष्य गुटिका मुखमध्यगा ।
यद् यस्माद् याचते वस्तु तत् तदेव ददात्यसौ ॥ १५ ॥

अजमोदा वृक्ष की जड़ तथा गर्भवती घोड़ी की गर्भशय्या को एक साथ मर्दन करके उसमें हरिताल का भी मर्दन करे। इसकी गुटिका बनाये। इस गुटिका को मुख में रखकर जिससे जिस वस्तु की कामना करेगा वह अपनी उस वस्तु को दे देगा। गुटिका बनाकर तथा उसको मुख में रख कर मन्त्र पढ़े—

'ॐ अश्वकर्णेश्वरि दुर्बले आइकेशिकजटाकलापे ढक्कारफेत्कारिणि स्वाहा'। वटपत्रं मयूरशिखया तुल्यं तिलकं लोकवश्यकृत् ।

इसी मन्त्र को पढ़ते हुए बरगद का पत्ता तथा मोर की शिखा बराबर मात्रा में एकत्र करके मर्दन करे। इससे तिलक करने पर सभी नर वशीभूत हो जाते हैं।

विष्णुक्रान्ता भृङ्गराजं रोचनं सहदेविका ।
श्वेतापराजितामूलं कन्याहस्ते प्रलेपयेत् ।
वारिणा तिलकं कुर्यात् सर्वलोकवशङ्करम् ॥ १६ ॥

विष्णुक्रान्ता (कृष्ण अपराजिता), भृंगराज की जड़, गोरोचन, सहदेविका (सहदेई) तथा श्वेत अपराजिता की जड़ को एक साथ मलकर कुमारी कन्या के हाथ में लेप करे। तदनन्तर इस लेप का तिलक जल में मिलाकर करने से सभी वशीभूत हो जाते हैं ॥ १६ ॥

रक्ताश्वमारपुष्पञ्च कुष्ठञ्च श्वेतसर्षपम् ।
श्वेतार्कमूलं तगरं श्वेतगुञ्जा च वारुणी ।। १७ ।।
कृष्णाष्टम्यां पुष्ययुक्ता चतुर्द्दश्यां तथाविधम् ।
पेषयेत् कन्यकाहस्ते तिलकं सर्ववश्यकृत् ।। १८ ।।

रक्त अश्वमार (लाल करवीर) के फूल, कूठ, सफेद सरसों, श्वेत माकन्द की जड़, तगर, सफेद घुमची (गुंजा) तथा वारुणीमूल को पुष्यनक्षत्र की कृष्णाष्टमी अथवा पुष्य नक्षत्र की कृष्ण चतुर्दशी को एक साथ मिलाकर मर्दन करना चाहिए । तदनन्तर उसका लेप कुमारी कन्या की हथेली पर करे। तत्पश्चात् इसका तिलक ललाट पर धारण करने से सभी वशीभूत हो जाते हैं ।। १७-१८ ।।

अपामार्गस्य मूलन्तु पेषयेद् रोचनेन तु ।
ललाटे तिलकं कृत्वा वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ।। १९ ।।

अपामार्ग की जड़ तथा गोरोचन को एक साथ मिलाकर कन्या की हथेली पर मर्दन करके उसका तिलक लगाने से तीनों लोक का वशीकरण होजाता है ।। १९ ।।

"ॐ नमो वरजालिनि सर्वलोकवशङ्करि स्वाहा" । अयं मन्त्रः उक्तयोगानाम् अष्टोत्तरसहस्रजपात् सिद्धो भवति ।

पूर्वोक्त प्रयोगों में 'ॐ नमो वरजालिनी सर्वलोकवशङ्करी स्वाहा' मन्त्र द्वारा समस्त वस्तुओं का अभिमंत्रण करे । लेपन, तिलक तैयार करने तथा लगाने में यही मन्त्र जपे । १००८ जप से सिद्धि होती है ।

उलूकचक्षुरादाय गोरोचनसमन्वितम् ।
वारिणा सह दातव्यं पानाद् वश्यकरं परम् ।। २० ।।

उलूक के चक्षु को गोरोचन में मर्दन करके जल के साथ पिलाये । जो पीता है, वह वश में हो जाता है ।। २० ।।

उलूकस्य तु कर्णौं द्वौ चटकस्य विलोचनम् ।
तच्चूर्णं तिलके पाने तत्क्षणे गन्धपुष्पयोः ।
क्षिपेद् वा मस्तके यस्य स वश्यो जायतेऽचिरात् ।। २१ ।।

उल्लू के दोनों कान, गौरैया के नेत्र एकत्र करे । उसके चूर्ण का ललाट पर तिलक करने से संसार वशीभूत हो जाता है । जिस व्यक्ति के भोजन तथा पानी के साथ इसका चूर्ण मिलाया जायेगा, अथवा गंध एवं पुष्प के साथ मिलाकर सुंघाया जायेगा, अथवा जिसके मस्तक पर छिड़क दिया जायेगा; वह साध्य व्यक्ति तत्काल वशीभूत हो जायेगा ।। २१ ।।

मांसं ग्राह्यमुलूकस्य कुङ्कुमागुरुचन्दनम् ।
गोरोचनं समं पिष्टं भक्ष्ये पाने जगद्वशम् ।
स्त्रियो वा पुरुषो वापि सहस्रजपनाद् भवेत् ॥ २२ ॥

ॐ ह्लीं ह्लीं ह्लः क्षः ह्लेः फट् नमः ।

कुंकुम, उलूक का मांस, अगुरु, रक्तचदन तथा गोरोचन को समान मात्रा में मर्दन करे। इसे खाद्य अथवा पेय में जगत् भर में जिसे भी दिया जाये, वह वशीभूत हो सकता है। इसे 'ॐ ह्लीं ह्लीं ह्लः क्षः ह्लेः फट् नमः' का १००० जप करे। इसके द्वारा स्त्री अथवा पुरुष सभी को वशीभूत कर सकते हैं ॥ २२ ॥

कृतोपवासो गृह्णीयात् समूलाञ्चेन्द्रवारुणीम् ।
उत्तराभिमुखेनैव कुट्टयेत् तदुदूखले ।
तत्कल्कं त्रिकटूतुल्यमजामूत्रेण पेषयेत् ॥ २३ ॥

एक दिन पहले से उपवास करके इन्द्रवारुणी (पूर्वदिक् स्थित) को जड़ सहित उखाड़े। तदनन्तर उत्तर की ओर मुख करके उसे ऊखल में कूटना चाहिए। अब इस चूर्ण का कल्क (चटनी) तथा मरिच, पिप्पल एवं सोंठ को समान मात्रा में लेकर बकरी के मूत्र में मिलाये ॥ २३ ॥

छायाशुष्कां वटीं कुर्यात् सा वटी रक्तच्चन्दनम् ।
घृष्ट्वाथ स्वाङ्गुलीं लिप्त्वा तथा स्पृष्टे जगद्वशम् ॥ २४ ॥

अब इसे अच्छी तरह मिलाकर छाया में सुखाना चाहिए। अब उसे रक्तचन्दन में मिलाकर अपनी उंगली में लेपन करे। इस उंगली से जिस व्यक्ति को भी स्पर्श किया जायेगा, वही वशीभूत हो जायेगा। इस प्रयोग से जगत् का प्रत्येक व्यक्ति (लेपस्पर्श द्वारा) वशीभूत हो जाता है ॥ २४ ॥

सा वटी देवदारुश्च तुल्यश्च सितचन्दनम् ।
जले घृष्ट्वा विलेपाय दत्तं यस्य भवेद्वशः ॥ २५ ॥
सा वटी रोचनं तुल्यं कृत्वा तोयेन पेषयेत् ।
अनेन तिलकं कृत्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ २६ ॥

ॐ नमः शची इन्द्राणी सर्ववशङ्करी सर्वार्थसाध्रिनी स्वाहा । अस्य सहस्रे जप्ते पूर्वयोगसिद्धिः ।

इस वटिका में देवदारु एवं श्वेतचन्दन समान भाग में जल के साथ मर्दन करे । इसे जिसे भी लेपन हेतु दिया जायेगा, वह वशीभूत हो जायेगा। इसी वटिका में गोरोचन समान मात्रा में मिलाकर जल के साथ मले। इसके तिलक से सर्वत्र विजय मिलती है ॥ २५-२६ ॥

इन योगों के लिए १००० बार इस मन्त्र को जपे—'ॐ नमः शची इन्द्राणी सर्ववशङ्करी सर्वार्थसाधिनी स्वाहा'।

कृष्णपक्षचतुर्दश्यामष्टम्यां वा उपोषितः।
बलिं दत्वा समुद्धृत्य सहदेवीं सुचूर्णयेत्।
ताम्बूलेन तु तच्चूर्णं योज्यं वश्यकरं परम् ॥ २७ ॥

कृष्णपक्ष युत चतुर्दशी अथवा अष्टमी को उपवासपूर्वक रहे और देवताओं को बलि देकर सहदेई लाकर उसको कूट कर महीन चूर्ण बनाये। इस चूर्ण को ताम्बूल में छोड़कर जिसे भी दिया जायेगा, वह वशीभूत हो जायेगा ॥२७॥

रोचनासहदेवीभ्यां तिलको वश्यकारकः।
मनःशिला च तन्मूलमञ्जयेत् सर्ववश्यकृत् ॥ २८ ॥

गोरोचन तथा सहदेई को पीसकर मिलाये। इसका तिलक सभी को वशीभूत कर लेता है। मनःशिला (मैनसिल) तथा सहदेई की जड़ को पीसे और इन्हें आँख में अंजन के समान लगाये। इससे सभी वशीभूत हो जाते हैं ॥ २८ ॥

ताम्बूलेन तु सप्ताहं सहदेवीं प्रयोजयेत्।
राजा वश्यमवाप्नोति सर्वलोकेषु का कथा ॥ २९ ॥

एक सप्ताह तक ताम्बूल के साथ सहदेई मिलाकर खिलाने से राजा भी वशीभूत हो जाता है और पुरुषों की तो बात ही क्या है ॥ २९ ॥

शिरसा धारयेत् तच्च चूर्णं सर्वत्र वश्यकृत्।
मुखे क्षिप्त्वाऽथ तन्मूलं कट्यां बद्ध्वा च कामयेत्।
या नारीं सा भवेद् वश्या मन्त्रयोगेन नान्यथा ॥ ३० ॥

ॐ नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वमुखरञ्जिनि सर्वेषां महामाये मातङ्गकुमारिके लेपे लघु-लघु वशं कुरु कुरु स्वाहा। सहस्रजपे उक्तयोगानां सिद्धिः।

सहदेई का चूर्ण मस्तक पर धारण करने से सभी वशीभूत हो जाते हैं। सहदेई की जड़ को मुख में रखकर अथवा कमर में बाँध कर जिस स्त्री की कामना की जायेगी, वह रमणी मन्त्रप्रयोग से वशीभूत हो जायेगी ॥ ३० ॥

मन्त्र—'ॐ नमो भगवती मातङ्गेश्वरी सर्वमुखरञ्जिनी सर्वेषां महामाये मातङ्गकुमारिके लेपे लघु-लघु वशं कुरु कुरु स्वाहा'। इसे १००० बार जपना चाहिए।

सुनिर्वृत्तचिताङ्गारं शृगालरुधिरैः सह।
यस्यैव शिरसि क्षिप्तं स वश्यो भवति ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

श्मशानस्थ चिता के बुझे हुए कोयले तथा शृगाल के रुधिर को मिलाकर जिसके मस्तक पर छिड़क दिया जाये, वह व्यक्ति निःसन्देह वशीभूत हो जाता है ॥ ३१ ॥

शिखिपित्तश्च गोरम्भा मोहिनी रोचना शिखा ।
पेषयेत् कन्यकाहस्तात् स्पर्शे पाने जगद्वशम् ॥ ३२ ॥

मोर का पित्त, गोरम्भा, चमेली की फूल, रोचना और मोर की चोटी को एक साथ मलना चाहिए । इसे जिसके अंग से स्पर्श कराया जायेगा अथवा पिला दिया जायेगा, वह वशीभूत हो जायेगा ॥ ३२ ॥

श्वेतापराजितामूलं चन्द्रग्रहण उद्धृतम् ।
अञ्जिताक्षो नरस्तेन तिलको लोकवश्यकृत् ॥ ३३ ॥

चन्द्रग्रहण काल में सफेद अपराजिता की जड़ को लाकर उसका अंजन बनाये । जो भी व्यक्ति इसे आँखों में लगायेगा अथवा उसका तिलक करेगा, वह सबको वशीभूत कर सकता है ॥ ३३ ॥

मेघनादस्य मूलस्तु वक्त्रस्थं वश्यकारकम् ।
प्रतिवादी भवेन्मूकोऽथवा याति दिगन्तरम् ॥ ३४ ॥

मेघनाद (चौलाई) की जड़ को मुख में रखने से सभी वश में हो जाते हैं । उसका प्रतिवादी उसे देखते ही मूक हो जाता है, अथवा अन्यत्र चला जाता है ॥ ३४ ॥

ग्राह्यं कृष्णचतुर्दश्यां श्वेतगुञ्जीयमूलकम् ।
ताम्बूलेन प्रदातव्यं सर्वंलोकवशङ्करम् ॥ ३५ ॥

कृष्णपक्ष की चतुदर्शी को सफेद घुमची की जड़ को ताम्बूल के साथ देने से सभी वश में हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

शिला-रोचनतन्मूलं वारिणा तिलके कृते ।
सम्भाषणेन सर्वेषां वशीकरणमुत्तमम् ॥ ३६ ॥

मनःशिला (मैनसिल), रोचना (गोरोचन) तथा श्वेत घुमची की जड़ को पानी में पीसकर तिलक करने से जिस व्यक्ति से बातचीत की जायेगी, वह वशीभूत हो जायेगा ॥ ३६ ॥

स्वर्णवेष्टिततन्मूलं समुद्रं कारयेद् बुधः ।
तद्वाक्याद् वशमायाति प्राणैरपि धनैरपि ॥ ३७ ॥

सफेद घुमची की जड़ को स्वर्ण में भरकर उसकी अंगूठी बनाकर धारण करने से उस व्यक्ति की बातचीत सबके मन एवं प्राण को वशीभूत कर लेती है ॥ ४७ ॥

चर्वयित्वा तु तन्मूलं तेनैव तिलकं कृतम् ।
दृष्टमात्रे वशं याति नारी वा पुरुषोऽपि वा ।। ३८ ।।

ॐ वज्रकिरणे शिवे रक्ष रक्ष भगवति ममादि अमृतं कुरु कुरु स्वाहा । उक्तयोगानां सहस्रजपे सिद्धिः ।

श्वेतगुंजा की जड़ को चबाकर उसके द्वारा तिलक करे। उसे देखने मात्र से नर-नारी वशीभूत हो जाते हैं।

इन सबके प्रयोगार्थ इस मन्त्र का एक सहस्र जप करे—'ॐ वज्रकिरणे शिवे रक्ष रक्ष भगवती ममादि अमृतं कुरु कुरु स्वाहा'।

कृतोपवासो मन्त्री तु पुष्ये कृष्णाष्टमीयुते ।
पुष्पधूपबलिं दत्त्वा घृतेनैव तु दीपयेत् ।
दत्त्वा मन्त्रं जपेत्तत्र ह्यष्टाधिकसहस्रकम् ।। ३९ ।।

ॐ श्वेतवर्णे सितपर्वतवासिनि अप्रतिहते मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा ।

एक दिन पहले साधक उपवास करे। अगले दिन पुष्य नक्षत्र युत कृष्णाष्टमी को पुष्प-धूप-बलिपूजा करके घृत का दीपक दान करे। यह सब प्रदान करके इस मंत्र का १००८ जप करे। 'ॐ श्वेतवर्णे सितपर्वतवासिनि अप्रतिहते मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा ।। ३९ ।।

श्वेतगुञ्जाफलं ग्राह्यं तत्स्थानान्मृत्तिकायुतम् ।
घृतेन लेपयेत् सर्वं नवपात्रे तु शोभने ।। ४० ।।
क्षिप्त्वा कृष्णचतुर्दश्यामष्टम्यां भुवि निक्षिपेत् ।
समन्त्रेणोदकेनैव सिञ्चेन्नित्यं फलावधि ।। ४१ ।।

श्वेतगुंजा का फल लेकर वहाँ की मृत्तिका और घृत से उसका लेपन करे। अब इसे एक सुन्दर नवीन पात्र में रखकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी अथवा अष्टमी को पृथ्वी में गाड़ देना चाहिए। जब तक इस बीज से पौधा नहीं निकलता तब तक यह मन्त्र पढ़कर—"ॐ श्वेतवर्णे सितवासिनि श्वेतपर्वतवासिनि सर्वकार्याणि कुरु कुरु अप्रतिहते नमो नमः स्वाहा" उसका सिंचन नित्य करता रहे; जब तक फल नहीं लग जाता ।। ४०-४१ ।।

पुनः पुनः शुचिर्भूत्वा सोपवासो जितेन्द्रियः ।
धूपदीपोपचाराद्यैर्न्यासं कृत्वा समुद्धरेत् ।। ४२ ।।

पौधे में फल परिलक्षित होने पर साधक एक दिन उपवास करके तथा जितेन्द्रिय स्थिति में कृष्णपक्ष की उस अष्टमी को जब पुष्य नक्षत्र हो, पवित्रता

से न्यास करके धूप-दीप आदि से वृक्ष का पूजन करे और अंगन्यास करके निम्नलिखित प्रक्रिया करे—

अंगन्यास मंत्र—ॐ श्वेते हृदयाय नमः ।
ॐ पद्ममुखे शिरसे स्वाहा ।
ॐ नमः सर्वज्ञानमये शिखायै वषट् ।
ॐ नमः सर्वशक्तिमये कवचाय हुं ।
ॐ नमो नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ परमन्त्रभेदेन अस्त्राय फट् ।

(सर्वाण्यङ्गानि नमोऽस्तु प्रणवादीनि ।) अर्थात् समस्त न्यासमन्त्रों के प्रारंभ में ॐ लगाना चाहिए ।

इस अंगन्यास को करने के अनन्तर "ॐ नमो भगवति ह्लीं श्वेतवासे नमो नमः स्वाहा" पढ़ते हुए इस पौधे को उखाड़ लेना चाहिए ॥ ४२ ॥

अस्य च मूलमन्त्रस्य पूर्वमेवायुतं जपेत् ।
दशांशं हवनं कुर्यात् तिलदूर्वाघृतप्लुतम् ॥ ४३ ॥
एवं कृत्वा समुद्धृत्य गुञ्जामूलं सुसिद्धिदम् ।
तन्मूलं मधुना युक्तं लेपः सर्वत्र वश्यकृत् ॥ ४४ ॥

इस प्रक्रिया के पहले "ॐ नमो भगवति ह्लीं श्वेतवासे नमो नमः स्वाहा" इस मन्त्र को दस सहस्र संख्या में जपना चाहिए । जप के $\frac{१}{१०}$ संख्या का हवन घृत-तिल तथा श्वेत दूर्वा द्वारा करे ($\frac{१}{१०}$ = १००० मंत्रों द्वारा हवन) ।

इस प्रकार से समस्त कार्य करने के अनन्तर सुसिद्धिप्रद गुंजामूल (जड़) को लेकर (जिसे उखाड़ा गया था) उसको और श्वेतचन्दन को घिसकर जो लेप किया जाता है, वह वशीकरण करता है । यदि इस जड़ को मधु के साथ पीसकर अंगों में लगाते हैं, तब सभी लोग वश में हो जाते हैं ॥ ४३-४४ ॥

मनःशिला च तन्मूलं वारिणा श्वेतचन्दनम् ।
घृष्ट्वा तत् तिलकं कुर्यात् सर्वलोकवशङ्करम् ॥ ४५ ॥

उक्त प्रकार से तैयार की गयी श्वेतगुंजा की जड़, मैनसिल, सफेद-चन्दन को एक साथ पीसकर ललाट पर तिलक लगाने से सभी लोग वशीभूत हो जाते हैं ।

तन्मूलं सर्षपं श्वेतं प्रियङ्गु च समं समम् ।
चूर्णितं मस्तके यस्य क्षिप्तं वश्यकरं परम् ॥ ४६ ॥

पूर्वोक्त श्वेतगुंजा की जड़, सफेद सरसों, प्रियंगु को समान-समान मात्रा में चूर्ण करके जिसके भी मस्तक पर फेंका (लगाया) जाता है, वह वश में हो

जाता है। इन सभी प्रक्रिया में तिलक लगाने अथवा लेप करने किंवा चूर्ण फेंकने के पूर्व १०८ बार यह मन्त्र पढ़ना चाहिए।

"ॐ नमः श्वेतगात्रे सर्वलोकवशङ्करि दुष्टान् वशं कुरु कुरु मे वशमानय स्वाहा ॥ ४६ ॥

वासामूलं प्रियङ्गुश्च कुष्ठैलां नागकेशरम्।
श्वेतसर्षपसंयुक्तो धूपः सर्ववशङ्करः ॥ ४७ ॥

वासा (अड़ूसा) की जड़, प्रियंगु, कूठ, इलायची, नागकेशर तथा श्वेत सरसों की धूप नीचे लिखे मन्त्र से १०० बार अभिमन्त्रित करके देने से सभी वश में हो जाते हैं।

'ॐ कामिनी माधवी माधवी नमः।' अनेन धूपमभिमन्त्रयेत्। अथानेन मन्त्रेण शतमभिमन्त्रितं पुष्पं यस्य हस्ते दीयते यस्य नाम्ना नित्यं सप्तग्रासमन्नं भुज्यते सप्तदिनेन स वश्यो भवति।

"ॐ कामिनी माधवी माधवी नमः" मन्त्र द्वारा धूप को १००८ बार अभिमन्त्रित करे। जिसे यह धूप लगेगी वही वशीभूत होगा। इस मंत्र को १०० बार पढ़कर किसी पुष्प को अभिमंत्रित करके जिसे भी दिया जाता है, वह वशीभूत हो जाता है। इस मन्त्र से जिस किसी का नाम लेकर सात ग्रास अन्न को प्रतिदिन सात दिन तक खाने से वह व्यक्ति वशीभूत हो जाता है, जिसका नाम लेकर ग्रास खाया गया था ॥ ४७ ॥

ॐ कटङ्कटे घोररूपिणि स्वाहा। अस्य मन्त्रस्य उक्तसिद्धिश्च पूर्वमन्त्रवत्।

'ॐ कटङ्कटे घोररूपिणि स्वाहा'। इस मन्त्र से भी पूर्वोक्त सिद्धि मिल जाती है। विधि पूर्ववत् है। इसे १०८ बार जपना चाहिए।

ॐ घण्टाकर्णाय नमः। अस्य पूर्वमेवायुतं जप्त्वा ततोऽनेन मन्त्रेण पाषाणं सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा पत्तने ग्रामे वा क्षिपेत्। तेन पाषाणेन वृक्षं ताडयेत्। ग्राममध्ये अप्रार्थितं सुखभोगं प्राप्नोति।

'ॐ घण्टाकर्णाय नमः' का पहले १०००० जप करके किसी पत्थर के खण्ड को जिस ग्राम अथवा नगर में फेंक दिया जाये अथवा उस पत्थर से किसी वृक्ष पर आघात किया जाये, तब वहाँ अयाचित सुखभोग प्राप्त होगा।

कन्दराधो जपेल्लक्षद्वयं मन्त्रस्य साधकः।
घृताक्तैर्गुग्गुलैर्होमैर्देवी सौभाग्यदायिनी।
त्रैलोक्यं वशमायाति स्पृष्टमात्रे न संशयः ॥ ४८ ॥

ॐ क्लीं जनके स्वाहा।

तृतीयं पटलम्

अथ राजवश्यमाह

कुङ्कुमं चन्दनञ्चैव रोचनं शशिमिश्रितम् ।
गवां क्षीरेण तिलकं राजवश्यकरं परम् ॥ १ ॥

ॐ क्लीं सः अमुकं मे वशं कुरु कुरु स्वाहा' । पूर्वमेव सहस्रं जप्त्वा ततोऽनेन मन्त्रेण सप्ताभिमन्त्रितं तिलकं कुर्यात् ।

अब राजबशीकरण कहा जाता है । कुंकुम, रक्तचन्दन, गोरोचन तथा कपूर को समान मात्रा में लेकर उसका गोदुग्ध से तिलक करने से राजा वश में हो जाता है । इससे पहले 'ॐ क्लीं सः अमुकं मे वशं कुरु कुरु स्वाहा' । इस मन्त्र का एक हजार बार जप करके इसी से सात बार अभिमन्त्रित करने के उपरान्त तिलक लगाना चाहिए । 'अमुक' के स्थान पर जिसे वश में करना है, उसका नाम लेना चाहिए ॥ १ ॥

चक्रमर्दस्य मूलन्तु हस्तर्क्षे तु समुद्धरेत् ।
राजद्वारे भवेत् पूज्यो हस्ते बद्धा च वादजित् ॥ २ ॥

ॐ सुदर्शनाय हुं फट् स्वाहा । पूर्वमेव सहस्रजपेन सिद्धिः ।

हस्त नक्षत्र में चक्रमर्द (चकवड़) की जड़ को उखाड़ कर 'ॐ सुदर्शनाय हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे । इसे जो व्यक्ति बाहु में धारण करता है, उसे राजद्वार में सम्मान प्राप्त होता है । इस मन्त्र को पहले १००० बार जप लेना चाहिए, तब सिद्ध होती है ॥ २ ॥

पूर्वमेवायुतं जप्त्वा चण्डमन्त्रस्य सिद्धये ।
ततो ह्यौषधयोगाय कुरु सप्ताभिमन्त्रितम् ।
सिध्यन्ति सर्वकर्माणि पूर्वमेव प्रभावतः ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं रक्तचामुण्डे रक्तं कुरु कुरु अमुकं मे वशमानय स्वाहा । अन्य चण्डमन्त्रः सर्वसिद्धो भवति ।

पहले दस हजार बार 'ॐ ह्रीं रक्तचामुण्डे रक्तं कुरु कुरु अमुकं मे वशमानय स्वाहा' को जपे । 'अमुकं' की जगह जिसे वशीभूत करना हो उसका नाम युक्त करे । औषध-संग्रह, प्रस्तुति तथा प्रयोग के लिए इस मन्त्र का ७-७ बार प्रयोग करे । इसके प्रभाव से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

मञ्जिष्ठा कुङ्कुमञ्चैव ह्यजमोदा कुमारिका ।
चितिभस्म स्वरक्तन्तु स्वरेतसा च मारयेत् ॥ ४ ॥

पुष्ये च वटिकां कृत्वा खाद्ये पाने च दापयेत् ।
स्पृष्टे वा राजवश्यं स्याच्चण्डमन्त्रप्रभावतः ।। ५ ।।

मजीठ, कुंकुम, अजमोदा (यमानी), घृतकुमारी, चिताभस्म तथा अपने देह के रक्त को एकत्र करके उसमें अपने वीर्य की भावना देकर पुष्य नक्षत्र में वटी बनाये । भोजन अथवा जल के साथ इसे किसी को भी खिलाने पर वह वशीभूत हो जाता है । (इससे पूर्व चण्डमन्त्र का १०००० जप आवश्यक है और औषध-संग्रह, प्रस्तुति तथा प्रयोग के समय भी ७-७ बार इस चण्डमन्त्र का प्रयोग करे ।) यदि यह वटी राजा के देह से स्पर्श कराई जाये, तो वह भी चण्डमन्त्र के प्रभाव से वशीभूत हो जाता है ।। ५ ।।

श्वेतापराजितामूलं चन्द्रग्रहण उद्धृतम् ।
प्रभूणां भोजने देयं चण्डमन्त्राद् वशङ्करम् ।। ६ ।।

चन्द्रग्रहण के समय (चण्डमन्त्र ७ बार पढ़ कर) सफेद अपराजिता की जड़ लाये । उसे ७ बार चण्डमन्त्र पढ़कर स्वामी को भोजन-पानी में पीसकर देने से वह वशीभूत हो जाता है । प्रयोग से पहले दस हजार चण्डमन्त्र जपे ।। ६ ।।

उत्तरायां समादाय प्रातरश्वत्थब्रध्नकम् ।
करे बद्ध्वा तु सर्वत्र राजद्वारे जयावहम् ।। ७ ।।

उत्तराषाढ़ा-उत्तराभाद्रपद अथवा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के समय सुबह पीपल की जड़ ७ बार चण्डमन्त्र पढ़कर लाये । इसे ७ बार चण्डमन्त्र पढ़कर बाहु में बाँधने से साधक राजद्वार में अथवा अन्यत्र भी विजयी हो जाता है । पहले १०००० चण्डमन्त्र सिद्ध करे ।। ७ ।।

धात्रीब्रध्नं भरण्यास्तु विशाखे चाम्रब्रध्नकम् ।
पूर्वाफाल्गुनिनक्षत्रे ग्राह्यं दाडिमब्रध्नकम् ।
करे बद्ध्वा भवेद् वश्यो यदि राजा पुरन्दरः ।। ८ ।।

भरणी नक्षत्र में आँवले की जड़, विशाखा में आम्र की जड़, पूर्वाफाल्गुनी में अनार की जड़ ७-७ बार चण्डमन्त्र पढ़कर लाये । इन्हें ७-७ बार चण्डमन्त्र पढ़कर बाहु में बाँधने से यदि राजा इन्द्र के भी समान हो, तब भी वशीभूत हो जाता है । पहले १०००० चण्डमन्त्र सिद्ध करे ।। ८ ।।

आश्लेषायां गृहीत्वा तु नागकेशरब्रध्नकम् ।
करे बद्ध्वा भवेद् वश्यो यो राजा पृथिवीपतिः ।। ९ ।।

आश्लेषा नक्षत्र में ७ बार चण्डमन्त्र जप कर नागकेशर की जड़ लाये । इसे ७ बार जप कर बाहु में बाँधने से पृथ्वीपति राजा भी वशीभूत हो जाता है । प्रयोग के पूर्व १०००० चण्डमन्त्र सिद्ध करे ।। ९ ।।

निघृष्याङ्कोलतैलेन रक्तमण्डलमूलकम् ।
सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा तिलकं राजवश्यकृत् ॥ १० ॥

अंकोल फल के तेल के साथ रक्तमण्डल की जड़ लाकर इस जड़ को लाते समय ७ बार चण्डमन्त्र पढ़े । मिलाते समय भी ७ बार चण्डमन्त्र पढ़े । इसे ७ बार चण्डमन्त्र से अभिमन्त्रित करके तिलक करने से राजा वशीभूत हो जाता है । प्रयोग से पूर्व दस हजार चण्डमन्त्र जपे ॥ १० ॥

होमयेत् कटुतैलेन रक्तचन्दनराजिकाम् ।
सहस्राहुतिमात्रेण राजानं वशमानयेत् ॥ ११ ॥

कडुए तैल के साथ रक्तचन्दन तथा श्वेत सरसों मिलाकर उससे एक हजार चण्डमन्त्र से हवन करने से राजा वश में हो जाता है ॥ ११ ॥

सर्षपं छागरक्तेन हुत्वा रात्रौ स्वके गृहे ।
सङ्ख्या च पूर्ववद् वश्यो राजा भवति नान्यथा ॥ १२ ॥

रात्रि के समय अपने गृह में सरसों और बकरे के रक्त से चण्डमन्त्र द्वारा हवन करने से राजा अवश्य वश में हो जाता है, इसमें जप संख्या पहले की भाँति है ॥ १२ ॥

अथ परवादिजयः

(अब जो योग नीचे लिखे जा रहे हैं उनमें भी चण्डमन्त्र का ही १०००० जप प्रयोग करना है ।)

गोजिह्वा शिखिमूलं वा मुखे शिरसि संस्थिता ।
कुरुते सर्ववादेषु जयं पुष्ये समुद्धृता ॥ १३ ॥

पुष्य नक्षत्र में गोजिह्वा (गाजवाँ) तथा शिखि की जड़ (७-७ बार चण्डमन्त्र जपते हुए) लाये । इसे मुख में अथवा सिर पर रखने से विवाद में जय प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

मार्गशीर्षे तु पूर्णायां शिखिमूलं समुद्धरेत् ।
बाहौ शिरसि वा धार्यं विवादे विजयो भवेत् ।
बन्धनान्मुच्यते तेन शिखाबन्धे न संशयः ॥ १४ ॥

अगहन मास की पौर्णमासी तिथि को शिखि (गाजर) की जड़ लाये । उखाड़ते समय ७ बार चण्डमन्त्र जपे । बाहु अथवा शिर में धारण करने से विवाद में जय-प्राप्ति तथा बन्धन से मुक्ति हो जाती है ॥ १४ ॥

मेघनादस्य मूलन्तु वक्त्रस्थं तारवेष्टितम् ।
परवादी भवेन्मूकोऽथवा याति दिगन्तरम् ॥ १५ ॥

मेघनाद (चौलाई) की जड़ को ७ बार चण्डमन्त्र को पढ़कर उखाड़े । उसे

चाँदी द्वारा वेष्टित करके मुख में धारण करने से विवादी व्यक्ति मूक हो जाता है ॥ १५ ॥

निशि कृष्णचतुर्दश्यां महानीलीं श्मशानतः ।
आदाय बन्धयेद्धस्ते विवादे विजयो भवेत् ।
श्वेतगुञ्जान्वितं मूलं मुखस्थं दुष्टतुण्डजित् ॥ १६ ॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को रात्रि में श्मशान से महानीली (काली अपराजिता) की जड़ ७ बार चण्डमन्त्र पढ़कर उखाड़ना चाहिए । उसे हाथ में बाँधने से विवाद में विजय मिलती है । इसी प्रकार श्वेतगुंजा की जड़ को ७ बार चण्डमन्त्र को पढ़कर उखाड़े । इसके साथ उक्त महानीली की जड़ को ७ बार मन्त्र पढ़कर मुख में रखने से दुष्टों का मुख बन्द हो जाता है । इसके लिए पहले १०००० बार चण्डमन्त्र सिद्ध करना आवश्यक है ॥ १६ ॥

त्रिसन्ध्यं त्रिदिनं न्यस्तं यस्य मूर्ध्नि करस्थितम् ।
भस्म चटकनाशोत्थं स जयं लभते नरः ॥ १७ ॥

'ॐ नमो भस्मि जय धूलि धूसरि अर रणि जय वाग् बन्धयतु स्वाहा' ।

गौरैया चिड़िया की भस्म को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके जिस व्यक्ति के मस्तक पर तीन दिन तीनों काल की सन्ध्या के समय रखा जाता है, वह विवाद में विजयी हो जाता है । मन्त्र—'ॐ नमो भस्मि जय धूलि धूसरि अर रणि जय वाग् बन्धयतु स्वाहा' ॥ १७ ॥

अथ दुष्टदमनप्रयोगः

शुक्लपक्षयुते पुष्ये गुञ्जामूलं समुद्धरेत् ।
बद्धं शिरसि शय्यायां चौरबाधाहरं परम् ॥ १८ ॥

शुक्लपक्ष के पुष्य नक्षत्र में गुंजा की जड़ लाये । उसे शिर में अथवा शय्या पर रखने से चोरों का भय नहीं रह जाता ॥ १८ ॥

धात्र्यास्तु ब्रध्नकं ग्राह्यमाश्लेषायां प्रयत्नतः ।
हस्ते बद्धं भयं हस्तिचौरव्याघ्राणि राजकम् ॥ १९ ॥

आश्लेषा नक्षत्र में आँवले की जड़ लाकर हाथ में बाँधने से व्याघ्र, हाथी, चोर, राजा प्रभृति का भय नहीं रह जाता ॥ १९ ॥

आर्द्रायामाहृतं वंशब्रध्नकं कर्णधारितम् ।
विजयं प्रापयेद् युद्धे शत्रुमध्ये न संशयः ॥ २० ॥

यदि आर्द्रा नक्षत्र में बाँस की जड़ लाकर कानों में धारण किया जाये, तब वह युद्ध में शत्रु पर विजय प्राप्त करता है ॥ २० ॥

अङ्कोलतैलसम्भिन्नं कुर्यादाम्रातचूर्णकम् ।
अनेन स्पृष्टमात्रेण महाहस्ती वशो भवेत् ॥ २१ ॥

अंकोल वृक्ष के बीजों के तेल के साथ अमड़ा फल का चूर्ण मिलाकर यदि महान् हाथी को स्पर्श करा दिया जाये, तब वह स्पर्श मात्र से वशीभूत हो जाता है ॥ २१ ॥

गृहीत्वा हस्तनक्षत्रे चूर्णयित्वा छुछुन्दरीम् ।
तल्लेपेन गजा यान्ति दूरतो नतमस्तकाः ॥ २२ ॥

हस्तनक्षत्र में एक छछुन्दरी को मारकर उसका चूर्ण करें। उसका लेप करने से हाथी दूर से ही नतमस्तक होकर भाग जाते हैं ॥ २२ ॥

बिल्वपुष्पस्य चूर्णन्तु छुछुन्दर्याश्च तत्समम् ।
तल्लिप्याङ्गं नरं दृष्ट्वा दूरे गच्छन्ति कुञ्जराः ॥ २३ ॥

बिल्व पुष्प के चूर्ण तथा छछुन्दर के चूर्ण को समान भाग में लेकर लेपन करने से उस व्यक्ति को देखकर हाथी दूर भाग जाते हैं ॥ २३ ॥

मूलं मर्कटबल्ल्याश्च बाहोर्बद्धश्च मूर्द्धनि ।
दुष्टदन्तिभयं न स्याद् युद्धादिभयनाशनम् ॥ २४ ॥

मर्कट वल्लरी (अपामार्ग) की जड़ को बाहु में बाँधने तथा शिर पर धारण करने से उसे दुष्ट हाथियों का भय नहीं रह जाता। वह संग्राम में भी भयभीत नहीं होता ॥ २४ ॥

श्वेतापराजितामूलं हस्तस्थं वारयेद् गजान् ।
श्वेतं बृहतिमूलञ्च हस्तस्थं व्याघ्रभीतिनुत् ॥ २५ ॥

श्वेत अपराजिता की जड़ को हाथों में बाँधने से हाथी से बचाव हो जाता है। श्वेत बृहती (कंटकारी) की जड़ हाथ में बाँधने से व्याघ्रभय दूर हो जाता है ॥ २५ ॥

"ॐ चित्तचितलो वृच्छे आवे कुरु कुर्राजिपुच्छडोलावे हसे चले तरि भुहि भावे गौरी कर्त्तें महादेव वृणजाल आहाबाधीं पुताकिजे सहाया उत्तराजे इह तु भूमि छर्दुजे तारितैप्युनुधरुकीजै विवाह जपै या पुटालै भूजै मोरिहिष्कालं ये हनुमन्त की आज्ञा।"

अनेन मन्त्रेण स्वरक्तविन्दुं व्याघ्रं दृष्ट्वा क्षिपेत्। व्याघ्रो दूरे गच्छति। यद्वा यत्र ग्रामे नगरे वने वा व्याघ्रो मत्तो भवति, तत्र वनमध्ये शूकरं बद्ध्वा पूर्वमन्त्रे सहस्रमेकं जप्ते व्याघ्रः स्वमेवागत्य शूकरं

भक्षयित्वा तत् स्थानं त्यक्त्वा अन्यस्थानं गच्छति। इति दुष्टदमन-प्रयोगः।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे राजवशीकरण-विवादजयलाभो नाम तृतीयं पटलम् ॥

व्याघ्र को देखते ही उक्त मन्त्र को पढ़कर अपने रक्त की बूँदों को छिड़कें। व्याघ्र दूर चला जायेगा। जिस ग्राम, नगर अथवा वन में व्याघ्र उन्मत्त हो जाये, वहाँ शूकर को बाँधकर उक्त मन्त्र को १००० बार जपे। व्याघ्र स्वयं आकर शूकर को खाने के पश्चात् उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चला जाता है। यह दुष्टदमन प्रयोग समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के राजवशीकरण-विवादजयलाभ-वर्णन नामक तृतीय पटल समाप्त।

चतुर्थं पटलम्

सर्वजनवशीकरणम्

गृहीत्वा वटमूलञ्च जलेन सह घर्षयेत् ।
विभूत्या संयुतं भाले तिलकं सर्ववश्यकृत् ॥ १ ॥

वट का मूल जल में घिसकर उसमें भस्म मिलाकर मस्तक पर तिलक करने से सभी वशीभूत होते हैं ॥ १ ॥

बिल्वपत्रं गृहीत्वा तु छायाशुष्कन्तु कारयेत् ।
कपिलादुग्धसार्द्धेन वटीं कृत्वा तु गोलकम् ।
एभिस्तु तिलकं कृत्वा मोहनं सर्वतो जगत् ॥ २ ॥

बिल्वपत्र को छाया में सुखाये । उसे कपिला गौ के दुग्ध में मिलाकर बटिका बनाये । इसका तिलक मोहन करता है ॥ २ ॥

श्वेतगुञ्जारसं पेष्यं ब्रह्मदण्डीयमूलकम् ।
लेपमात्रे शरीराणां मोहनं सर्वतो जगत् ॥ ३ ॥

श्वेतगुंजा के रस में ब्रह्मदण्डी की जड़ को पीसकर शरीर में लेपन करने से जगत् मोहित हो जाता है ॥ ३ ॥

मनःशिलां च कर्पूरं पेषयेत् कदलीरसे ।
अनेनैव तु तन्त्रेण तिलकं लोकमोहनम् ॥ ४ ॥

केला के तने का रस, कर्पूर तथा मनःशिला को घोंटकर उसके तिलक द्वारा जगत् को मोहित किया जा सकता है ॥ ४ ॥

गृहीत्वा तुलसीपत्रं रौद्रे शुष्कन्तु कारयेत् ।
अश्वगन्धासमायुक्तं विजयाबीजसंयुतम् ॥ ५ ॥
कपिलादुग्धसार्द्धेन वटी रक्तिप्रमाणतः ।
तद्भुक्त्वा प्रातरुत्थाय मोहयेत् सर्वतो जगत् ॥ ६ ॥

तुलसी की पत्तियों को धूप में सुखाकर उसमें भाँग तथा अश्वगंधा पीसकर कपिला गौ के दुग्ध में पीसे और एक रत्ती की एक-एक वटिका बनाये । जो व्यक्ति प्रातः उठते ही इसका भक्षण करेगा, वह पृथ्वी पर सबको अनायास मोहित कर सकता है ॥ ५-६ ॥

सिन्दूरं कुङ्कुमञ्चैव गोरोचनसमन्वितम् ।
धात्रीरससमायुक्तं तिलकं लोकमोहनम् ॥ ७ ॥

गोरोचन, कुंकुम तथा सिन्दूर को आमलकी के रस में मिलाकर तिलक लगाने से जो उस तिलक को देखेगा, वह मोहित होगा ॥ ७ ॥

नागपुष्पं प्रियङ्गुश्च तगरं पद्मकेशरम् ।
जटामांसीसमं नीत्वा चूर्णयेत् मन्त्रवित्तमः ।
स्वाङ्गन्तु धूपयेत् तेन भजन्ते कामवत् प्रिये ॥ ८ ॥

महादेव कहते हैं—हे प्रिये ! नागकेसर, प्रियंगु, तगर, पद्मकेशर एवं जटामांसी को समान मात्रा में चूर्ण करे। उसका अपने अंगों में धुँवा दे। इससे उस व्यक्ति को देखते ही सभी वश में हो जाते हैं।

कन्यागृहे शालकाष्ठं क्षिपेदेकादशाङ्गुलम् ।
ऋक्षे च पूर्वफाल्गुन्यां यस्तां कन्यां प्रयच्छति ॥ ९ ॥

पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र में ११ अंगुल नाप की शालकाष्ठ (लकड़ी) को जिस स्त्री के घर में फेंका जायेगा, वह वशीभूत होगी ॥ ९ ॥

ब्रह्मदण्डीवचाकुष्ठचूर्णं ताम्बूलैः सह दापयेत् ।
रविवारे कृते योगः सर्वलोकवशङ्करः ॥ १० ॥

जन-सामान्य को वशीभूत करने के लिए ब्रह्मदण्डी, वच, कुष्ठ (कूठ) को चूर्ण करके पान के साथ (पान में रखकर) खिलाये। ऐसा पान खाने वाला वशीभूत हो जाता है ॥ १० ॥

तालं च तुलसीपत्रं कपिलादुग्धपेषितम् ।
अनेन तिलकं भाले सर्वलोकवशङ्करम् ॥ ११ ॥

हरिताल, तुलसीपत्र को कपिला गौ के दुग्ध में पीसकर उसका तिलक मस्तक पर लगाने से वशीकरण होता है ॥ ११ ॥

श्वेतदूर्वां गृहीत्वा तु कपिलादुग्धपेषिताम् ।
लेपमात्रे शरीराणां सर्वलोकवशङ्करः ॥ १२ ॥

श्वेत दूर्वा को कपिला गौ के दुग्ध में पीसकर शरीर पर लेप करने से सभी लोग वशीभूत होते हैं ॥ १२ ॥

बिल्वपत्राणि सङ्गृह्य मातुलुङ्गं तथैव च ।
अजादुग्धेन सम्पेष्य तिलकं लोकवश्यकृत् ॥ १३ ॥

बिल्वपत्र, मातुलुंग (बिजौरा नीबू) को बकरी के दुग्ध में पीसकर तिलक करने से लोग वशीभूत हो जाते हैं ॥ १३ ॥

श्वेतार्कं रोचनायुक्तमात्ममूत्रेण पेषितम् ।

ललाटे तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं क्षोभयेत् क्षणात् ।
दृष्टिमात्रेण तेनैव सर्वे भवन्ति किङ्कराः ॥ १४ ॥

श्वेतमदार की जड़ तथा गोरोचन को अपने मूत्र में मिलाकर पीसे और तिलक लगाये। जिसकी दृष्टि तिलक पर पड़ेगी, वह तत्काल वशीभूत होगा ॥ १४ ॥

तक्रपिष्टेन तालेन क्षिपेत् पुत्तलिकाकृतिम् ।
तामाघ्राय गृहाद् यान्ति मक्षिका नात्र संशयः ॥ १५ ॥

गृह से मक्षिका (मक्खी) भगाने के लिए तक्र (मट्ठा) तथा हरिताल को एक में मिलाकर घर में एक मक्खी (लकड़ी की) बनाकर उस पर लगाकर घर में रखे। उसकी गन्ध से सभी मक्खियाँ भाग जाती हैं ॥ १५ ॥

श्वेतार्कदुग्धं माषं च तिलचूर्णसमन्वितम् ।
अर्कपत्रेषु विन्यस्तं मूषिकान्तकरं गृहे ॥ १६ ॥

एक श्वेतमदार के पत्ते पर मदार का दुग्ध, तिल तथा उड़द का चूर्ण लेपन करके घर में रखे। इससे गृह से मूषक भाग जाते हैं ॥ १६ ॥

तालकं छागविन्मूत्रं पेषितं च पलाण्डुना ।
आलिप्य मूषिकं तेन सजीवन्तु विसर्जयेत् ।
तं दृष्ट्वा च गृहं त्यक्त्वा पलायन्ते हि मूषिकाः ॥ १७ ॥

हरिताल, बकरी की मेंगनी तथा मूत्र, प्याज को एक साथ पीसे। उस घोल में एक जीवित चूहे को डाल दे, जिससे यह लेप उसके शरीर पर लग जाये। अब उस चूहे को मुक्त छोड़ दे। इस जीवित चूहे को देखकर घर से समस्त मूषक भाग जाते हैं ॥ १७ ॥

मार्जारस्य मलं तालं पिष्ट्वा मूषिकमालिपेत् ।
तमाघ्राय गृहं त्यक्त्वा सद्यो निर्यान्ति मूषिकाः ॥ १८ ॥

हरिताल, बिल्ली का मल एक साथ मिलाकर उस घोल में एक जीवित चूहे को डाल दे। इस चूहे को मुक्त कर दे। इसे देखकर समस्त मूषक घर से भाग जाते हैं ॥ १८ ॥

गन्धकं हरितालञ्च ब्राह्मीं त्रिकटुकं समम् ।
रवौ नृमूत्रे तत् पिष्ट्वा लिप्ते मूषे तु पूर्ववत् ॥ १९ ॥

गंधक, हरिताल, पीपल, सोंठ तथा ब्राह्मी एवं कालीमिर्च को मनुष्य के मूत्र में पीसकर पूर्ववत् चूहे पर लेप करके उस चूहे को छोड़ दे। समस्त मूषक घर छोड़कर दूर चले जाते हैं। यह रविवार को करे ॥ १९ ॥

मषका मूषिका दीपाल्लोध्रतैलसमुद्भवात् ।
गुडेन मिश्रितात् सद्यः पलायन्ते गृहात् प्रिये ! ॥ २० ॥

मन्त्र—पूर्वे ब्राह्मचै बन्धः, पश्चिमे विष्णवे बन्धः, उत्तरे रुद्राय बन्धः, दक्षिणे यमाय बन्धः, पाताले वासुकाय बन्धः, फणीसहस्राय बन्धः, हुं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । करसम्पुटं कृत्वा तालत्रयं दद्यात्, मूषिकमशकनिवारणं भवति ।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे सर्ववशीकरणगृहक्लेशनिवारणो नाम चतुर्थं पटलम् ॥

लोधबीजों का तैल तथा गुड़ मिलाकर दीपक जलाये । तदनन्तर पूर्वोक्त साबर मंत्र का पाठ करके हाथ से ३ बार ताली बजाने से घर से मूषक तथा मच्छर पलायन कर जाते हैं ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित सर्वजनवशीकरणगृहक्लेशनिवारण नामक चतुर्थ पटल समाप्त ।

पञ्चमं पटलम्

अथ मोहनम्

चूर्णन्तु भावयेद् रक्ते महिषीकृष्णसर्पयोः ।
कृष्णधुस्तूरपञ्चाङ्गं तद्धूपो मोहकृन्नृणाम् ॥ १ ॥

अब मोहन-प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है। भैंस का रक्त, काले सर्प का रक्त तथा काले धतूरे का पंचाङ्ग (फल, जड़, पत्ता, छाल, फूल) एक में चूर्ण करके उसमें दोनों के रक्त की भावना दे। इसका अग्नि द्वारा धूप देने पर मोहन हो जाता है ॥ १ ॥

गुडं करञ्जबीजञ्च घूकचूर्णेन संयुतम् ।
समं पानेऽथवा धूपे मोहं प्रकुरुते नृणाम् ॥ २ ॥

गुड़, करंजबीज तथा उल्लू की हड्डी का चूर्ण मिलाकर समान मात्रा में पेय के साथ पान कराने से अथवा धूप देने से मोहन होता है ॥ २ ॥

हस्तिन्याः पादतलजं महिष्याः क्षुरजं तथा ।
शुचिना साधकेनात्र मलं ग्राह्यं प्रयत्नतः ।
मयूरस्य फलैः सार्द्धं धूमो ह्यत्यन्तमोहकृत् ।
वृश्चिकोद्भवचूर्णेन धूपो मोहकरो नृणाम् ॥ ३ ॥

हथिनी तथा भैंस के क्रमशः तलवे तथा खुर का मैल प्रयत्न द्वारा प्राप्त करे। उसके साथ अपामार्ग के फल को मिलाकर इसकी धूप देने से अत्यधिक मोहन होता है। बिच्छू के चूर्ण का धुआँ देने से भी मोहन होता है ॥ ३ ॥

गरलं धूर्त्तपञ्चाङ्गं महिषीशोणितं कणा ।
निशायां कुरुते मोहं धूपो गुग्गुलुसंयुतः ॥ ४ ॥

विष, धतूरा के फल-जड़-पत्ता-छाल तथा फूल, भैंस का रक्त, पिप्पल एवं गुग्गुल को मिलाकर धूप देने से उसकी गंध से रात्रि में लोग मोहित हो जाते हैं ॥

कुक्कुटाण्डकपालानि फलिना तालकं वचा ।
कनकाग्नियुतो धूपः स्वस्थस्यावेशकारकः ॥ ५ ॥

मुर्गी का अण्डा, उसके शिर की हड्डी, प्रियंगु, हरताल तथा वच को एकत्र करके मिलाकर कनक (धतूरा) के काष्ठ की अग्नि की धूप देने से स्वस्थ लोग भी मोहित हो जाते हैं ॥ ५ ॥

तृणस्थितजलौकाया विष्ठा वाऽजगरोद्भवा ।
तच्चूर्णैर्धूपिता रात्रौ मुह्यन्ति प्राणिनो ध्रुवम् ॥ ६ ॥

तृणों में रहने वाली जोंक की विष्ठा अथवा अजगर के मल के चूर्ण की रात में धूप देने से जीवमात्र मोहित हो जाते हैं ॥ ६ ॥

फलिनीविषधुस्तूरशिखिविष्ठाभिरन्वितः ।
समभागस्तथा धूपो मोहयत्येव निश्चितम् ॥ ७ ॥

प्रियंगु, विष, धतूरा की जड़ तथा मोर की विष्ठा को बराबर लेकर धूप देने से लोग मोहित हो जाते हैं ॥ ७ ॥

विशालाग्निशिलाचूर्णं लाङ्गली शिखरी जटा ।
महिषाक्षश्च तुल्यं स्याद् धूपो मोहयते नरम् ॥ ८ ॥

विशाला (गोरक्षकर्कटी), चिता, मैनसिल, चूर्ण, लांगली, अपामार्ग, जटामांसी तथा गुग्गुलु —इन सबको समान भाग में लेकर धूप देने से मनुष्य मोहित हो जाता है ॥ ८ ॥

तालकोन्मत्तबीजानि पानान्मोहयते नरम् ।
समं क्षीरसिताङ्कोलैः स्वस्थः पानाद् भवेन्नरः ॥ ९ ॥

हरिताल तथा धतूरा बीज को समान मात्रा में पिलाने से मनुष्य मोहित हो जाते हैं और दूध, चीनी तथा अंकोल के फल मिलाकर पिलाने से मनुष्य पुनः मोहन से छूट जाता है ॥ ९ ॥

छुछुन्दरी सर्पमुण्डं वृश्चिकस्य तु कण्टकम् ।
हरितालं समं धूपो मोहावेशकरो नृणाम् ॥ १० ॥

छछुन्दर, विषधारी सर्प का शिर, बिच्छू का काँटा तथा हरिताल की समान मात्रा द्वारा तय्यार की गयी धूप का प्रयोग व्यक्ति को मोहित कर देता है ॥ १० ॥

धूकचूर्णं विषं बिम्बं मोहिनी ह्यङ्कुली कणा ।
विशाला स्वर्णबीजानि सर्षपा मदनं फलम् ।
रक्ताश्वमारचूर्णन्तु समभागन्तु भावयेत् ॥ ११ ॥

उल्लू को मारकर उसका चूर्ण, विष, बिम्बफल, मोहिनी, अंकोल का फल, पिप्पली, गोरक्षकर्कटी, धतूरा के बीज, सरसों, मदनफल तथा रक्त करवीर का चूर्ण समान भाग लेकर उसकी भावना दे ॥ ११ ॥

आदित्यफलतूलश्च तन्तुवर्तिं विधाय च ।
कुसुम्भतन्तुभिर्गाढं मायाबीजेन वेष्टितम् ॥ १२ ॥
सप्तधा कनकद्रावैर्भावयेच्छादयेत् पुनः ।
डुण्डुभो जलसर्पो वा वसां तस्य समाहरेत् ॥ १३ ॥

वसालिप्तां पूर्ववर्त्ति प्रज्वाल्य धारयेद् गृहे ।
ये पश्यन्ति गृहे बाह्ये मुह्यन्ति च पतन्ति च ।। १४ ।।

अब मदार की रूई लेकर उसके द्वारा बत्ती बनाये और उस मोटी बत्ती में ये सब द्रव्य बीच में रखकर इसे कुसुम्भ-सूत्र द्वारा मायाबीज (ह्रीं) पढ़ते हुए दृढ़ता से बाँधे। अब इसको कनक (धतूरा) के रस से सात बार भावना देकर पुनः-पुनः सुखाये। अर्थात् प्रत्येक बार भावना देकर सुखाये, पुनः भावना दे। अब पानी के सर्प की चर्बी से इस बत्ती को लिप्त करके गृह में प्रज्वलित करना चाहिए। घर में अथवा बाहर, जो भी इस बत्ती का दीप जलते देख लेगा, वह मोहित होकर गिर पड़ेगा ।। १२-१४ ।।

मदनोडुम्बरश्चिश्चाप्रियङ्गुश्चामलीफलम् ।
बदरी च फलान्येषां प्रति सप्त समाहरेत् ।। १५ ।।
पुष्यार्के नरमूत्रेण कुमार्युत्थरसेन च ।
सम्पिष्य गुटिका कार्या तिलको मोहकारकः ।। १६ ।।

मदनफल, यज्ञ-उदुम्बर का फल, चिरचिटा, प्रियंगु, आमलकीफल तथा बदरीफल को ७-७ पुष्य नक्षत्र में तोड़कर लाना चाहिए। नरमूत्र तथा घृतकुमारी के रस में पीसकर गुटिका बनाये। इस गुटिका को घिसकर तिलक लगाने से सभी मोहित हो जाते हैं ।। १५-१६ ।।

इस अध्याय में लिखे इन सब प्रयोगों के लिए इस मन्त्र को १०८ बार जपे। द्रव्य-औषधि लाने, तोड़ने, पीसने के समय भी यही मन्त्र जपना चाहिए।

ॐ जं जम्भायै नमः। ॐ क्षुं स्तम्भायै नमः। ॐ सम्मोहायै नमः। ॐ ह्चं शोषायै नमः। ॐ महाभैरवाय नमः। ॐ श्रीभैरवानन्द आज्ञा श्रीवीरभद्र आज्ञा।

प्रत्यानयनकं वक्ष्ये येन मोहो विनश्यति ।
शतपुष्पं घृतं क्षीरं श्वेतार्कश्च पिबेत् सुधीः ।
गोसर्पिः सुरधूपेन मोहात् सुस्थो भविष्यति ।। १७ ।।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे मोहनं
नाम पञ्चमं पटलम् ।।

अब मोहग्रस्त को पुनः स्वभावस्थ (स्वस्थ) करने के लिए शतपुष्प, घृत, दुग्ध, सफेद मदार की जड़ मिलाकर पिलाये। गाय का घृत तथा देवधूप देने से भी मोहित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है ।। १७ ।।

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के
मोहन नामक पंचम पटल समाप्त।

षष्ठं पटलम्

विद्वेषणम्

काकोलूकस्य पक्षांस्तु ययोर्नाम्ना तु होमयेत् ।
उभयोर्नश्यति प्रीतिः कुरुपाण्डवयोरिव ।। १ ।।

अब विद्वेषण कहा जा रहा है। काक तथा उल्लू के पंखों को जिसका नाम लेकर हवन किया जाता है (अर्थात् काक के पंख से प्रथम पक्ष का नाम लेकर और उलूक के पंखों से द्वितीय पक्ष का नाम लेकर), उन दोनों के मध्य कौरव-पाण्डव के समान विद्वेषण होता है ।। १ ।।

काकोलूकखराश्वानां चतुर्णां ग्राहयेच्छिरः ।
निखनेद् द्वारदेशे तु तद्गृहे कलहः सदा ।। २ ।।

काक, उलूक, गदहा तथा अश्व का शिर लेकर जिसके द्वार पर गाड़ा जाता है, वहाँ सदा कलह होता रहता है ।। २ ।।

ब्रह्मदण्ड्यास्तु मूलानि काकमस्तकमेव च ।
जातीपुष्परसैर्भाव्यं सप्तरात्रं ततः पुनः ।
विद्वेषकारको धूपः शिखिपिच्छाहिकञ्चुकम् ।। ३ ।।

ब्रह्मदण्डी की जड़ से कौआ के मस्तक को सात दिन तक चमेली फूल के रस में भावना देकर उसमें मयूर की पूँछ तथा सर्प की केंचुल मिलाकर दोनों व्यक्ति के घर में धूप देने से दोनों में पारस्परिक विद्वेषण हो जाता है ।। ३ ।।

मूषमार्जाररोमाणि विप्रस्य क्षपणस्य च ।
धूपो विद्वेषकः पत्न्या पत्युः पित्रा सुतस्य च ।। ४ ।।

मूषक एवं बिल्ली के रोयें को और ब्राह्मण तथा सन्यासी के रोयें को लेकर धूप देने से पति से पत्नी का और पिता से पुत्र का विद्वेषण हो जाता है ।। ४ ।।

उलूकजिह्वामादाय विदारीरसभाविता ।
सोदराणामयं धूपो भवेद् विद्वेषकारकः ।। ५ ।।

उल्लू की जिह्वा को लेकर उसमें विदारीकन्द के रस की भावना देनी चाहिए। इसकी धूप देने से दो सहोदर भ्राताओं के आपस में भी विद्वेषण हो जाता है ।। ५ ।।

अधःपुष्पीं सोमवारे सूत्रेणावेष्ट्य मन्त्रयेत् ।
भौमवारे समुद्धृत्य पाटयेत् तां द्विधा समम् ।
यस्य नाम्ना क्षिपेन्नद्यां सा स्त्री सत्यं पतिं त्यजेत् ।। ६ ।।

सोमवार को अधःपुष्पी (गोजिह्वा) नामक पौधे को सूत्र द्वारा वेष्टित करके निमन्त्रित करे। अगले दिन (मंगल को) उस पौधे के दो समान भाग करे। एक टुकड़ा नारी का नाम लेकर और दूसरा टुकड़ा नर का नाम लेकर नदी में फेकें। ऐसा करने से वह स्त्री अवश्य अपने स्वामी को छोड़ देती है ॥ ६ ॥

काकोलूकस्य पक्षांस्तु मार्जारस्य नखानि च।
पादपांशुस्तयोर्ग्राह्यं कटुतैलेन होमयेत्।
एकविंशद्दिने तेषां विद्वेषो जायते ध्रुवम् ॥ ७ ॥

काक तथा उलूक के पंख, बिल्ली का नख और जिन दो व्यक्तियों के बीच विद्वेषण करना हो, उनके पैरों के नीचे की धूल अथवा मिट्टी को एक साथ मिलाकर कडुये तेल में मिश्रित करे और इससे ३ सप्ताह तक रोज होम करे। २१वें दिन दोनों पक्षों के बीच विद्वेषण हो जायेगा ॥ ७ ॥

आर्द्रायां विप्रमार्जारमूषकक्षपणस्य च।
केशरोमाणि सङ्गृह्य सम्यक् चूर्णं प्रकल्पयेत्।
तल्लिप्तं दर्पणं दृष्ट्वा विद्विषन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥

आर्द्रा नक्षत्र में ब्राह्मण, बिल्ली, मूषक तथा सन्यासी के केश तथा रोम एकत्र करके उनका चूर्ण करे। इस चूर्णलिप्त दर्पणों को दोनों पक्षों को दे दे। इससे उन दोनों में परस्पर विद्वेषण हो जाता है ॥ ८ ॥

महिषीच्छागयोर्मेदो घृतदीपस्य कज्जलैः।
अञ्जिताक्षो नरः पश्येद् विद्विषन्ति परस्परम् ॥ ९ ॥

भैंस की चर्बी, बकरी की चर्बी तथा घृत से एक दीपक जलाये। इसका अञ्जन लगाकर जिस-जिस को देखा जायेगा, वे परस्पर विद्वेषणग्रस्त हो जाते हैं ॥ ९ ॥

ब्रह्मवृक्षस्य शुष्कस्य काष्ठमेकं समाहरेत्।
तं छिन्द्यात् क्रकचेनैव तच्चूर्णं चान्तरीक्षतः।
गृहीत्वा तद्द्वयोर्मध्ये निक्षिपेद् द्वेषकृत् ततः ॥ १० ॥

पलाश वृक्ष की सूखी लकड़ी लाकर उसे आरी से काटे। छेदन करके ऊपर से ही उसका चूर्ण लेकर दो व्यक्तियों के ऊपर छिड़के। इससे उनमें परस्पर विद्वेषण होगा ॥ १० ॥

चिल्हमार्जारवाराहरोमाणि मूषकस्य च।
अनेन धूपमात्रेण विद्विषन्ति परस्परम् ॥ ११ ॥

चील पक्षी, बिल्ली, शूकर तथा मूषिक के रोम द्वारा धूप दे। इससे पारस्परिक विद्वेषण होता है।

इन सभी हेतु वस्तु लाते समय, बनाते समय तथा प्रयोग के समय निम्नलिखित मन्त्र को १०० बार जप कर सिद्ध करके तब इसे जपते रहें। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ नमो महाकपालिनि वृश्चिकोदरे दण्डपाशधरे अमुकस्यामुकेन सह विद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा ॥

जहाँ 'अमुकस्यामुकेन' कहा है, वहाँ दोनों व्यक्तियों का नाम जोड़ना चाहिए ॥ ११ ॥

धुस्तूरकरसैर्लिप्त्वा चिताङ्गारं ततो लिखेत्।
नाममन्त्रयुतौ यन्त्रौ स्थापयेत् तौ पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥
नद्यामुभयतीरस्थे निखनेद् वृक्षमूलके।
यन्नाम्ना लिखितौ यन्त्रौ तयोर्द्वेषः प्रजायते ॥ १३ ॥

चतुरस्त्रद्वयं मध्ये मन्त्रगर्भितं नाम लिखेत्। अनेन कार्यं सिद्धं भवति।

चिता के अंगार में धतूरे का रस लपेट कर उससे अलग-अलग दो विद्वेषण यंत्रों में जिनके बीच में विद्वेषण करना हो उनका अलग-अलग नाम अंकित करे। अब नदी तट पर स्थित पेड़ की जड़ में इन दोनों को अलग-अलग गाड़े। दोनों में विद्वेषण होगा। यन्त्र-प्रणाली है कि अलग-अलग दो चौकोर वर्ग बनाये, प्रत्येक में उपर्युक्त मन्त्र का अंकन करे। इससे कार्यसिद्धि होती है।

एकहस्ते काकपक्षमुलूकस्यापरे करे।
दर्भवद् धारयेद् यत्नात् त्रिसप्ताहं जलाञ्जलिम् ॥ १४ ॥

जैसे हाथों से कुशा पकड़ते हैं, उसी प्रकार एक हाथ में कौआ का पंख और दूसरे में उलूक पंख पकड़ना चाहिए। इस स्थिति में नदी में १००८ बार जलांजलि दें ॥ १४ ॥

नित्यं नद्यां प्रदातव्यमष्टोत्तरसहस्त्रकम्।
परस्परं भवेद्द्वेषः सिद्धयोग उदाहृतः ॥ १५ ॥

मन्त्र—ॐ आमोदकी प्रमोदकी गौरी मे गौरी अमुकस्य अमुकेन सह काकोलूकादिवत् कुरु कुरु स्फ्रों स्फ्रों स्वाहा।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे विद्वेषणं
नाम षष्ठं पटलम् ॥

२१ दिनों तक नित्य निम्नांकित मन्त्र में दोनों व्यक्ति का नाम युक्त करके जलांजलि देने से दोनों के मध्य विद्वेषण हो जाता है। यह सिद्धयोग है ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के विद्वेषण
नाम षष्ठ पटल समाप्त।

सप्तमं पटलम्

नपुंसकीकरणम्

नरो मूत्रयते यत्र कृष्णवृश्चिककण्टकम् ।
निखनेज्जायते षण्ड उद्धृत्य च पुनः सुखी ॥ १ ॥

अब पुरुषों को नपुंसक बनाने वाले प्रयोग कहे जा रहे हैं। जहाँ व्यक्ति मूत्र करता है, वहाँ वृश्चिक का काँटा गाड़े। इससे वह वहाँ मूत्र करते ही षण्ड हो जायेगा। काँटा (डंक) निकालते ही वह पुनः सुखी हो जाता है ॥ १ ॥

सभी षण्डीकरण प्रयोगों में यह मन्त्र विहित है—ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय कामप्रचण्डाय हन हन वैनतेयमुखेन खण्डय खण्डय स्वाहा ॥ प्रत्येक प्रयोगों में इसी मन्त्र का प्रयोग करे, जो ऊपर अंकित है।

अजामूत्रेण सम्भाव्या निशा षड्बिन्दुचूर्णकम् ।
पानाशनप्रयोगेण षण्डत्वं जायते नृणाम् ॥ २ ॥

हल्दी तथा षड्बिन्दु कीड़ा को एकत्र कर चूर्ण करके पूर्वोक्त मन्त्र द्वारा बकरी के मूत्र से भावना देनी चाहिए। इसे जिसे भी पिलाया अथवा खिलाया जाता है, वह नपुंसक हो जाता है ॥ २ ॥

तिलगोक्षुरयोश्चूर्णं छागीदुग्धेन पाचितम् ।
शीलितं मधुना युक्तं पिबेत् षण्डत्वशान्तये ॥ ३ ॥

तिल तथा गोखरू के चूर्ण को बकरी के दूध में पकाना चाहिए। इसे मधु के साथ मिलाकर मन्त्र पढ़कर पिलाने से यह नपुंसकता निवृत्त हो जाती है, जो उक्त प्रयोग से हुई है ॥ ३ ॥

जलौकादग्धचूर्णन्तु नवनीतेन भक्षितम् ।
यावज्जीवं न सन्देहो यूनां षण्डत्वकारकम् ।
धुस्तूरपुष्पभक्षेण पुनः सम्पद्यते सुखम् ॥ ४ ॥

जोंक को सुखाकर चूर्ण करके पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करते हुए मक्खन के साथ खिलाने से युवा भी आजीवन नपुंसक हो जाता है। पुनः धतूरा के पुष्प को खिलाने से वह ठीक हो जाता है। अभिमन्त्रित धतूरा पुष्प खिलाये ॥ ४ ॥

अमायान्तु रवौ ग्राह्यं करञ्जस्य तु मूलकम् ।
सगुडं भक्षणात् सद्यः षण्डत्वं जायते नृणाम् ॥ ५ ॥

रविवार को जब अमावस्या हो तब उक्त मन्त्र पढ़कर करंज की जड लाये। उसे गुड़ मिलाकर अभिमन्त्रित करके खिलाने से तत्काल नपुंसकता आ जाती है ॥ ५ ॥

वृषी वृषाणां सङ्ग्राह्यमन्तरिक्षेण गोमयम्।
साध्यस्य प्रतिमां तेन कृत्वाऽण्डे तस्य खण्डयेत्।
तत्क्षणाज्जायते षण्डो मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रितम् ॥ ६ ॥

जब गाय या साँड़ गोबर कर रहे हों, तब उसे हाथों पर रोक लेना चाहिए, ताकि जमीन पर न गिरे। इससे व्यक्ति की प्रतिमा बनाये। पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके इस मूर्त्ति के दोनों अण्डकोषों को निकाल दे। इससे वह व्यक्ति तत्क्षण नपुंसक हो जाता है ॥ ६ ॥

नक्षत्रे ह्यनुराधायां लाङ्गलीमूलमुद्धरेत्।
निशामूत्रस्थले पुंसो निखनेत् षण्डतां व्रजेत्।
समुद्धृत्य पुनः स्वास्थ्यं पूर्वमन्त्रेण योजयेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे षण्डीकरणं नाम सप्तमं पटलम्।

अनुराधा नक्षत्र में मन्त्र पढ़ते हुए लांगली (गजपिप्पली) की जड़ लाना चाहिए। व्यक्ति जहाँ रात्रि में मूत्र करता है, वहाँ वह जड़ मन्त्र से अभिमन्त्रित करके गाड़ दे। अब वह व्यक्ति नपुंसक हो जाता है। जड़ को पुनः वहाँ से उखाड़ने पर वह व्यक्ति स्वस्थ हो जायेगा ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के षण्डीकरण नामक सप्तम पटल समाप्त।

अष्टमं पटलम्

अधिक आहार तथा अनाहार

अत्याहारमनाहारं प्रवदामि समासतः।
योऽस्ति निःशेषलोकस्य जायते कौतुकं महत् ॥ १ ॥

अब अधिक आहार तथा अनाहार की प्रक्रिया का उपदेश किया जाता है। जो व्यक्ति अधिक आहार करता है, वह कौतुक का विषय भी हो जाता है ॥१॥

ब्रध्नकेनाऽक्षवृक्षस्य पीठं कृत्वासने स्थितः।
योऽसौ भुङ्क्ते घृतैः सार्द्धं भोजनं भीमसेनवत् ॥ २ ॥

बहेड़ा की जड़ द्वारा पीढ़ा बनाये। उसके आसन पर बैठकर जो घृत के साथ आहार करता है, वह भीमसेन के समान भोजन कर लेगा ॥ २ ॥

सन्ध्यायामक्षवृक्षस्य कर्त्तव्यमभिमन्त्रणम्।
प्रातः पुष्पाणि सङ्गृह्य मालां शिरसि धारयेत् ॥ ३ ॥

पहले संध्या समय बहेड़ा के वृक्ष को 'ॐ नमः सर्वाधिपतये ग्रस ग्रस शोषय भैरवी आज्ञापयति स्वाहा' ॥ इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। दूसरे दिन प्रातः इस वृक्ष के फूलों से माला गूंथे; उस समय भी मन्त्र पढ़ता रहे। अब उस माला को मन्त्र द्वारा शिर पर रखे। वह अधिक आहार करेगा ॥ ३ ॥

अधरं कृकलासस्य शिखास्थाने निबन्धयेत्।
वायुपुत्र इवाश्चर्यं स तु भुङ्क्तेऽन्नपर्वतम् ॥ ४ ॥

गिरगिट के ओठ को 'ॐ नाडीवेगेन उर्वशी स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़कर लाये और मन्त्र द्वारा शिखा में बाँधे। वह व्यक्ति भीम के समान अन्न का भोजन करता है ॥ ४ ॥

क्षुधानिवारण

अन्त्राणि कृकलासस्य मज्जां करञ्जबीजजाम्।
पिष्ट्वा तु गुटिकां कृत्वा त्रिलौहेन तु वेष्टयेत्।
तद्वक्त्रे धारयेद् योऽसौ क्षुत्पिपासा न बाधते ॥ ५ ॥

गिरगिट की आँत तथा करञ्जबीज का गूदा पीसकर उसकी गोली बनाकर त्रिलौह के तावीज में भरे। (त्रिलौह=एक भाग सोना, दो भाग चाँदी, छः भाग ताँबा गलाकर उसका खोल।) जो इस गुटिका को मुख में रखता है, उसे भूख-प्यास नहीं लगती। वस्तु लाते समय, खोल में भरते समय तथा मुख में रखते समय यह मन्त्र पढ़े—'ॐ वासं शरीरं अमृताकर्षय स्वाहा' ॥ ५ ॥

पद्मबीजं महाशालीं छागीदुग्धेन पाचयेत् ।
साज्यं तत्पायसं भुक्त्वा द्वादशाहं क्षुधापहम् ॥ ६ ॥

बकरी के दूध के साथ पद्मबीज तथा महाशालि के चावलों को पकाकर पायस (खीर) बनाये और घृत से खाये । उसे १२ दिनों तक भूख नहीं लगती । (इसमें भी ५वें श्लोक वाला मन्त्र प्रयोज्य है) ॥ ६ ॥

उदुम्बरफलं पक्वमङ्कोलीतैलपाचितम् ।
भुक्त्वा मासं क्षुधां हन्ति पिपासां नात्र संशयः ॥ ७ ॥

पका उदुम्बर (गूलर) के फल को अंकोल के तेल में पकाये । यह ३० दिनों तक क्षुधा-पिपासा हर लेता है ॥ ७ ॥

उदुम्बरं शालिबीजं शिरीषबीजसंयुतम् ।
पक्वं भुक्त्वा समांशेन साज्यं मासं क्षुधापहम् ॥ ८ ॥

उदुम्बर, शालितण्डुल, शिरीष के बीज को समान भाग में लेकर पकाये । इसे घृत के साथ खाने पर एक मास तक भूख-प्यास नहीं लगती । मन्त्र पूर्ववत् है ॥ ८ ॥

चक्रमर्दस्य मूलन्तु दूर्वाङ्कुरकशेरुकम् ।
नीलोत्पलोत्थमूलानि क्षीरेणापि च कोद्रवैः ।
पचेत् तत्पयसा साज्यं भुक्त्वा मासं क्षुधापहम् ॥ ९ ॥

9374

चक्रमर्द (चकवड़) की जड़, दूर्वा का अंकुर, कशेरू, नीलोत्पल (नील-कमल) की जड़ तथा गेहूँ को समान मात्रा में दूध में पका कर घृत से खाने पर एक मास तक भूख नहीं लगती ॥ ९ ॥

अपामार्गस्य बीजानि सघृतानि प्रपाचयेत् ।
पायसमाविकाक्षीरैर्भुङ्क्ते मासं क्षुधापहम् ॥ १० ॥

अपामार्ग (चिरचिटा) के बीजों को घी तथा बकरी के दूध के साथ पकाकर खाने से एक मास तक भूख नहीं लगती ॥ १० ॥

दुग्धसिद्धं फलं धात्र्या दिनैकं पेषयेत् ततः ।
सिताज्यसहितं पाच्यं मोदकं भक्षयेत् ततः ।
दशरात्रं क्षुधां हन्ति पिपासां नात्र संशयः ॥ ११ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे अत्याहारानाहारकथनं नाम अष्टमं पटलम् ।

दूध में आँवला को एक दिन पेषण करे। अब चीनी और घी के साथ पाक करके मोदक बनाकर भक्षण करे। इससे १५ दिनों तक भूख नहीं लगती। ९वें से ११वें श्लोक पर्यन्त के प्रयोगार्थ मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतार्णबमध्यसंस्थिताय मम शरीरे अमृतं कुरु कुरु सह स्वाहा' ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के अत्याहारा-नाहारकथन नामक अष्टम पटल समाप्त।

नवमं पटलम्

योनिबन्धनम्

स्वदाररक्षणार्थाय भगवता विश्वामित्रेण कृतम् । तद् यथा—

पूर्वोक्तं लाङ्गलीमूलं वामपादस्य पांशुकम् ।
द्वाभ्यां वै शुक्तिसम्पुटं लेपयेद् भगबन्धनम् ।
नारीणां युवतीनां स्यात् तक्रैः क्षाल्यं विमुक्तये ॥ १ ॥

यह योनिबन्धन-प्रकरण है । भगवान् विश्वामित्र ने अपनी स्त्री के धर्म-रक्षणार्थ जिस भगबन्धन-प्रक्रिया का अवलम्बन किया था, उसे यहाँ कहा जा रहा है—

अनुराधा नक्षत्र में लांगली की जड़ तथा जिसका योनिबन्धन करना हो, उसके वाम चरण की धूल लेकर शुक्ति से सम्पुट कर लेप लगाये । ऐसा करने पर उस रमणी का योनिबन्धन हो जाता है । उसके योनिबन्धन को हटाने के लिए योनि को तक्र द्वारा धो दे । इस प्रयोग में जो मन्त्र प्रयोग किया जाता है, वह इस प्रकार है—'ॐ अमुकी भगबन्धामिव स्फुरन्ध्रं शोणितम् । मया कृतं भगबन्धस्य नास्ति तस्या चिकित्सितम् । पतिर्वा पतिपुत्रो वा ये चास्य भगमर्दकाः । सर्वे चैतद्विधं यान्ति वर्जयेत् कामुकैस्तथा ॥ ॐ चिटि चिटि खचिटि खचिटि ठः ठः' ॥ १ ॥

श्मशानभस्म चादाय वामपादस्य पांशुकम् ।
सन्ध्यायां बन्धयेत् तेन पोट्टली भगबन्धिनी ॥ २ ॥

श्मशान की राख तथा जिसका योनिबन्धन करना हो उसके पैर के नीचे की धूल को लेकर संध्याकाल में कपड़े में बाँधे । यह भगबन्धिनी पोटली है । पूर्वोक्त मन्त्र से इस कार्य को करे, योनिबन्धन सिद्ध होता है ॥ २ ॥

तच्चैलं चन्दनैः क्षारैः क्षाल्यमर्थो भवेद् भगः ।
यन्त्रो मन्त्रादिमन्त्रेण प्रसिद्धो मन्त्र उच्यते ॥ ३ ॥
सप्ताभिमन्त्रितं तोयं शुद्धं प्रातः पिबेन्नरः ।
तस्य शक्रकृतो दोषः सकृदेव भविष्यति ॥ ४ ॥

इस भगबन्धन वस्त्र का चन्दन तथा क्षार द्वारा प्रक्षालन करना चाहिए । इस मन्त्र द्वारा योनि का भी प्रक्षालन करे, इससे बन्धन खुल जायेगा ।

ॐ वज्रमुष्टि वज्रपाटरज्जबन्धो दशमे द्वारवज्रपाणीयां यो चाङ्गे डाद्रनीडाकिनी तुच्छ वपुसंगे मन्त्रजपौ शक्रभयौ डाकिनडाकिनीभावे

जाते जीवभावकरे जीवपाकं रणे पान करवे भू आकस्येन्नकरे हुताति स्फ्रे मस्तक् पटे हुं मे सिद्ध गुरुपा श्रीमहादेव की आज्ञा ।

मनुष्य प्रातःकाल इस मन्त्र द्वारा सात बार जल को अभिमन्त्रित करके पीये । इससे एक ही बार में दोष निवृत्त होगा ।

ॐ रक्तजटे रक्तपाटन हन थिनी रक्तधानन अष्टमारनु वातसिद्ध खण्डन्ति श्रीगोचररथहाराख्या देव आप्रथ आहुथ विज्ञान विज्ञान करे एते विज्ञामुखिनो लगे गाजे मुहि करे बाहुड़िति शाकमन्तक् पात्र हुं मैं सिद्धिगुरुपानु श्रीगुरु की आज्ञा । हहहुलु पानीमले हले पैसे चतुर्दश भवने भेदुबिनः शोदशमद्वारुविरुपालकी पाशरि बन्धौ बन्धौ एकरः मैकी नहि ठेसातु हं सिसिद्धि विरूपाक्ष की आज्ञा । ॐ रक्तजटा रक्तपुटा रक्तपुरसो तु उलटं ताहेट्टुवाट्टुबो लटं तिये मुहिकरन्ति च वाद की आज्ञा परे मे सिद्धगुयायी ॥ ४ ॥

शिखाबन्धनमन्त्रेण साध्यं सर्वं विशेषतः ।
नागार्जुनेन कथितं जीवकल्याणहेतवे ॥ ५ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे भगबन्धनं नाम नवमं पटलम् ।

समस्त कार्यों के पूर्व निम्नांकित मन्त्र द्वारा शिखाबन्धन करना चाहिए । यह सभी जीवकल्याणार्थं सिद्धनागार्जुन ने कहा है ॥ ५ ॥

'ॐ रक्तजटा रक्तपटा रक्तहेत न बिन्दुपूर्वं होति चण्डमायु मुखरोगी चथु नहियो मुजुकरे वेटतिस्व उमुद्भवे दुहुं श्रीदेव की आज्ञा । ॐ वसुमति आधिते अमावास्या मंगलवारे लाईलोहो चोपी उपकुचापौ आपाहवती स घटी कोलो करै मै दुहखत सवमैस्खतै मैसिद्धि वसुमती माई आज्ञा । ॐ वायुराखे पाणलकी देवीजं धाराखेदिनी श्री गं चीतामि तुवन आखूं जुगवनच्छुटे ग्रन्हे गुरु श्रीभैरवी आज्ञा' ।

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के भगबन्धन नामक नवम पटल समाप्त ।

दशमं पटलम्

कुमाराञ्जनम्

पुष्यनक्षत्रयोगेन पिण्डीतगरमूलिकाम् ।
षडङ्गुलमितां कुर्याच्छलाकां रक्षयेत् ततः ।। १ ।।
स्नापयेच्च शिलापृष्ठे कुमारं वा कुमारिकाम् ।
तच्छिलास्नानतोयेन रोचनं हेमगैरिकम् ।। २ ।।
निघृष्टमञ्जयेन्नेत्रं मन्त्रमुक्तश्च पूर्ववत् ।
रक्षितया शलाकया तयैवाञ्ज्यान् निधिं लभेत् ।। ३ ।।

कुमारांजन विधि इस प्रकार है—पुष्य नक्षत्र में पिण्डीतगर पौधे के जड़ की छः अंगुल की शलाका बनाये । अब एक कुमार अथवा कुमारी को शिला पर बैठा कर स्नान कराना चाहिए । उस स्नान-जल से गोरोचन और स्वर्णगैरिक को पीसकर आँखों में अंजन लगाये । इसे पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमंत्रित करके उपर्युक्त शलाका से मन्त्र पढ़ते हुए लगाना चाहिए । औषधि लाते समय, स्नान कराते समय तथा औषधि पीसते समय भी यही मंत्र जपे । इससे निधिलाभ होता है ।। १-३ ।।

(**नोट**—यह मन्त्र मूल ग्रंथ में इस अध्याय में कहीं अंकित नहीं है । यह विधि एवं मन्त्र सप्तदश पटल में अंकित किया जायगा ।)

तिलपर्ण्युद्भवं मूलं हस्तर्क्षे विधिनोद्धृतम् ।
पातालमधुना युक्तं जलघृष्टं तदञ्जयेत् ।
निधिं पश्यत्यसौ सत्यं सन्निधौ नात्र संशयः ।। ४ ।।

हस्त नक्षत्र में तिलपर्णी (रक्तचन्दन) की जड़ को मन्त्र पढ़ते हुए लाना चाहिए । इसे भूविवर में स्थित छत्ते के मधु से और जल से पीसकर अंजन लगाये । यह अंजन मन्त्र पढ़ते हुए बनाना तथा लगाना चाहिए । इससे वह निधिदर्शन निःसंदिग्ध रूप से कर सकता है ।। ४ ।।

पुष्यर्क्षेऽगस्त्यवृक्षस्य मूलमुद्धृत्य वारिणा ।
पिष्ट्वा पातालमधुना संयुतं निधिदर्शनम् ।। ५ ।।

पुष्य नक्षत्र में अगस्त्य की जड़ मन्त्र पढ़ते हुए लाकर पानी और भूविवरस्थ पातालमधु से पीसे । मन्त्राभिमंत्रित करके उसका अंजन नेत्रों में लगाये । उसे निधिदर्शन होगा ।

पिण्डीतगरजं मूलमुदीचीगतमुद्धरेत् ।

चन्द्रसूर्योपरागे तु पातालमधुसंयुतम् ।
पेषयेच्चाञ्जयेन्नेत्रे सम्यक् पश्यति तं निधिम् ।। ६ ।।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे कुमाराञ्जनं
नाम दशमं पटलम् ।

चन्द्र अथवा सूर्य ग्रहण के समय पिण्डीतगर पौधे की उत्तर की ओर स्थित जड़ को मन्त्र जपते हुए निकाले । उसे पातालमधु से पीस करके अंजन बनाये । यह अंजन आँखों में लगाने से भूगर्भस्थ निधि परिलक्षित होने लगती है ।। ६ ।।

नोट—'एकादशः पटलः' को पढ़े बिना अंजन लगाना उचित नहीं है । उसमें लिखी विधि से अंजन बनाये और उसमें लिखी विधि से ही मन्त्र पढ़े, तभी इस अध्याय में अंकित प्रयोग को करे ।

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के कुमाराञ्जन
नामक दशम पटल समाप्त ।

एकादशं पटलम्

अञ्जन-विधिः

अञ्जनानान्तु सर्वेषां मन्त्रैः साध्यमघोरकैः ।
विनाघोरेण विघ्नानि नाशयन्ति पदे पदे ॥ १ ॥
दक्षिणामूर्त्तिमासाद्य जपेदष्टसहस्रकम् ।
ततः सर्वविधानानि सुखसाध्यानि कारयेत् ॥ २ ॥

अंजन की विधि तथा उसका प्रयोग इस प्रकार है—सभी प्रकार की अंजन-प्रक्रिया के लिए अघोरमन्त्र द्वारा साधना करनी चाहिए। इसे सिद्ध किये बिना पग-पग पर विघ्न उपस्थित होने लगते हैं। दक्षिणामूर्त्ति के निकट निम्नांकित अघोर मन्त्र का ८००० जप करना आवश्यक है। इससे सुखपूर्वक विघ्नरहित स्थिति में सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १-२ ॥

मन्त्रः

ॐ बहुरूपं विरूपाक्षं विद्याधरं महेश्वरम् ।
जपाम्यहं महादेवं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३ ॥

इस मन्त्र को ८००० बार जपे—

रुद्राय नमो बहुरूपाय नाशय विश्वरूपाय नमो विश्वाय विश्वरूपाय नमस्तत्पुरुषाय नमो यक्षिरूपाय नमः एकयक्षाय नमः एकरोमाय नमः एकमणये नमो वरदाय नमस्त्र्यक्षाय नमो रुद्राय स्वाहा ॥ ४ ॥

सोपवासो जितेन्द्रियो भूत्वा महेश्वरस्य पूजां कृत्वा इमं मन्त्रं जपेत् । सिद्धिर्भवति ॥ ५ ॥

साधक उपवास करके जितेन्द्रिय होकर महेश्वर की पूजा करके इस मन्त्र का जप करे। तभी सिद्धिलाभ होता है ॥ ३-५ ॥

कज्जलानां निपाताय ग्राह्यो यत्नेन पावकः ।
दीक्षितस्य गृहाच्छ्रेष्ठो यतीनान्तु विशेषतः ।
रजकस्य गृहाद् वापि तक्षकस्य गृहाच्च वा ॥ ६ ॥

कांजल बनाने के लिए यत्नपूर्वक दीक्षित व्यक्ति के घर से, विशेषतः यति के घर से अथवा इन दोनों के अभाव में धोबी या बढ़ई के घर से अग्नि ली जा सकती है ॥ ६ ॥

अग्निग्रहण मन्त्र—ॐ ज्वलितद्युतिदेहाय स्वाहा ।

अग्निरक्षा मन्त्र—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय श्रीपर्वते कुलपर्वते वसुमते स्वाहा ।

बत्ती-अभिमंत्रण मन्त्र—ॐ वर्त्ति बन्ध दिशं बन्ध पातालं बन्ध मण्डलं बन्ध बन्ध स्वाहा ।

दीप प्रज्वलित करते समय जपने का मन्त्र—ॐ नमो भगवते सिद्धिशाबराय ज्वल ज्वल पत पत पातय पातय बन्ध बन्ध संहन संहन दर्शय दर्शय निधिं नमः ।

काजल-ग्रहण मन्त्र—ॐ इं सर्वसिद्धिभ्यो नमः । विच्चे स्वाहा ।

जो भी अंजन बनाने वाला द्रव्य हो, उसको अभिमन्त्रित करने का मन्त्र—ॐ कालि कालि रक्ष रक्ष मदञ्जनं नमो विच्चे स्वाहा ॥ ७ ॥

आदौ केवलया हेमशलाकया नेत्रमञ्जयित्वा ततस्तयैव शलाकया अञ्जनद्रव्यमञ्जयेत् ॥ ८ ॥

पहले केवल सुवर्णशलाका से अंजन लगाये । तदनन्तर जिस शलाका से अंजन लगाने के लिए प्रयोगों में कहा गया है, उसी से इसे भी लगाना चाहिए ॥ ८ ॥

अञ्जयित्वाञ्जनं पश्चात् सप्त वाश्वत्थपत्रकम् ।
बन्धयेत् प्रतिनेत्रन्तु ह्यच्छिद्रं तदधोमुखम् ॥ ९ ॥
तस्योपरि सितं वस्त्रं पट्टजं वाथ बन्धयेत् ।
नाञ्ज्यादधिकहीनाङ्गं चादृष्टं वाग्निदग्धकम् ॥ १० ॥

आँखों में अंजन लगाने के अनन्तर आँखों को ऐसे पीपल के पत्ते से ढके जिसमें कोई छेद न हो । उसके ऊपर श्वेत वस्त्र द्वारा बन्धन करना चाहिए । जो व्यक्ति अधिक अंगों वाला हो (जैसे ६ अँगुली वाला आदि) अथवा अंगों से हीन हो अथवा अग्नि से जला हुआ हो, उसे अंजन नहीं लगाना चाहिए ॥ ९-१० ॥

सम्पूर्णाङ्गं शुचि स्नातं द्विदिनं नक्तभोजनम् ।
क्षीरशाल्यान्नभोक्तारं द्विदिनान्ते ततो जपेत् ।
अञ्जितस्य शिखाबन्धं कर्त्तव्यं मन्त्र उच्यते ॥ ११ ॥

जो व्यक्ति सम्पूर्ण अंगों से युक्त हो, पवित्र हो, स्नान कर चुका हो, जो दो दिन तक उपवासी रहकर रात्रि में भोजन करता हो अथवा दो दिन के पश्चात् केवल शालितण्डुल एवं दूध का भोजन करने वाला हो, उसे ही अंजन लगाकर जप करना चाहिए । अंजन लगाने के अनन्तर इस मन्त्र से शिखा बाँधे ॥ ११ ॥

ॐ नमो भगवते रुद्राय ॐ मानह हलु हलु विहलु विहलु हा हा यक्ष पूजिते यक्षकुमार्याः सुलोचने स्वाहा ।

शिखाबन्धन मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ रक्ष रक्ष विच्चे स्वाहा' ॥ १२ ॥

दक्षिणामूर्त्तिमाश्रित्य ह्युदयास्तमयं जपेत् ।
पूर्वमेव समाख्यातः शिखाबन्धे शिवोदितः ॥ १३ ॥
अयं सर्वाञ्जनानां हि विधिर्ज्ञेयः सनातनः ॥ १४ ॥

पहले कहे मन्त्र को दक्षिणामूर्त्ति के निकट बैठकर सूर्योदय से सूर्यास्त तक जपे । शिवकथित शिखाबन्धन मन्त्र पहले ही कहा जा चुका है ।

सभी प्रकार के अंजनों की यही सनातन विधि है ॥ १३-१४ ॥

निधिदर्शनम्

रोचनं कुङ्कुमं शङ्खं बालपुष्पीं तु चन्दनम् ।
राजावर्त्तं कुमारीं च सौवीराञ्जनपारदे ॥ १५ ॥
कज्जलं काञ्चनीं चैव सितपद्मस्य केशरम् ।
यावकं सघृतं क्षीरं समभागं सुपेषयेत् ॥ १६ ॥
श्मशानचेलमादाय पूर्वपिष्टेन लेपयेत् ।
तद्वर्त्ति घृतसंयुक्तां प्रज्वाल्य कज्जलं हरेत् ।
सर्वाञ्जनमिदं ख्यातं पातालनिधिदर्शनम् ॥ १७ ॥

गोरोचन, कुंकुम, शंखचूर्ण, बालपुष्पी, चन्दन, लाजावर्त्तरत्न, घृतकुमारी, सौवीरांजन, पारा, कज्जल, हल्दी, सफेद कमल का केशर, आलता, घृत तथा दुग्ध को समान मात्रा में पीसे । अब श्मशान में पड़े हुए मुर्दे के कफन (वस्त्रखण्ड) को लाकर पूर्वोक्त पिसे द्रव्य का इस पर लेप लगाये । इस कपड़े की बत्ती बनाकर उससे काजल बनाना चाहिए । इसे सर्वाञ्जन कहते हैं । इसे आँखों में लगाने से पातालस्थ निधि का भी दर्शन हो जाता है ॥ १५-१७ ॥

शरत्काले तु सङ्ग्राह्य भूलता रक्तवर्णका ।
सिन्दूरपूरितां कृत्वा रवितूलेन वेष्टयेत् ॥ १८ ॥
अतिकृष्णतिलात् तैलं ग्राहयेद् रक्षयेत् सुधीः ।
तैलवर्त्त्या प्रयोगेण कज्जलं चोत्तरायणे ।
ग्राहयित्वाञ्जयेच्चक्षुर्निधिं पश्यति पूर्ववत् ॥ १९ ॥

शरद् ऋतु में लाल रंग की 'भूलता' (किंचुलक) का संग्रह करे । उसे सिन्दूर द्वारा लपेट कर पुनः मदार की रुई से लपेटना चाहिए । अब काले रंग के तिलों का तेल ले एवं उससे इस मदार की रुई लपेटी उक्त बत्ती को

गीला करे। उत्तरायण मकर संक्रान्ति के दिन इस तेल की बत्ती प्रज्वलित करके जो काजल बनता है, उसका अंजन लगाने से भूगर्भस्थ निधि का दर्शन होता है ॥ १८-१९ ॥

सप्तधा पद्मसूत्राणि भावयेदिक्षुजै रसैः।
सर्वाञ्जिनमिदं दिव्यं शम्भुदेवेन भाषितम् ॥ २० ॥

गन्ने के रस में पद्म के सूत की भावना सात बार देकर उस बत्ती का काजल बनाकर अंजन प्रस्तुत करना ही सर्वांजन है। यह दिव्य अंजन शंभुदेव (शिवजी) ने कहा है ॥ २० ॥

दीपकज्जलयोः पात्रं कर्त्तव्यं नरमुण्डकम्।
सर्वेषां कज्जलानान्तु शस्तं स्याच्छिवभाषितम् ॥ २१ ॥

नरमुण्ड में ही बत्ती जलाना चाहिए और नरमुण्ड के खप्पर में ही काजल बनाना शुभ है। यह महादेव ने कहा है ॥ २१ ॥

अतिकृष्णस्य काकस्य जिह्वाहृन्मांसमाहरेत्।
वेष्टयेद् रवितूलेन वर्त्ति तेनैव कारयेत् ॥ २२ ॥
अजाघृतेन दीपस्तु प्रज्वाल्यादाय कज्जलम्।
अञ्जिताक्षो नरस्तेन निधिं पश्यति पूर्ववत् ॥ २३ ॥

घोर काले रंग के काकपक्षी की जिह्वा और वक्षःस्थल का मांस लेकर उसे मदार की रुई में लपेटकर बत्ती बनाये।

बकरी के घृत से इसका दीपक जलाकर अंजन बनाकर आँखों में लगाने से निधिदर्शन होता है ॥ २२-२३ ॥

उलूकचक्षुरादाय कुङ्कुमं रोचनं शशी।
समांशं मधुना पिष्टं ख्यातं सर्वाञ्जिनं परम् ॥ २४ ॥

उल्लू के नेत्र, कुंकुम, गोरोचन तथा कपूर को समान मात्रा में लेकर शहद के साथ मलना चाहिए। यह सर्वाञ्जन नामक (निधिदर्शनार्थ) श्रेष्ठ अंजन है ॥ २४ ॥

पायसं मधु कर्पूरं मधुकस्य च मूलिका।
समं पिष्ट्वा पिबेत् सिद्धं दिव्यं रसाञ्जनं परम् ॥ २५ ॥

पायस, मधु, कपूर और मधूक वृक्ष की जड़ को समान मात्रा में पीसकर पीने से दिव्य रसाञ्जन हो जाता है। इससे निधिदर्शन की सिद्धि मिलती है ॥२५॥

पुष्यर्क्षे श्वेतगुञ्जाया विधिना मूलमाहरेत्।
उलूकाक्षेण मधुना सर्वाञ्जनमिदं परम् ॥ २६ ॥

पुष्य नक्षत्र में नियमानुसार श्वेतगुंजा की जड़ लाये। उसे उलूक के नेत्र के साथ पीसकर काजल बनाने से सर्वांजन बनता है ॥ २६ ॥

हरितालं वचा लोध्रं रेणुका चाञ्जनं तथा।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ॥ २७ ॥
सम्पुटे ताम्रजे तच्च ह्यघोरेणाभिमन्त्रयेत्।
अञ्जिताक्षो निधिं पश्येन्नरो नानाविधं भुवि ॥

कृष्णपक्षीय चतुर्दशी के दिन हरिताल, वच, लोध, रेणुक तथा स्रोतोञ्ज न को समान भाग में चूर्ण करके इस पटल के आरंभ में कहे गये अघोर मन्त्र से अभिमन्त्रित करके एक ताँबे के खोखले यन्त्र (तावीज) में भरे। इसे आँखों में लगाने से वह व्यक्ति नाना प्रकार की निधि देख सकता है ॥ २७ ॥

रक्तागस्त्यस्तु तैलेन भूधात्र्या मूलपेषितम्।
कर्पूरेण युतं चाज्यं सिद्धं सर्वाञ्जनं परम् ॥ २८ ॥

लाल बक पुष्प के तेल में भूमि-आमलकी की जड़ पीसकर उसमें कपूर तथा घृत मिलाने से सर्वाञ्जन तैयार हो जाता है ॥ २८ ॥

कुङ्कुमं श्वेतगुञ्जा च काञ्चनस्यैव पल्लवम्।
सुश्वेतश्च जपापुष्पं सूर्यावर्त्तं समं मधु।
सर्वाञ्जनमिदं ख्यातं पातालनिधिदर्शनम् ॥ २९ ॥

कुंकुम, सफेद गुंजा, कांचन वृक्ष के पत्ते, सफेद जपापुष्प और सूर्यावर्त्त को समान मात्रा में लेकर मधु के साथ मर्दन करने से पाताल स्थित निधिदर्शन करानेवाला सर्वांजन तैयार होता है ॥ २९ ॥

रक्तेन कृकलासस्य भावयित्वा मनःशिलाम्।
तेनैवाञ्जितनेत्रस्तु निधिं पश्यति भूमिगम् ॥ ३० ॥

गिरगिट के रक्त से मैनशिल को भावना देनी चाहिए। इससे बने अंजन को आँखों में लगाने से भूमिगत निधि का दर्शन होता है ॥ ३० ॥

पारदं काकमाच्युत्थं फलं कर्पूरकं मधु।
सूर्यावर्त्तसमायुक्तं सिद्धं सर्वाञ्जनं परम् ॥ ३१ ॥

पारद, काकमाची (मकोय) का फल, कपूर एवं मधु को मुलेठी से मिलाने पर सिद्ध सर्वांजन निर्मित हो जाता है ॥ ३१ ॥

हंसपदीं जयां मांसीं कर्पूरश्च मनःशिलाम्।
सूतं दारू निशां चैव समभागानि पेषयेत्।
दिव्याञ्जनमिदं ख्यातं सर्वभूतवशङ्करम् ॥ ३२ ॥

हंसपदी लता, जयन्ती, जटामासी, कपूर, मैनशिल, पारा, दारुहल्दी तथा हल्दी को समान मात्रा में पीसे। इससे दिव्यांजन बनता है। इसे आँखों में लगाने पर सभी वशीभूत हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

सद्योहतमनुष्यस्य पित्तमादाय पूजयेत्।
शशिना रोचनेनैव धूमपाकेन शोषयेत्।
अष्टोऽहास्ते जलैर्घृष्टमञ्जनं निधिदर्शनम् ॥ ३३ ॥

तत्काल मृत मनुष्य के पित्त को लेकर उसका पूजन करे और उसमें कपूर तथा गोरोचन मिलाकर धूयें की गर्मी से उसे सुखाये। आठ दिन के पश्चात् उसे जल में घिसकर अंजन करने से निधिदर्शन होता है ॥ ३३ ॥

उलूकचक्षुषो रक्ते भावयेत् पट्टसूत्रकम्।
तद्वर्त्याङ्कोलतैलेन प्रदीपोद्धृतकज्जलम्।
सर्वाञ्जनमिदं साज्यं पातालनिधिदर्शनम् ॥ ३४ ॥

उल्लू के नेत्र के रक्त द्वारा पट्टसूत्र मे भावना देनी चाहिए। अब इस पट्टसूत्र की बत्ती बनाकर अंकोलतेल से प्रदीप जलाये। इससे जो काजल बनता है, उसे सर्वांजन कहते हैं। इसे नेत्रों पर लगाने से पातालस्थ निधि भी परिलक्षित होने लगती है ॥ ३४ ॥

श्वेतगुञ्जारसे सूत्रं दिनमेकन्तु भावयेत्।
ततो वाराहजं चूर्णं सूत्रमध्ये निवेशयेत् ॥ ३५ ॥
दीपमङ्कोलतैलेन तद्वर्त्युद्धृतकज्जलम्।
सिद्धं सर्वाञ्जनं लोके ह्यञ्जनं निधिदर्शकम् ॥ ३६ ॥

श्वेतघुंघची के रस में एक दिन पर्यन्त सूत्र (धागा) को भावना देनी चाहिए। अब वराहमांस का चूर्ण करके इस सूत्र में लगाये। इस बत्ती का दीपक अंकोल तैल में जलाकर जो काजल सिद्ध किया जाता है, वह सर्वांजन है और वह निधियों का दर्शन कराता है ॥ ३५-३६ ॥

कृष्णाजपित्तञ्च मयूरपित्तमशोकमूलं स्थितमुत्तरस्याम्।
शशाङ्कगोरोचनमाक्षिकञ्च सर्वाञ्जनं नाम शिवोपदिष्टम्।
एते सर्वाञ्जनाः सर्वे प्रसिद्धाः शिवभाषिताः ॥ ३७ ॥

काली बकरी का पित्त, मयूर-पित्त, उत्तर दिशा में स्थित अशोक वृक्ष की जड़, कपूर, गोरोचन और मधु—इन सबको समानभाग में पीसकर इससे अंजन बनाने से शिवोपदिष्ट सर्वांजन बन जाता है। ये समस्त सुप्रसिद्ध अंजन शिव द्वारा कहे गये हैं ॥ ३७ ॥

अगस्त्यवृक्षजां कुर्यात् पादुकाञ्जनदर्शिकाम् ।
पादुकाञ्जनयोगेन सिद्धयोगा भवन्ति वै ।। ३८ ।।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे अञ्जनं नाम एकादशं पटलम् ।

अगस्त्य वृक्ष की लकड़ी लेकर उसे 'ॐ नमो भगवते रुद्राय उड्डामरेश्वराय शिल शिल धमनेनालि वेतालि स्वाहा'। मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए। (पहले इसकी लकड़ी की पादुका बना ले। लकड़ी लाते समय और पादुका बनाते समय भी यही मन्त्र जपते रहना चाहिए।) इस प्रकार से पादुका और अञ्जन योग द्वारा सिद्धि मिलती है ।। ३८ ।।

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के अञ्जन नामक ग्यारहवाँ पटल समाप्त ।

द्वादशं पटलम्

पादाञ्जनम्

तुलसीमूलिकां पुष्ये शनिवारे समुद्धरेत् ।
निष्पिष्य काञ्जिकेनाथ मधुना युतमञ्जयेत् ॥ १ ॥
पादजाते कुमारं वा कन्यकां वा ततो निधिः ।
दृश्यते नात्र सन्देहः पातालान्तर्गतस्तथा ॥ २ ॥

अब पादाञ्जन-प्रकरण कहा जा रहा है। पुष्य नक्षत्र जिस शनिवार को पड़े उस दिन तुलसी की जड़ को लाकर उसे काँजी के साथ मर्दित करके शहद मिलाये। इसे कुमारी अथवा कुमार के पैरों में लगाने से पातालगत निधि का दर्शन होता है। पादांजन लगाते समय, पीसते समय तथा औषधि लाते समय 'ॐ नमो भगवते रुद्राय उड्डामरेश्वराय शिल शिल धमनेनालि बेतालि स्वाहा'। इस मन्त्र का १८००० जप कर इसे सिद्ध भी करे ॥ १-२ ॥

पाश्चात्यं पिप्पलीमूलं पुष्यार्के विधिनोद्धृतम् ।
पातालमधुना युक्तं पादजाताञ्जनं भवेत् ॥ ३ ॥

पुष्य नक्षत्र युक्त रविवार को पश्चिम दिशा में स्थित पीपल की जड़ को लेना चाहिए। उसे पातालमधु के साथ पीसने से पादांजन बन जाता है। (इसका प्रयोग श्लोक २ के मन्त्र से होगा।) ॥ ३ ॥

तिलपर्ण्युद्भवं मूलं कृष्णपक्षे रवेर्दिने ।
चतुर्दश्यां समादाय जलेन सह घर्षयेत् ।
पातालमधुना युक्तं पादजाताञ्जनं भवेत् ॥ ४ ॥

कृष्णपक्ष रविवार को जब चतुर्दशी पड़े तब तिलपर्णी (लालचन्दन) की जड़ को जल से घिसे। इसे पातालमधु में मिलाकर पादांजन बनता है। मन्त्रप्रयोग पूर्ववत् ॥ ४ ॥

मधुपुष्पं वचां क्षौद्रं रक्तागस्त्यश्च चन्दनम् ।
गुञ्जां च तिलपर्णीं च पादजाताञ्जनं भवेत् ॥ ५ ॥

मधूक पुष्प (महुआ का फूल), वच, मधु, लाल अगस्त्य, चन्दन, घुमची तथा तिलपर्णी को पीसकर पैरों में लगाने वाला पादांजन बनता है। मन्त्रप्रयोग पूर्ववत् ॥ ५ ॥

सुश्वेतकरवीरस्य पुष्यार्के मूलमुद्धरेत् ।
पातालमधुना युक्तं पादजाताञ्जनं भवेत् ॥ ६ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे पादाञ्जनं नाम द्वादशं पटलम् ।

पुष्य नक्षत्र युत रविवार को सफेद करवीर की जड़ लाकर पातालमधु में पीसने से पादांजन निर्मित होता है । प्रयोग पूर्ववत् ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट में पादाञ्जन नामक बारहवाँ पटल समाप्त ।

त्रयोदशं पटलम्

लेपाञ्जनम्

गोक्षीरेण तु सम्पिष्य तिलकोद्रवराजिकाः।
कणाबीजञ्च सम्पिष्य निशायाञ्च निधिस्थलम्।
भ्रष्टो लेपो भवेद् यत्र प्रातस्तत्र निधिं दिशेत् ॥ १ ॥

अब निधिस्थान पर अञ्जन-प्रयोग कहा जा रहा है। गाय के दूध में तिल, कोदों चावल, श्वेत सरसों (राई) तथा पिप्पलीबीज को पीसकर जहाँ धन गड़ा है ऐसा विश्वास हो, लेपन करे। यदि प्रातःकाल यह लेप गायब हो जाता है तब जहाँ लेप विलुप्त हुआ है, वहाँ निधि है, ऐसा समझना चाहिए।

ब्रह्मवृक्षस्य पत्राणि काकोलीरसपेषितम्।
अर्जुनस्य कदम्बस्य बकस्य खदिरस्य च ॥ २ ॥
निशायां लेपयेद् भूमौ कल्कं मन्त्रेण मन्त्रयेत्।
प्रातर्लेपो न यत्रास्ति तत्रैव निधिमादिशेत् ॥ ३ ॥

अर्जुन-कदम्ब-बक-खदिर-पलाश के पत्तों को काकोलि के साथ पीसना चाहिए। रात्रि में 'ॐ नमो भगवते रुद्राय कल्कलेपाञ्जनं दर्शय दर्शय स्वाहा ठः ठः स्वाहा'। इस मन्त्र से उस कल्क को अभिमन्त्रित करे और जहाँ धन होने का संदेह हो, वहाँ भूमि पर लेपन करे। सुबह लेप जहाँ गायब होगा, वहाँ निधि है।

दोनों प्रयोगों में यही मन्त्र औषधि लाते समय, पीसते समय तथा लेप करते समय प्रयुक्त होगा ॥ २-३ ॥

उमादिमातृसंयुक्तं किरातं तत्र पूजयेत्।
तत्र होमः प्रकर्त्तव्यो निशायां घृतगुग्गुलैः।
प्रभाते तद्विवर्णञ्च निधिस्तत्र सुनिश्चितम् ॥ ४ ॥

मन्त्रः पूर्ववत्।

जहाँ निधि होने की सम्भावना है, वहाँ पहले उमा प्रभृति अष्टमातृकाओं सहित किरात वेशधारी शिव का पूजन करे और रात्रि में घृत और गुग्गुल से हवन करे। यदि प्रातःकाल वह स्थान विवर्ण-सा लगे, तब वहाँ निधि अवश्य है, इस प्रकार समझना चाहिए। मन्त्र पूर्ववत् है ॥ ४ ॥

मात्राञ्जनम्

प्रविश्य नगरस्यान्ते लक्षमेकं जपेन्मनुम्।

पठन् सूत्रैर्घृतोपेतैः कृते होमे दशांशतः ।
प्रयच्छताञ्जनं हंसी येन पश्यति भूनिधिम् ॥ ५ ॥

अब देवीप्रदत्त अञ्जन-विधि कहते हैं। नगर में प्रवेश करके एक लाख बार 'ॐ नमो हंसि हंसजाते क्लीं स्वाहा' मन्त्र को जपे। अब इसी मन्त्र से घी में सने सूत्र द्वारा दस हजार आहुति देना चाहिए। हंसी देवी प्रसन्न होकर विघ्नशून्य अञ्जन देती हैं, जिससे निधिदर्शन होता है ॥ ५ ॥

मधूकस्य तले मन्त्रं चतुर्दशदिनं जपेत् ।
नक्तभोजी चतुर्यामं तुष्टा यच्छति मेखला ।
अञ्जनं विघ्ननिर्मुक्तं तेन पश्यति भूनिधिम् ॥ ६ ॥

केवल रात्रि में भोजन करने वाला साधक दिन के समय उपवास करते हुए मधूक (महुआ) वृक्ष के नीचे बैठकर 'ॐ नमो मदनमेखले ठः ठः ह्लीं स्वाहा' इस मन्त्र को जपे। इससे मदनमेखला देवी प्रसन्न होकर उसे अञ्जन देती हैं। इससे भूतलगत निधि लक्षित होती है ॥ ६ ॥

एकलिङ्गं समभ्यर्च्य षडङ्गेनाभिभावितः ।
पूर्वसन्ध्यां समारभ्य कृष्णपक्षादितो जपेत् ॥ ७ ॥
मद्रक्तां देवतां लिङ्गे रात्रौ मन्त्रं पुनर्जपेत् ।
सहस्राष्टमिदं नित्यं मासान्ते पूजयेत् पुनः ॥ ८ ॥
अर्द्धरात्रे गते देवीदत्तं दिव्याञ्जनं शुभम् ।
वस्त्रालङ्करणं दिव्यं षण्मासाच्चैव सिद्धिदा ॥ ९ ॥

अंगन्यास मन्त्रों से आत्मसंस्कार करके एकलिंग शिव का कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से प्रातः-संध्या को 'ॐ च्चर्क च्चर्क शाल्मलस्वर्णरेखे स्वाहा' मन्त्र का नित्य १००८ जप दोनों समय करे।

अंगन्यास इस प्रकार करे—

ॐ ह्लां हृदयाय नमः, ॐ ह्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लू शिखायै वषट्, ॐ ह्लैं कवचाय हुं, ॐ ह्लौं नेत्राभ्यां वौषट्, ॐ ह्लः अस्त्राय फट् ।

मास के अन्त में शिव में अनुरक्ता शाल्मलस्वर्णरेखा नामक देबी की अर्चना करे और रात्रि में उसी मन्त्र का जप करे। यह जप अर्धरात्रि में करना चाहिए। छः मास पर्यन्त जप करने से देवी आविर्भूत होकर मंगलकारी दिव्य अञ्जन तथा दिव्य वसन-भूषण देती है ॥ ९ ॥

अर्धरात्रे समुत्थाय सहस्रैकं जपेन् मनुम् ।
मासमेकं ततो देवी निधिं दर्शयति ध्रुवम् ॥ १० ॥

अर्द्धरात्रि में उठकर पवित्र आसन पर बैठकर एक मास तक प्रतिदिन

ॐ ह्रीं प्रमोदायै स्वाहा' मन्त्र का १००० जप करे। इस प्रकार देवी प्रसन्न होकर निधिदर्शन कराती हैं ॥ १० ॥

दिनत्रयं निराहारः सति सोमग्रहे जपेत्।
यावन्मुक्तिस्ततो देवी यच्छत्यञ्जनमुत्तमम् ॥ ११ ॥

तीन दिन निराहार रहकर चन्द्रग्रहण में मुक्तिकाल तक 'ॐ ह्रीं यक्षिणि भौमिनि रतिप्रिये स्वाहा' का जप करे। इससे यक्षिणी देवी आविर्भूत होकर साधक को उत्तम अञ्जन देती हैं ॥ ११ ॥

एकलिङ्गगृहस्थाने चन्दनेन सुमण्डलम्।
कृत्वा हस्तप्रमाणेन पूजयेदत्र पद्मिनीम्।
धूपं सगुग्गुलुं कृत्वा जपेन् मन्त्रं सहस्रकम् ॥ १२ ॥
मासमेकं ततः पूजां कृत्वा रात्रौ पुनर्जपेत्।
अर्द्धरात्रे गते देवी दत्ते दिव्याञ्जनं शुभम् ॥ १३ ॥

एकलिंग नामक शिव के मन्दिर में चन्दन से एक हाथ चौड़ा और एक हाथ लम्बा मण्डल बनाकर उसमें धूप तथा गुग्गुलु द्वारा पद्मिनी का पूजन करे और 'ॐ ह्रीं पद्मिनि स्वाहा' मन्त्र का एक हजार जप एक माह तक रात्रि में पूजनोपरान्त करे। इससे देवी आधी रात में आविर्भूत होकर दिव्य अञ्जन देती हैं ॥ १२-१३ ॥

वटवृक्षतले कुर्याच्चन्दनेन सुमण्डलम्।
यक्षिणीं पूजयेत् तत्र नैवेद्यमुपदर्शयेत्।
शशमांसासवैः पश्चान्मन्त्रमावर्त्तयेत् सुधीः ॥ १४ ॥
दिने दिने सहस्रैकं यावन्मासं प्रपूजयेत्।
ततो देवी समागत्य दत्ते दिव्याञ्जनं परम् ॥ १५ ॥

वटवृक्ष के तल में चन्दन द्वारा सुन्दर मण्डल का अंकन करना चाहिए। उसमें कनकावती देवी की अर्चना करे। शशक-मांस तथा मद्य का नैवेद्य प्रदान करे। पूजा के अन्त में एक माह तक इसी प्रकार पूजन एवं 'ॐ ह्रीं आगच्छ कनकावति स्वाहा' मन्त्र का प्रतिदिन १००० जप करे। इससे देवी प्रसन्न होकर दिव्यांजन देती है ॥ १४-१५ ॥

शृगालस्याक्षिकर्णेन ह्यञ्जयेल्लोचनद्वयम्।
भूतं पश्यत्यसौ तस्मात् सम्प्राप्नोति महानिधिम् ॥ १६ ॥

शृगाल के नेत्र तथा कानों का अञ्जन बनाकर 'ॐ गणपतये नमः, ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ भूतं दर्शय दर्शय स्वाहा' से अभिमन्त्रित करे और नेत्रों

में लगाये (इसका भी उसी विधि से एक महीना जप करना होगा)। इससे महानिधि प्राप्त हो जाती है ॥ १६ ॥

देवदालीरसैश्चक्षुरञ्जयित्वापि तत्फलम् ॥ १७ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे लेपाञ्जन-
मात्राञ्जनं नाम त्रयोदशं पटलम् ।

देवदाली के रस से अञ्जन बनाकर श्लोक १६ वाले मन्त्र को सिद्ध करके लगाना चाहिए। इससे महानिधि प्राप्त होती है ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचत कक्षपुट में लेपाञ्जन-
मात्राञ्जन नामक तेरहवाँ पटल समाप्त ।

चतुर्दशं पटलम्

अथ द्रावणम्

अर्कमूलं सकर्पूरं हरिद्रां कनकं मधु ।
मेषीपित्तेन लेपोऽयं लिङ्गस्त्रीद्रवकारकः ॥ १ ॥

(आक) अर्क की जड़, कर्पूर, हरिद्रा, कनक (काला) धतूरा तथा मधु को समान भाग में लेकर मेषी (भेड़ी) के पित्त के साथ मिलाकर लिंग पर लेपन करने से स्त्री को द्रवित (क्षरित) करने वाला योग बन जाता है ॥१॥

कर्पूरोन्मत्तमूलं वाऽलक्तकं नृकपालके ।
घृष्ट्वा समधु लेपोऽयं लिङ्गे स्त्रीद्रवकारकः ॥ २ ॥

कपूर, धतूरा की जड़ तथा आलता को नरकपाल (खोपड़ी) में घिसकर उसमें मधु मिलाये । इसका लिंग पर लेपन करने से स्त्री को क्षरित करने वाला योग बन जाता है ॥ २ ॥

शैवालपुष्पं कर्पूरं मुण्डिपुष्पश्च पेषितम् ।
लिङ्गलेपाद् वशं यान्ति द्रवन्ति रतिसङ्गमे ॥ ३ ॥

शैवालपुष्प, कपूर एवं मुण्डिपुष्प को एकत्र करके पीसे । इसका लिंग पर लेपन करने से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं और संगमकाल में उनका द्रावण भी हो जाता है ॥ ३ ॥

कपिलिङ्गं समानीय कर्पूरं कनकं मधु ।
गृध्रविष्ठा नरस्यास्थि घृष्ट्वा लिङ्गं प्रलेपयेत् ।
एष हालाहलो योगो द्रावको वशकृत् स्त्रियः ॥ ४ ॥

वानर का लिंग लाकर उसके साथ कपूर, काला धतूरा, मधु, गृध्र पक्षी (गीध) का मल तथा मनुष्य की अस्थि को घिसे और इसका लेप लिंग पर लगाने से नारी का वशीकरण तथा द्रावण होता है ॥ ४ ॥

शैवालं मालतीपुष्पं मुण्डिपुष्पं समं मधु ।
लिङ्गलेपः स्त्रियो वश्या द्रावणं भवति ध्रुवम् ॥ ५ ॥

शैवाल, मालतीपुष्प, मुण्डिपुष्प को समान भाग में लेकर पीसे और लिंग पर लेप करे । यह नारी को वश में करने वाला तथा उसका द्रावण करने वाला योग है ॥ ५ ॥

टङ्कणं मधु कर्पूरं पारदं मर्दयेत् समम् ।
तेन लेपः परं शिश्ने वश्यकृद् वरयोषिताम् ॥ ६ ॥

सोहागा, मधु, कपूर तथा पारा को समान भाग में मलकर शिश्न पर लेप करने से श्रेष्ठा (पद्मिनी) नारी भी (संगमकाल में) वशीभूत हो जाती है ॥ ६ ॥

बृहतीफलमूलानि पिप्पलीमरिचानि च ।
मधुरोचनया सार्द्धं लिङ्गलेपोऽतिवश्यकृत् ॥ ७ ॥

बृहती का फल तथा जड़, पिप्पली, मरिच, मधु तथा गोरोचन को पीसकर लिंग पर लेप करने से नारी अत्यन्त वशीभूता हो जाती है ॥ ७ ॥

नराजोलूकगृध्राणां सममस्थीनि पेषयेत् ।
स्वशुक्रेण समालेपो लिङ्गस्त्रीद्रवकारकः ॥ ८ ॥

मनुष्य, बकरा, उल्लू तथा गृध्र पक्षी की अस्थियों को समभाग में अपने शुक्र के साथ पीस कर लिंग पर लेपन करके (संगम करने से) स्त्री-द्रावण योग बन जाता है ॥ ८ ॥

श्वेतार्कचन्दनालेपो लिङ्गे स्यात् पूर्ववत् फलम् ।
विष्ठालेपश्चाङ्गुल्या च लिङ्गे स्त्रीद्रवकारकः ॥ ९ ॥

श्वेत मदार तथा चन्दन को पीसकर लिंग पर लेप करने से पूर्ववत् फल मिलता है। शिश्न पर अंगुली द्वारा विष्ठा का लेप करके (संगम करने से) स्त्रीद्रवकारक योग बनता है ॥ ९ ॥

क्षौद्रगन्धकलेपेन शिलायुक्तेन तत्फलम् ।
शशिटङ्कणपिप्पल्यः सूरणं मदनं फलम् ।
मातुलुङ्गफलैः पिष्ट्वा लिङ्गलेपे स्त्रियो वशाः ॥ १० ॥

गन्धक, मधु एवं मनःशिला को लेकर लेपन करने पर भी पूर्वोक्त फल होता है। कपूर, सोहागा, पिप्पल, सूरन, मदनफल तथा मातुलुङ्ग को एकत्र करके पीसकर लेप करने से नारियाँ वशीभूत हो जाती हैं ॥ १० ॥

मल्लीकोद्रवकर्पूरमधुलेपे च तत्फलम् ।
पक्वबिल्वफलैर्द्रावैरर्द्धसूतश्च टङ्कणम् ।
रक्तकुन्थूनिपुष्पश्च लिङ्गलेपे च वश्यकृत् ॥ ११ ॥

मल्लिकापुष्प, कोदोधान, कर्पूर तथा मधु को लेकर पीसे और लिंग पर लेप करे। इससे नारी वशीभूत हो जाती है। पका बिल्वफल, उसका आधा पारद, सोहागा, रक्तकुन्थुनी का पुष्प पीसकर लिंग पर लेप करने से भी नारी (रमणकाल में) वशीभूत हो जाती है ॥ ११ ॥

जातीकुसुमपत्राणि मञ्जिष्ठा श्वेतसर्षपाः ।
आत्रेयो ध्वजदण्डे तु रात्रौ स्त्रीद्राववश्यकृत् ॥ १२ ॥

चमेली का फूल तथा पत्ता, मजीठ एवं सफेद सरसों को एक साथ मलकर इसका लेप लिंग पर करे । इससे (रमण) काल में स्त्री वशीभूत तथा द्रवित हो जाती है, ऐसा आत्रेय का वचन है ॥ १२ ॥

शिलाकाशीसतारेण कुङ्कुमक्षौद्रलेपनात् ।
सौभाग्यगर्विता वामा सङ्गे भवति किङ्करी ॥ १३ ॥

मैनसिला, काशीस, तार, कुंकुम तथा मधु को मिलाकर लिङ्ग पर लेप करके विहार करने से सौभाग्यगर्विता नारी भी किङ्करी की तरह वशीभूत हो जाती है ॥ १३ ॥

कर्पूरं टङ्कणं सूतमुन्मत्तबीजपिप्पलीः ।
मल्लीकाश्चनपत्रस्य रसं क्षौद्रश्च पूरयेत् ।
लिङ्गलेपे कृते वामा रात्रौ भवति किङ्करी ॥ १४ ॥

कपूर, सोहागा, पारद, धतूराबीज, पीपल, मल्लिकापत्र का रस तथा कांचनपत्र का रस पीसकर लिंग पर लेप करने से रात्रि में (रमणकाल में) नारी दासीवत् वशीभूत हो जाती है ॥ १४ ॥

ॐ कं दं लं न्नें ह्लीं रसाधिका स्त्रवतु अमुकीं रतिकाले देवदूष्णीं स्वाहा ॥

(यह द्रावण मन्त्र है । प्रयोग से पूर्व इसे सिद्ध करना चाहिए । यह मन्त्र वसुमति साहित्य मन्दिर की प्रति में अंकित नहीं है ।)

सूतटङ्कणकर्पूरकनकं मुनिपत्रकम् ।
घृतेन लिङ्गलेपोऽयं कामिनीदर्पनाशनः ॥ १५ ॥

पारद, सोहागा, कपूर, धतूरा तथा बकपत्र को घृत के साथ मलकर लिंग पर लेप करने से कामिनी का गर्व (रमणकाल में) खण्डित हो जाता है ॥१५॥

सङ्गृह्य च पशो रक्तं गृह्णीयादन्तरीक्षतः ।
काकविष्ठाश्च पुष्ये तु गृहीत्वा धारयेत् करे ॥ १६ ॥
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन रात्रौ नारीसमागमे ।
दृष्टिमात्रेण नार्यस्ता द्रवन्ति नात्र संशयः ॥ १७ ॥

पुष्य नक्षत्र में पशु (बकरे) का रक्त तथा आसमान में उड़ते कौआ पक्षी की आसमान से गिरी विष्ठा को हाथ पर लेकर तर्जनी और अंगूठे के सहारे हाथ में धारण कर पकड़े रहे । तदनन्तर रात्रि में (समागम के समय) उसको देखने मात्र से रमणी वशीभूत हो जाती है, यह निःसंदिग्ध है ॥ १६-१७ ॥

आधारे वामजङ्घातः टिट्टिभस्य च पक्षिणः ।
तन्मध्ये निक्षिपेद् भूर्ज्जपत्रं क्लूंकारलेखितम् ॥ १८ ॥
रक्ताश्वमारपुष्पेण मुखं तस्य निरोधयेत् ।
कर्णोपरि स्थितं तच्च दृष्ट्वा स्त्री द्रवति ध्रुवम् ॥ १९ ॥

टिटिहिरी पक्षी की वामजंघा लाकर उसका एक खोल बनाये । उसमें एक भोजपत्र के टुकड़े पर 'क्लूं' बीजमन्त्र लिखकर डाले और उस खोल के मुख को लाल अश्वमार (कनेर) के पुष्प से बन्द करे । इस खोल को कानों के ऊपर धारण करने पर उसे देखते ही नारी द्रवीभूत हो जाती है ॥ १८-१९ ॥

जलेन लाङ्गलीकन्दं घृष्ट्वा हस्तं प्रलेपयेत् ।
हस्ते स्त्रियाः करस्पृष्टे द्रवत्यग्नौ घृतं यथा ॥ २० ॥

जल के साथ लांगली (कलिहारी) की जड़ का घर्षण करके हाथों पर लेप करे । इस लेप युक्त हथेली से नारी की हथेली का स्पर्श करते ही नारी उस प्रकार द्रवीभूत (स्खलित) हो जाती है जैसे आग के स्पर्श से घी ॥२०॥

सर्वेषां द्रावयोगानां मन्त्रराजं शिवोदितम् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तत्तद्योगस्य सिद्धये ॥ २१ ॥

ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय द्रावय द्रावय स्त्रीणां मदं पातय पातय स्वाहा ।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे द्रावणं
नाम चतुर्दशं पटलम् ।

इन समस्त द्रावण योगों में शिव द्वारा कहे गये उक्त मन्त्र का जप करके उस-उस कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए ।

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट में द्रावण
नामक चौदहवाँ पटल समाप्त ।

पञ्चदशं पटलम्

अथ पतिवशीकरणम्

मालतीपुष्पसंयुक्तं कटुतैलं सुपाचितम् ।
एतैर्लिप्तभगा नारी रतौ मोहयते पतिम् ॥ १ ॥

मालती पुष्प के साथ पकाये सरसों के तेल द्वारा योनि का लेपन करने पर नारी रात्रि (रमणकाल) में पति को मुग्ध कर देती है ॥ १ ॥

खञ्जरीटस्य मांसञ्च मधुना सह पेषयेत् ।
अनेन योनिलेपेन पतिर्वश्यो भवत्यलम् ।
कर्पूरं देवदारुञ्च सक्षौद्रं पूर्ववत् फलम् ॥ २ ॥

खंजन पक्षी का मांस मधु के साथ पीसकर योनि पर लगाये । वह स्त्री (रमणकाल में) पति को वशीभूत कर लेती है ॥ २ ॥

सैन्धवेन तिलान् भव्यान् सप्त वारान् पुनः पुनः ।
तद् घृष्ट्वा लेपयेद् योनिं पतिर्दासो रतौ भवेत् ॥ ३ ॥

सैन्धव (सेंधानमक) के साथ पुनः-पुनः सात बार तिल की भावना देकर उसका घर्षण करके योनिप्रदेश में लेपन करने वाली स्त्री पति को रतिकाल में वश में कर लेती है ॥ ३ ॥

सौवर्चलं वचा सिन्धुर्मीनपित्तं वसा घृतम् ।
सौवीरञ्च समं पिष्ट्वा योनिलेपे पतिर्वशः ॥ ४ ॥

सौवर्चल (शोरा), वच, सैन्धव, मछली का पित्त, चर्बी, घृत तथा काँजी समान भाग में पीसकर योनि में लेपन करने से पति वशीभूत हो जाता है ॥ ४ ॥

पञ्चाङ्गं दाडिमं पिष्ट्वा श्वेतसर्षपसंयुतम् ।
योनिलेपे पतिं दासं करोत्यपि च दुर्भगा ॥ ५ ॥

अनार का पंचांग तथा सफेद सरसों पीसकर योनि में लेपन करके दुर्भगा नारी भी पति को वश में कर लेती है ॥ ५ ॥

इन योगों का द्रव्य-समूह प्रत्येक निम्नलिखित मन्त्र द्वारा सात बार अभिमन्त्रित करना चाहिए ।

"ॐ काममालिनि ठः ठः" उक्तयोगानां सप्ताभिमन्त्रिते सिद्धिः। मतान्तरे ॐ महायक्षिणि पतिं मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

अन्य मतानुसार 'ॐ महायक्षिणि···स्वाहा' पर्यन्त का १०८ बार जप करे।

रोचनं मत्स्यपित्तञ्च पिष्ट्वा तु तिलकं कृते।
वामहस्तकनिष्ठायां पतिर्दासो भवत्यलम् ॥ ६ ॥

गोरोचन तथा मछली के पित्त को एक में पीसकर बायें हाथ की कनिष्ठा अंगुली से तिलक करने से पति अवश्यमेव दास बन जाता है ॥ ६ ॥

स्वयोनावृतुकाले तु रोचनं निक्षिपेत् पुनः।
चोन्मत्तं भावयेत् तेन तिलकं पतिवश्यकृत् ॥ ७ ॥

ऋतुकाल में स्त्री अपनी योनि में गोरोचन का लेप करे। तत्पश्चात् इस गोरोचन द्वारा धतूरे के पुष्प में भावना देकर उसका (पीसकर) तिलक लगाने से पति वशीभूत हो जाता है ॥ ७ ॥

धुस्तूरबीजचूर्णन्तु सप्ताहं भावयेन्मलैः।
सर्वद्वारोद्भवैस्तेन खाद्ये पाने पतिर्वशः ॥ ८ ॥

धतूरे के बीजचूर्ण से एक सप्ताह पर्यन्त कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, मुख, जिह्वा, पायु तथा उपस्थ के मल द्वारा भावना देना चाहिए। इसे भोजन अथवा पेय के साथ पति को देने से वह वशीभूत हो जाता है ॥ ८ ॥

पुत्रजीवी तु रक्ता च प्रियङ्गुर्गिरिकर्णिका।
श्वेतापराजितामूलं समांशश्च विचूर्णितम्।
दीयते पश्चिमे रात्रौ ताम्बूलेन तु वश्यकृत् ॥ ९ ॥

लाल पुत्रजीवी (पितौजिया), प्रियंगु, गिरिकर्णिका (अपराजिता) तथा सफेद अपराजिता की जड़ का समान भाग में चूर्ण करे। उसे रात्रि को ताम्बूल में रखकर पति को खिलाने से पति का वशीकरण हो जाता है ॥ ९ ॥

सुश्वेतं कण्टकार्याश्च मूलञ्च गिरिकर्णिकाम्।
ताम्बूलेन प्रदातव्यं दासवत् कुरुते पतिम् ॥ १० ॥

श्वेत कण्टकारी की जड़, अपराजिता की जड़ (पीसकर) ताम्बूल में रखकर पति को खिलाने से वह दासवत् वशीभूत हो जाता है ॥ १० ॥

समूलचूर्णा धात्री च वस्त्रे बद्ध्वा निवासयेत्।
नवनीते विनिक्षिप्तं तच्चूर्णं पाचयेद् घृते।
तद्घृतं भोजने देयं पतिर्दासो भवत्यलम् ॥ ११ ॥

जड़ के साथ आमलकी फल का चूर्ण करके उसे वस्त्र में बाँधे। पश्चात्

काल में उसे मक्खन में छोड़ें, तदनन्तर उसका घृत में पाक करे। इस घृत को भोजन में देने पर पति दासवत् हो जाता है ॥ ११ ॥

पुंबिन्दुं ग्राह्य कार्पासबीजन्तु तत्समन्वितम् ।
सजीवमण्डूकस्यास्ये कार्पासं तं विनिक्षिपेत् ॥ १२ ॥
कन्यार्कत्तितसूत्रेण पुंपादान्तं शिरो मिलेत् ।
खट्वाङ्गं वेष्टयेत् सूत्रे चतुष्पादं ततः पुनः ॥ १३ ॥
तेन सूत्रेण मण्डूकं बद्ध्वास्यं हण्डिकान्तरे ।
रुद्ध्वा तन्निखनेद् भूमौ पतिर्वश्यो भवत्यलम् ॥ १४ ॥

पुरुष का शुक्र तथा कपास का बीज एक जीवित मेढ़क के मुख में रखे। तदनन्तर कुमारी के द्वारा काते गये सूत द्वारा पुरुष को आपादमस्तक (पैर की अंगुली से लेकर शिखा पर्यन्त) नाप कर उससे खटिया के चारों पैरों को लपेटे। पुनः इस सूत्र के द्वारा उस मेढ़क को बाँध कर एक हड़िया में रखे और उस हड़िया को भूमि में गाड़ दें। इस प्रकार से पति अवश्य वशीभूत हो जाता है ॥ १२-१४ ॥

यत्र मूत्रयते भर्त्ता तत्र मृद्वामपाणिना ।
यत्नाद् ग्राह्या समन्त्रेण प्रजपन् पञ्चभिर्नखैः ।
मृदं कुलालचक्रस्था विपरीतास्यमाहरेत् ॥ १५ ॥

जहाँ पर पति ने मूत्र त्याग किया हो, वहाँ की मृत्तिका को बायें हाथ से यत्नपूर्वक निकालना चाहिए। निकालते समय वह मन्त्र पढ़े, जो १७वें श्लोक के पश्चात् अंकित है। तदनन्तर पाँचों अंगुलियों के पाँचों नखों द्वारा कुम्हार के चक्र में लगी मिट्टी को (चक्र के) उलटी ओर से निकाले ॥ १५ ॥

उभाभ्यां वृषभं कृत्वा सूत्रेणेमञ्च प्रोथयेत् ।
द्वारदेशे स्थितं तन्तु यावद् भर्त्ता तु लङ्घयेत् ॥ १६ ॥
तथा तु निखनेच्चैव पतिर्वश्यो भवत्यलम् ।
तद्गृहे कामदेवोऽसौ चान्यत्र षण्डतां व्रजेत् ॥ १७ ॥

अब मूत्रस्थान तथा कुलाल-चक्र की मिट्टी द्वारा वृषभ की मूर्त्ति बनाना चाहिए और उसे सूत्र द्वारा लपेट कर दरवाजे पर स्थापित करे, किंवा दरवाजे के नीचे भूमि में गाड़ दे। उसको लाँघने पर पति तत्काल वशीभूत हो जाता है। इसके प्रभाव से पति अपने घर में तो कामदेव के तुल्य (रति-क्रीड़ा में) हो जाता है, परन्तु अन्यत्र (रमणेच्छा होने पर) उसे तत्काल नपुंसकता आ जाती है ॥ १६-१७ ॥

मन्त्र

ॐ हों नाथं तुच्छं मन्त्रयती होः पञ्चनखे उच्चण्डं पनी हौं सामोहि

नीलद्रती सों सां योगिनी कामिनी मली बन्धौ सुखेन सां जवेन जागृय सं रां स्वाहा । सिद्धियोगः ।

इस मन्त्र द्वारा मूत्रस्थान की मृत्तिका निकाले । यह सिद्ध योग है ।

कार्पासधूनितापत्रं तत्र तच्छेषमाहरेत् ।
तं कार्पासं स्वपुंशुक्रे भावयेत् तच्च शुक्रकम् ॥ १८ ॥
विवस्त्रकन्यकाहस्ताद् विपरीतेन कर्त्तयेत् ।
धनुर्दर्भमयैः कुर्यात् सूत्रैश्च त्रिगुणैर्गुणम् ॥ १९ ॥
पत्युः पुंस्त्वं भवेत् तावद् यावदारोपितं धनुः ।
अवतीर्णे गुणे षण्डो जायते च वशी भवेत् ॥ २० ॥

कपास को धुनकर उसे आवरण मुक्त करना चाहिए। उस खोल (कपास-खोल) से बाकी कपास को निकाले । उसे अपने पति के शुक्र से भावित करे । इस सूत्र को विवस्त्रा (नंगी) कन्या द्वारा उलटी ओर से कतवाना चाहिए (तकली उलटी चलाकर)। एक दर्भमय धनुष का निर्माण करके उस धनु की लम्बाई से तिगुने सूत द्वारा उस धनुष की प्रत्यंचा बनाये । जब तक धनुष की प्रत्यंचा चढ़ी रहेगी, तब तक पति में पुरुषत्व रहेगा । उस प्रत्यंचा को उतारते ही पति नपुंसक हो जाता है। इस प्रकार वह वशीभूत हो जायेगा ॥ १८-२० ॥

क्षेपक—(देवदारु समं कुष्ठं पाययेद् वशयेत् पतिम् ।)

(देवदारु तथा कूठ को समान मात्रा में लेकर इस मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करके पति को खिलाने से वह वशीभूत हो जाता है। ॐ नमो भगवते उष्णेशाय ॐ दिग्बन्धाय स्वाहा'। इससे सात बार अभिमन्त्रित करना चाहिए।)

पतिशुक्रञ्च कर्पूरं वटपत्ररसं तथा ।
रोचनञ्च पिबेद् या स्त्री पतिं वशयते ध्रुवम् ॥ २१ ॥

पति का शुक्र, कर्पूर, वटपत्र का रस तथा गोरोचन का जो सेवन करती है, उसका पति वश में हो जाता है, यह निश्चित है ॥ २१ ॥

सनालानि तु पद्मानि क्षीरेणाज्येन पेषयेत् ।
गुटिकां छायया शुष्कां नाभौ योनौ प्रलेपयेत् ।
दशवारप्रसूतापि कन्यावज्जायते भगम् ॥ २२ ॥

नाल के साथ कमल को दूध तथा घी के साथ पीसकर बटिका (गोली) बनाये और छाया में सुखायें । तदनन्तर इसे घिसकर नाभि एवं योनि में लेप करने से उस नारी की योनि दशवर्षीया कुमारी के समान (संकुचित) हो जाती है ॥ २२ ॥

वेतसो मूलमादाय सप्त वा खदिरं समम् ।
पेषयेच्छीततोयेन पीत्वा सङ्कोचयेद् भगम् ॥ २३ ॥

सात वेतसमूल तथा उतना ही खदिर लेकर उसे ठंडे जल में पीसे। इसे पीने से भग संकुचित हो जाता है ॥ २३ ॥

कोकिलाक्षस्य बीजानि अजाक्षीरेण लाङ्गलीम् ।
क्वाथयेल्लेपयेत् तेन योनिं प्रक्षालयेत् पुनः ॥ २४ ॥
जले कार्पासमूलञ्च घृष्ट्वा मृद्वग्निना पचेत् ।
अनेन क्षालनं कुर्याद् भगं सङ्कोचयेद् ध्रुवम् ।
वृद्धानामपि नारीणां योनिसङ्कोचनं भवेत् ॥ २५ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे पतिवशीकरणं नाम पञ्चदशं पटलम् ।

कोकिलाक्ष (तालमखाना) फल का बीज तथा लांगली (कलिहारी) को समान भाग में लेकर उसे बकरी के दूध में पकाना चाहिए। तदनन्तर इस काढ़े का योनि में लेपन करे, तत्पश्चात् धो ले। (इसी प्रकार) कपास की जड़ को जल में घिसकर मन्दी आँच पर पकाकर योनि को धोने से वृद्धा स्त्री की योनि भी संकुचित हो जाती है ॥ २४-२५ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट में पतिवशीकरण नामक पन्द्रहवाँ पटल समाप्त ।

षोडशं पटलम्

अथ कौतुकम्

नासारन्ध्रद्वयं लिप्त्वा गोघृतेन ततो मुखे ।
क्षिपेद् बिम्बीफलं यस्य कुयोगैर्न स बाधते ॥ १ ॥

गाय का घृत दोनों नासारंध्र में लगाये और मुख में बिम्बीफल (कुन्दुरू) रखे । इस प्रकार उस व्यक्ति को किसी भी कुक्रिया से बाधा उत्पन्न नहीं होती ॥ १ ॥

तगराञ्जितनेत्रो वा तगरेणाथ धूपितः ।
पूर्वं रक्षाविधिं कृत्वा पश्चात् कौतुकमावहेत् ।
विना रक्षाविधानेन यः करोति स सीदति ॥ २ ॥

तगर की लकड़ी (जलाकर बनाये) के अंजन द्वारा आँखों को अंजित करके अथवा इस लकड़ी की धूप से धूपित होकर पहले आत्मरक्षा करने के उपरान्त कौतुक कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए । जो व्यक्ति रक्षाविधान किये बिना कौतुक कार्य में प्रवृत्त होता है, वह कष्ट में पड़ जाता है ॥ २ ॥

दृष्टिबन्धन

श्मशानतरुमूलेन कीटोत्पाताङ्गुलीयकम् ।
मृतनिर्माल्यसंयुक्तं रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ।
तेन निःशेषलोकस्य जायते दृष्टिबन्धनम् ॥ ३ ॥

श्मशानस्थ वृक्ष की जड़ के साथ कीटभक्षित अंगुली (मृतशव की उंगली, जिसे कीड़े खा रहे हों), शव पर चढ़ाये गये पुष्प, पुष्पमाला आदि को एक साथ लाल सूत से बाँधना चाहिए । इससे सभी का दृष्टिबन्धन हो जाता है ॥ ३ ॥

घूणतालकपश्चाङ्गं कनकेन युतोऽथवा ।
मुद्रिका सर्वलोकस्य पाणौस्थादृ ष्टिबन्धकृत् ।
स्वपादे धारयेदेनां पश्चात् सिद्धयति कौतुकम् ॥ ४ ॥

सुवर्ण में घुन नाम कीड़ा तथा हरिताल का पंचाङ्ग रखकर मुद्रिका तैयार करना चाहिए । इसे मुट्ठी में रखने से सभी लोगों का दृष्टिबन्धन हो जाता है । अपने पैरों में इसे धारण करने से सभी प्रकार के कौतुक सम्पन्न किये जा सकते हैं ॥ ४ ॥

भौमपुष्ये तु सङ्गृह्य कृकलासं मनोहरम् ।
स्थापयेन्नवभाण्डे तु रक्तपुष्पैश्च पूजयेत् ।
धूपदीपाक्षतैर्गन्धैर्नैवेद्यैर्मन्त्रसंयुतैः ॥ ५ ॥
वामहस्तकनिष्ठायाः स्वस्य रक्तेन सेचयेत् ।
सप्ताहं पूजयेदेवं शस्तः स्यात् सर्वकर्मसु ॥ ६ ॥

ॐ अङ्कोलाय ॐ रः ह्लीं ह्लीं ह्लीं स्वाहा । अनेन मन्त्रेण पूजाकाले शतमष्टोत्तरं जपेत् । तेन सर्वसिद्धिकरं भवेत् ।

जिस मंगल वार को पुष्य नक्षत्र हो, उस दिन एक पुष्ट मनोहर गिरगिट को लाकर नये पात्र में बन्ध करे। तदनन्तर रक्तपुष्प, धूप, दीप, अक्षत, गन्ध तथा नैवेद्य प्रभृति के द्वारा उसकी 'ॐ अङ्कोलाय ॐ रः ह्लीं ह्लीं ह्लीं' मन्त्र द्वारा अर्चना करे। तत्पश्चात् अपने बायें हाथ की कनिष्ठा अंगुली के रक्त द्वारा उसका सेचन करना चाहिए। ऐसा सात दिन प्रयोग करने पर समस्त कार्यों में सिद्धि प्राप्त हो जाती है। उक्त मन्त्र का पूजाकाल में १०८ बार जप करना चाहिए। इससे समस्त कुतूहल कारक प्रयोगों में सिद्धि मिल जाती है ॥ ६ ॥

नग्न आदि भ्रम-दर्शन

तं मृतं छायया शुष्कं चूर्णयित्वा कटिं लिम्पेत् ।
सवस्त्रमपि तं लोका नग्नमालोकयन्ति हि ॥ ७ ॥

उक्त पात्रस्थ गिरगिट को छाया में शुष्क करके चूर्ण करे। जिस व्यक्ति की कमर में इसका लेप किया जायेगा, वह वस्त्र धारण किये रहने पर भी नग्न ही दृष्टिगोचर होगा ॥ ७ ॥

तच्चूर्णं तालपत्रन्तु लेपितं सर्पसम्भ्रमम् ।
नागवल्लीदलं लिप्तं भूमौ क्षिप्तं समुत्पतेत् ॥ ८ ॥

उक्त गिरगिट के चूर्ण का तालपत्र पर लेपन करने से सर्पभ्रम हो जाता है। उस चूर्ण को पान के पत्र पर लेप करके भूमि पर रखने से वह उत्पतित हो जायेगा ॥ ८ ॥

तच्चूर्णं कौमुदं कन्दं नागवल्लीदलान्वितम् ।
पेषयित्वा लिपेद् भाण्डं तद्भाण्डे न विशेज्जलम् ॥ ९ ॥

इस गिरगिट-चूर्ण को कुमुद की जड़ तथा पान के पत्ते के साथ पीसकर कलश पर लेप करे। इस कलश में जल प्रवेश ही नहीं करेगा ॥ ९ ॥

मयूरन्तु शिला तालं भोजयित्वाऽहसप्तकम् ।
तद्विष्ठालिप्तहस्तश्चादृश्यं शक्रोऽपि नेक्षते ॥ १० ॥

एक मयूर को सात दिनों तक क्रम से मैनसिल तथा हरिताल भक्षण कराये। उसके मल को संग्रहीत करके अपने हाथों पर मलने से वह व्यक्ति अदृश्य हो जाता है। उसे हजार आँखों वाला इन्द्र भी नहीं देख सकता ॥१०॥

अङ्कोल-तैल निर्माण विधि

सप्ताहं तिलतैलेन भावयेदातपे खरे।
अङ्कोलबीजचूर्णन्तु शोष्यं पेष्यं पुनः पुनः।
तत् तैलं ग्राहयेच्चैव तैलकारस्य यन्त्रतः ॥ ११ ॥

अंकोलफल के बीजों को सात दिन पर्यन्त प्रबल आँच में तिलतैल में भावना देकर पुनः-पुनः उसका पेषण करे और उसे धूप में सुखाये। इसके बाद इसे कोल्हू में रखकर उसके द्वारा तेल निकाले ॥ ११ ॥

सद्यः केशोद्‌गम

लिप्तमङ्कोलतैलेन मुण्डितं तत्क्षणाच्छिरः।
पूर्ववत् पूर्यते केशैः सद्य एव न संशयः ॥ १२ ॥

मुण्डित व्यक्ति के शिर पर अंकोलतैल की मालिश करते ही तत्काल पूर्ववत् केश उग जाते हैं, यह निःसंदिग्ध है।

फल का उत्पादन

तत्तैलं लिप्तमाम्राण्डं शोषितं निखनेत् क्षणात्।
सफलो जायते वृक्षस्तत्क्षणात् नात्र संशयः ॥ १३ ॥

उक्त अंकोलतैल को एक आम की गुठली पर लगाकर सूर्य की धूप में सुखाये। सूखते ही उसे जमीन में गाड़ देना चाहिए। उसे गाड़ते ही एक आम का पौधा उग आता है और उसमें फल लगता है, यह निःसंदिग्ध है ॥ १३ ॥

पुष्प आदि का उगना

पद्मिनीबीजचूर्णन्तु भाव्यमङ्कोलतैलतः।
न्यस्तं जले महाश्चर्यं तत्क्षणात् कमलोद्भवः ॥ १४ ॥

पद्मिनीबीज के चूर्ण में उक्त अंकोलतेल द्वारा भावना देकर उसे जल में फेंकते ही तत्क्षण जल से पौधा उत्पन्न होता है और उसमें फूल खिल उठते हैं। यह महान् आश्चर्य है ॥ १४ ॥

बीजं नीलोत्पलोद्‌भूतं सिक्तमङ्कोलतैलतः।
न्यस्तं जले महाश्चर्यं तत्क्षणात् पुष्पसम्भवः ॥ १५ ॥

अंकोलतैल से नीलोत्पल कमल के बीजों को सिंचित करना चाहिए।

तदनन्तर उसे जल में फेंकने मात्र से तत्क्षण पुष्प उत्पन्न हो जाते हैं। यह महान् आश्चर्य है।

यानि कानि च बीजानि जलजस्थलजानि च।
अङ्कोलतैललिप्तानि क्षणात् तान्युद्भवन्ति वै ॥ १६ ॥

जल में उत्पन्न अथवा स्थल में उत्पन्न किसी भी बीज को अंकोलतैल से सिक्त करके जल में फेंकने मात्र से उसका पौधा उत्पन्न हो जाता है ॥१६॥

यत्किञ्चिद्धातुमूलञ्च पत्रपुष्पफलादिकम्।
अङ्कोलतैललिप्तं तदनुरूपं भविष्यति ॥ १७ ॥

किसी भी धातु, जड़, पत्र तथा फलादि को अंकोलतैल में सिक्त करने से तदनुरूप धातु, जड़, पत्रादि उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १७ ॥

कुमुदनाल में सर्पभ्रम

छत्राक्षमङ्कुलीतैलं त्वक्पत्रं शिशिरं जलम्।
तालकं सर्पनिर्मोकं शिखिपित्तेन संयुतम् ॥ १८ ॥

छत्र, बहेड़ा, अंकोलतैल, दारुचीनी, तेजपत्ता, शिशिर का जल, हरिताल, मयूर का पित्त तथा साँप की केचुल—इन सबको घृतकुमारी के रस में मल कर छाया में सुखाये। अब कुमुदनाल से इसका स्पर्श कराते ही वह सर्पाकृति हो जाता है ॥ १८ ॥

किसी धातु में दूसरी धातु का भ्रम

वटिकास्पर्शमात्रेण मृत्तिका लौहवद् भवेत्।
ताम्रभाण्डानि सर्वाणि तया लिप्तानि हेमवत्।
दृश्यन्ते तप्ततोयेन क्षालितानि सिताभ्रवत् ॥ १९ ॥

उपर्युक्त छाया में सुखाई बटिका का मिट्टी में स्पर्श कराने मात्र से मिट्टी लौह की तरह हो जाती है। इसे ताम्रपत्र पर लिप्त करने से वह ताम्रपात्र कांसे के पात्र-सा प्रतीत होने लगता है। वह बटिका-लिप्त ताम्रपात्र गरम पानी से प्रक्षालित करने पर अभ्रक जैसा प्रतीत होने लगता है ॥ १९ ॥

दृश्यन्ते रक्तगुञ्जाश्च श्वेतास्तल्लेपतो ध्रुवम्।
अक्षपत्रं तया स्पृष्टं दृश्यते कांस्यभाजनम् ॥ २० ॥
स्नुहीपत्रं तया लिप्तं शुष्कवद् दृश्यते जलम्।
तया लिप्ते नृकर्णे तु दृश्यते छिन्नशीर्षवत् ॥ २१ ॥

इस बटिका का लाल गुन्जा (घुमची) पर लेप करने से वह गुन्जा शुभ्रवर्ण दृष्टिगोचर होने लगती है। स्नूही के पत्ते पर इसका लेपन करने से

जल शुष्क हो गया-सा प्रतीत होने लगता है और यदि इस बटिका का लेप मनुष्य के कानों पर किया जाये, तब वह मनुष्य कटे मस्तक वाला-सा परिलक्षित होने लगता है ॥ २०-२१ ॥

दर्पण में चन्द्र-सूर्यग्रहण का दर्शन

रवीन्दुग्रहणं भान्ति तया लिप्तन्तु दर्पणम् ।
अङ्गुली च तया लिप्ता द्विधा सन्दृश्यते ध्रुवम् ॥ २२ ॥

किसी दर्पण पर उक्त बटिका का लेपन करने पर उसमें चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण परिलक्षित होने लगता है। यदि उंगलियों पर इस बटिका का लेप करें, तो वह उंगली दो भागों में विभक्त-सी प्रतीत होने लगती है ॥ २२ ॥

स्थल में समुद्र-दर्शन

भाण्डपाकस्थलाद् भस्म कुम्भकारस्थलाद्धरेत् ।
तद्भस्म गुटिकासार्द्धं मुष्टिबद्धं भुवि क्षिपेत् ।
समुद्रो दृश्यते लोकैः सत्यं चित्रं शिवोदितम् ॥ २३ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे कौतुकं
नाम षोडशं पटलम् ।

कुम्भकार जहाँ बर्तन पकाता है, वहाँ की भस्म ले आये। अब उक्त गुटिका के साथ एक मुट्ठी भस्म मिट्टी में फेंके। जहाँ यह भस्म फेंकी जायेगी वहाँ लोग समुद्रवत् स्थिति का दर्शन करने लगते हैं, यह सत्य है। इन समस्त आश्चर्य योग शंकरजी द्वारा कहे गये हैं ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के
कौतुक नामक सोलहवाँ पटल समाप्त ।

सप्तदशं पटलम्

अथ पादुकासाधनम्

अथ चाङ्कोलतैलेन पेषयेत् श्वेतसर्षपान् ।
तल्लिप्तहस्तपादस्तु योजनानां शतं व्रजेत् ॥ १ ॥

सफेद सरसों को अंकोलतैल के साथ पीसे । इसे हाथ और पैरों में लगाये । ऐसा व्यक्ति सौ योजन पर्यन्त जा सकता है ।

अङ्कोलतैलसम्पिष्टश्वेतसर्षपलेपिताम् ।
पादुकामुष्ट्रचर्मोत्थां समारुह्य शतं व्रजेत् ॥ २ ॥

सफेद सरसों को अंकोलतैल में पीसकर उसे ऊँट के चर्म से निर्मित पादुका पर लगाये । इस पादुका को धारण करके १०० योजन पर्यन्त जाया जा सकता है ॥ २ ॥

काकजङ्घा सिता ग्राह्या गृध्रस्य च वसा तथा ।
अश्वगन्धासमायुक्तामुष्ट्रीक्षीरेण पेषयेत् ।
अनेन लिप्तपादस्तु योजनानां शतं व्रजेत् ॥ ३ ॥

श्वेतवर्ण काकजंघा, गिद्ध की चर्बी तथा असगंध को ऊँटनी के दूध में पीसे । इसके द्वारा तलवों का लेपन करने से व्यक्ति १०० योजन पर्यन्त जा सकता है ॥ ३ ॥

इन तीनों प्रयोगों में पादलेप अथवा पादुकालेप को मन्त्र द्वारा ३ बार अभिमन्त्रित करना चाहिए । मन्त्र इस प्रकार है—

‘ॐ नमो भगवते रुद्राय भूतवेतालत्रासनाय शङ्खचक्रगदाधराय हन हन महते चन्द्रयुताय हूं फट् स्वाहा’ ।

अनेन पादलेपत्रयमभिमन्त्रयेत् । सिद्धिर्भवति ।

श्वेतमार्जारनकुलपित्तं ग्राह्यं समं समम् ।
योजनानां शतं गत्वा काकमांसं रसाञ्जनम् ।
पिष्ट्वा पादप्रलेपेन पुनरावर्त्तते क्षणात् ॥ ४ ॥

सफेद मार्जार तथा नेवले का पित्त समान मात्रा में मिलाकर तलवों में लेप करने से १०० योजन का मार्ग अतिक्रान्त किया जा सकता है । सौ योजन पार करने के उपरान्त उक्त (सफेद मार्जार-पित्त तथा नेवले के पित्त की

समान मात्रा) में कौए का मांस तथा रसाञ्जन मिलाकर मर्दन करे। इसका तलवों में लेप करने से वह व्यक्ति क्षणमात्र में उस १०० योजन पथ से पुनः लौटकर वापस आ सकता है ॥ ४ ॥

इस प्रक्रिया को निम्न मन्त्र द्वारा सम्पादित करे—

ॐ नमो भगवते रुद्राय मांसे मांसले काले सलेखोऽयं प्रवर सर सर स्वाहा' ॥

कीटमैन्द्रं ससिन्दूरं रविचन्दनवेतसम् ।
अजामांसं तथा रास्नामविक्षीरेण भावयेत् ॥ ५ ॥
पिष्ट्वा पादप्रलेपेन न गच्छेद् योजनायुतम् ।
सुभगः स तु नारीणां ब्रह्मतुल्यो भवेन्नरः ॥ ६ ॥

वीरबहूटी (इन्द्रगोप) नामक कीड़ा, सिन्दूर, कुंकुम, बेतसलता, बकरी का मांस तथा रास्ना को भेड़ी के दुग्ध में भावना दे। तदनन्तर इसे पीसकर पैरों में लेपन करने पर वह व्यक्ति १०००० योजन अनायास जा सकता है। वह स्त्री-समूह का भी प्रिय हो जाता है। किम्बहुना, वह व्यक्ति ब्रह्मा के तुल्य हो जाता है ॥ ५-६ ॥

इस योग के सम्पादनार्थ मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः सूर्याय नमश्चन्द्राय शङ्खचक्रगदाधराय हिलि हिलि स्वाहा'।

सुरभीकाञ्चनीमूलमजमारी च चन्द्रकम् ।
दरदं पारदञ्चैव उष्ट्रीक्षीरेण पेषयेत् ॥ ७ ॥
अनेन पादलेपेन नानारूपधरो भवेत् ।
योजनानां सहस्रैकं गत्वा प्रतिनिवर्त्तते ।
कामयेत् स्त्रीसहस्राणि रुद्रतुल्यो भवेन्नरः ॥ ८ ॥

नयी मल्लिका का फूल, स्वर्णक्षीरी की जड़, अजमारी, कर्पूर, हिंगुल तथा पारद का मर्दन ऊँटनी के दूध में करे। इसका लेपन पैरों पर करने से वह व्यक्ति नाना प्रकार का रूप धारण कर सकता है। वह प्रतिदिन १००० योजन तक जाकर पुनः वापस आने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इसके प्रभाव से वह सहस्रों रमणियों की कामना करने वाला और साक्षात् रुद्र के समान हो जाता है ॥ ८ ॥

इस प्रयोग के लिए यह मन्त्र कथित है—

'ॐ नमो भगवते रुद्राय नमो दण्डिकपालाय मिलि कटङ्कटस्य यानप्रियाय वर्द्धे श्रीशूलिने भगवते त्रिनेत्राय चल हन स्वाहा' ॥

सारिकाया वसानेत्रमन्त्राणि रुधिरं तथा ।
काकपित्तं तथा नेत्रं हरिचन्दनवेतसम् ।। ९ ।।
शुनो मज्जां वसां तुल्यमुष्ट्रीक्षीरेण भावयेत् ।
पादलेपः प्रकर्त्तव्यो नमस्कृत्य शिवं ततः ।। १० ।।
योजनं लक्षमेकन्तु निमिषार्द्धेन गच्छति ।
गगनाशेषचारी च क्रीडत्येव यथा शिवः ।। ११ ।।
स्त्रीकोटिशतसङ्घातं कामयेन्निमिषान्तरे ।
ब्रह्मतुल्यो भवेत् सोऽपि लीयते परमे शिवे ।। १२ ।।

मादा तोता की चर्बी, नेत्र, आँत तथा रक्त; कौवे का पित्त, नेत्र; कुंकुम, वेतसलता, कुत्ते की मज्जा और चर्बी को समान मात्रा में लेकर ऊँटनी के दुग्ध में भावना दे। तदनन्तर शिव को प्रणाम करके उसका पैरों पर लेप करे।

ऐसा करने पर वह व्यक्ति आधे निमेष मात्र में लाख योजन पथ अतिक्रमण कर सकता है। वह महादेव के समान समस्त आकाश में भी गमन करने में समर्थ हो जाता है। वह निमेष मात्र में हजारों नारियों की कामना पूर्ण करने में समर्थ हो जाता है। वह ब्रह्मतुल्य होकर अन्त में परब्रह्म में विलीन हो जाता है ।। ९-१२ ।।

इस प्रयोग के लिए विहित मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ नमश्चन्द्रमणे चन्द्रशेखरे नमो भगवते तिष्ठ नमो भगवते नमो भगवते नमः शिवाय नमः शूलिने नमः पादप्रचारिणे योगिने हूं फट् स्वाहा' ।।

प्रतीचीदिग्गतं मूलं देवदाल्याः समाहरेत् ।
तत् पिष्ट्वाङ्कोलतैलेन पादलेपाच्छतं व्रजेत् ।। १३ ।।

देवदाली नामक पौधे की पश्चिम दिशा की ओर की जड़ का अंकोलतैल में मर्दन करे। इसका पादलेप करने से सौ योजन पर्यन्त जा सकने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है ।। १३ ।।

दूर गमन

काकतुण्डस्य मूलानि तिलतैलेन पाचयेत् ।
पादादिजानुपर्यन्तं लिप्त्वा दूराध्वगो भवेत् ।। १४ ।।

तिलतैल में काकतुण्डी (कौवाठोड़ी) की जड़ को पकाकर उसका लेप पैरों से लेकर जंघा पर्यन्त करने से अतिदूरवर्ती स्थान तक जाने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है ।। १४ ।।

श्लोक १३ तथा १४ में अंकित प्रक्रिया हेतु यह मन्त्र है—

'ॐ ह्लीं नमश्चण्डिकायै गगनं गमय गमय चालय चालय वेगवाहिनी ह्लीं स्वाहा'।

काकस्य हृदयं नेत्रं जिह्वाञ्चैव मनःशिलाम्।
गैरिकं सिन्दुरञ्चैव अजमारी च मालती।
समं रुद्रजटा चैव विदार्या सह पेषयेत्॥ १६॥
तल्लिप्तपादः सहसा सहस्रयोजनं व्रजेत्।
वलीपलितनिर्मुक्तो यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १७॥

कौए का वक्षःस्थल, नेत्र तथा जिह्वा, मैनसिल, गेरु, सिन्दूर, अजमारी, मालती फूल तथा रुद्रजटा को विदारीकन्द के साथ पीसना चाहिए। इसका पैरों पर लेप करने से मुहूर्तमात्र में १०० योजन पथ का अतिक्रमण किया जा सकता है। साथ ही प्रलय पर्यन्त वली एवं पलित रोग से मुक्त रहकर जीवन धारण की क्षमता आ जाती है॥ १६-१७॥

इस योग का मन्त्र निम्नलिखित है—

'ॐ नमो भगवते रुद्राय हरितगदाधराय त्रासय त्रासय चालय चालय स्वाहा'।

निर्गुण्डीमूलमादाय मलं पारावतोद्भवम्।
पलाशबीजसंयुक्तं रक्तपाठाफलानि च॥ १८॥
उलूकहृदयश्चात्र पेषयेच्छीतवारिणा।
अनेन पादलेपेन योजनानां शतं व्रजेत्॥ १९॥

निर्गुण्डी की जड़, कपोत पक्षी का मल, पलाश के बीज, लालपाठा का फल तथा उल्लू का वक्षःस्थल एक साथ शीतल जल में मले। इसका लेप पैरों के तलुओं पर करने से १०० योजन पर्यन्त जाने की क्षमता प्राप्त हो जाती है॥ १८-१९॥

उलूकस्य तु पादानि दग्धानि चूर्णितानि च।
अङ्कोलीतैलपिष्टानि पादलेपे प्रयोजयेत्।
योजनानां शतं गत्वा पुनरागच्छति ध्रुवम्॥ २०॥

उल्लू के दोनों पैरों को जलाकर उसके चूर्ण को अंकोलतैल में मिलाकर पादलेप करे। इससे वह व्यक्ति १०० योजन जाकर पुनः वापस आने की शक्ति अवश्य प्राप्त कर लेता है।

श्लोक १८, १९ तथा २० हेतु यह मन्त्र उपदिष्ट है—

'ॐ ह्लीं ह्लीं ह्लं प्ल हूं फट् नमः'॥

यथेच्छगमन

विधिना कृकलासस्य पुच्छमादाय दक्षिणम् ।
त्रिलौहवेष्टितं वक्त्रे धार्यमिच्छागतिर्भवेत् ॥ २१ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे पादुकासाधनं नाम सप्तदशं पटलम् ।

गिरगिट की दक्षिण को ओर घूमी हुई पूँछ को नियमानुसार लेकर पूर्वोक्त परिमाण के त्रिलौह के खोल में भरे। इस गुटिका को मुख में रखने से इच्छागति प्राप्त होती है ॥ २१ ॥

इस प्रयोग का मन्त्र यह है—

'ॐ सङ्कोचय स्वाहा' ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के पादुकासाधन नामक सतरहवाँ पटल समाप्त ।

अष्टादशं पटलम्

अथ गुटिकासाधनम्

द्वादशयोजन-यातायात

साधकश्चिल्हालयं गत्वा नित्यं तस्मै निवेदयेत्, देवताबुद्ध्याऽतिभक्त्या भक्षणार्थं किञ्चित् किञ्चिदाममांसं निक्षिपेत्, यावत् प्रसूता भवति। ततः पारदरसं सार्द्धंनिष्कत्रयं कस्मिंश्चिन्नालिकाद्वये निक्षिपेत्। तस्याधोर्ध्वं छिद्रं सिक्थेन रुद्ध्वा चिल्हालयं गत्वा अण्डद्वयस्योपरि नालिकाद्वयं निधाय लौहशलाकया नालिकामध्यमार्गेण तदण्डं लघुहस्तेन वेधयित्वा शलाकामुद्धरेत्। तेनैव मार्गेण अण्डमध्ये यथाश्मो गच्छति तथायत्तं कुर्यात्॥ १॥

गुटिका-साधन

बारह योजन पर्यन्त आना-जाना

साधक मादा चील पक्षी के घोंसले के पास पहुँचकर उसे देवता माने और उसे नैवेद्य प्रदान करे। अर्थात् प्रतिदिन कुछ कच्चा मांस उसके घोंसले में रखे (अथवा उसे भक्षण कराये)। जब तक वह पक्षी अण्डा न दे, तब तक यही प्रक्रिया करता रहे। जब पक्षी अण्डा दे दे, तब साधक को चाहिए कि वह दो खोखले नलकों (प्रत्येक) में साढ़े तीन-तीन तोला पारा भरे। उन नलकों के दोनों ओर के छेदों को मोम द्वारा बन्द करना चाहिए। अब इन नलकों को (क्रमशः) दोनों अण्डों के ऊपर रखे और दोनों नलकों के बन्द छिद्र में एक-एक लोहे की सींक डालकर उस सींक से धीरे-धीरे दोनों अण्डों में छेद करे। ऐसे छेद करे कि अण्डों में छेद तो हो, तथापि वे भग्न न हो जायें (इस प्रकार नलकों का पारा उन अण्डों में भर जायेगा।)॥ १॥

ततश्छिद्रं चिल्हविष्ठया लिपेत्। ततस्तद्वृक्षाधो नित्यमतिबल्युपहारेण पूजां कुर्यात्। यावत् स्वयमेवाण्डानि स्फोटयन्ति तावन्नित्यमुपरि गत्वा वीक्षयेत्। स्फुटिते सति गुटिकाद्वयं ग्राह्यम्। ततो वृक्षादुत्तीर्य यो गिलति मनुष्यस्तस्मै एका देया। अपरां स्वयं मुखे धारयेत्। योजनद्वादशं गत्वा पुनरेव निवर्त्तयेत्। इति सिद्धयोगः॥२॥

अब अण्डे के उस छेद को उस पक्षी की ही बीट द्वारा बन्द करना चाहिए। जब तक वे अण्डे फूट नहीं जाते तब तक उस वृक्ष के नीचे (जिसमें उस पक्षी का घोंसला है) प्रतिदिन बलि तथा नाना प्रकार के उपहार चढ़ाना

चाहिए। साथ ही प्रतिदिन वृक्ष पर चढ़कर घोंसले में यह देखते रहना चाहिए कि अण्डे फूटे हैं अथवा नहीं। (अण्डों के फूट जाने पर उसमें स्थित पारा गुटिका का रूप धारण कर लेगा।) उन दोनों गुटिकाओं को दोनों अण्डों से निकाल लेना चाहिए और वृक्ष से उतर कर एक गुटिका को अपने मुँह के भीतर रखना चाहिए और दूसरी गुटिका ऐसे व्यक्ति को देना चाहिए जो उसे गिलित (निगलने में) करने में समर्थ हो। इस प्रकार साधक १२ योजन तक जाकर पुनः वापस आ सकता है। यह सिद्ध योग है॥ २॥

ॐ ह्रीं हूं फट् चिल्हाचक्रेश्वरि परात्परेश्वरि पादुकासाधनं ॐ देहि मे देहि स्वाहा।

अनेन मन्त्रेण जपं पूजाञ्च कुर्यात्।

ॐ से स्वाहा तक जो मन्त्र ऊपर अंकित है, उक्त प्रयोग में इसी से जप एवं पूजन (बलि-नैवेद्य निवेदन) करना चाहिए।

आकाशगमन

ॐ ह्लीं चित्रलेखे आगच्छ आगच्छ तु तु तु तु ह्लीं स्वाहा।

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्री ध्यात्वा तां रक्तवर्णकाम्।
कदम्बवनमध्ये तु मदघूर्णितलोचनाम्॥ ३॥
कुण्डलैर्मणिभिर्दिव्यैर्वस्त्रालङ्कारभूषिताम्।
सामृतं कलशं वामे दक्षिणे मणिहारकम्॥ ४॥
दधतीं चिन्तयेद् दीप्तां रक्तपद्मोपरि स्थिताम्।
प्रहसन्तीं चित्रलेखां प्रसन्नां नवयौवनाम्॥ ५॥
ईदृशीं पूजयेन्नित्यं जपान्ते होमयेत् ततः।
शर्कराश्छागमांसन्तु गोक्षीरं घृतसंयुतम्।
दशांशेन ततस्तुष्टा गोचरत्वं प्रयच्छति॥ ६॥

साधक को ऊपर अंकित (ॐ से स्वाहा पर्यन्त) मन्त्र का जप करना चाहिए। (जपकाल में) कदम्ब वन में स्थित रक्तवर्णा, मदोन्मत्तता के कारण चंचल नेत्रों वाली, दिव्य कुण्डल, मणियुक्त कपड़ों तथा भूषणों से विभूषिता, बायें हाथ में अमृत से भरे कलश को एवं दाहिने हाथ में मणिमय हार को धारण करने वाली, रक्तवर्ण कमल पर आसीन, सुहास्यपूर्ण मुख वाली, नवयौवना, प्रसन्ना तथा दीप्ता चित्रलेखा देवी का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार की आकृति वाली चित्रलेखा देवी का नित्य पूजन करना चाहिए। जप के पूर्ण होने पर उसके दशांश (तीस हजार) का हवन करे। इस हवन में शर्करा, बकरे का मांस, गोदुग्ध एवं गोघृत का प्रयोग करना चाहिए। इससे देवी प्रसन्न होकर दर्शन देती हैं॥ ३-६॥

विमानं खेचरत्वञ्च ददात्यमृतभोजनम् ।
आयुर्लक्षायुतञ्चैव हारकेयूरमण्डलम् ।
नानालोकगतिञ्चैव यस्मान्मन्त्री सुखी भवेत् ॥ ७ ॥

वे (प्रसन्न होकर) साधक को आकाश में विचरण करने वाला विमान, शून्य में उड़ने की शक्ति, अमृत-भोजन, अयुत लक्ष वर्ष पर्यन्त की परमायु, हार-केयूर तथा नाना लोकों में जाने लायक गतिशक्ति प्रदान करती हैं। वे ऐसा उपाय भी कर देती हैं, जिससे साधक सदैव सुखी रह सके ॥ ७ ॥

मृतसंजीवनी विद्या

मृतसञ्जीवनीं विद्यां प्रवक्ष्यामि समासतः ।
लिङ्गमङ्कोलवृक्षाधः स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ॥ ८ ॥

मृतक को जीवित करने वाली विद्या

अब मृतसञ्जीवनी विद्या का सविस्तार वर्णन किया जाता है। अंकोल वृक्ष की जड़ के पास शिवलिंग स्थापित करके प्रतिदिन उसका पूजन करे ॥८॥

नवं घटञ्च तत्रैव पूजयेल्लिङ्गसन्निधौ ।
वृक्षं लिङ्गं घटञ्चैव सूत्रेणैकेन वेष्टयेत् ॥ ९ ॥

उनके निकट एक नया घट स्थापित करके उसका भी पूजन करना चाहिए। तदनन्तर वृक्षलिंग तथा उस घट को परस्पर एक सूत्र (तागे) से बाँध देना चाहिए ॥ ९ ॥

चतुर्भिः साधकैः सार्द्धं प्रतियामं क्रमेण तु ।
एवं दिवानिशं कुर्यादघोरेण समर्चनम् ॥ १० ॥

चार साधकों को क्रमशः एक-एक प्रहर इसका पूजन करना चाहिए। रात्रि तथा दिन में (आठ प्रहर पर्यन्त) ऐसे ही (क्रमशः एक-एक साधक को एक-एक प्रहर) पूजन करना चाहिए। यह पूजन अघोर मन्त्र से करना होगा ॥ १० ॥

पुष्पादिफलपक्वान्नं साधनं कारयेत् सुधीः ।
फलानि पक्वान्यादाय पूर्वोक्तं पूरयेद् घटम् ॥ ११ ॥

जब तक उस वृक्ष में पुष्प एवं फल नहीं लग जाते, तब तक इसी प्रकार से पूजनादि करते रहना चाहिए। जब फल लगकर पक जायें, तब उन पके फलों से उस घट को भर देना चाहिए ॥ ११ ॥

तद्घटं पूजयेद् धीमानर्घ्यपुष्पाक्षतादिभिः ।
तुषवर्ज्जं ततः कृत्वा बीजानां वापयेन्मुखम् ॥ १२ ॥

तन्मुखे टङ्कणं चूर्णं किञ्चित् किञ्चित् प्रपूरयेत् ।
विस्तीर्णमुखभाण्डान्तः कुम्भकारगणोद्धृताम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर पुनः अर्घ्य, पुष्प तथा अक्षत द्वारा उस घट की अर्चना करे। तदनन्तर उन फलों से बीज निकाल कर उन बीजों के मुख को तनिक-सा काट कर उसमें सुहागा का चूर्ण भर देना चाहिए। अब किसी चौड़े मुँह वाले पात्र में अन्दर की ओर कुम्हार के यहाँ से लायी गयी मिट्टी का लेप चढ़ाकर उसमें इन बीजों को चिपका देना चाहिए ॥ १२-१३ ॥

मृत्तिकां लेपयेत् तत्र तानि बीजानि लेपयेत् ।
कुण्डल्याकारयोगेन यत्नादूर्ध्वमुखानि च ॥ १४ ॥
तच्छुष्कं ताम्रपात्रोत्थं भाण्डं देयादधोमुखम् ।
आतपे धारयेत् तैलं ग्राहयेत् तञ्च रक्षयेत् ॥ १५ ॥

इन बीजों को इस प्रकार चिपकाना चाहिए कि वे कुण्डली की आकृति में ऊर्ध्वमुखी रूप से (पात्र के भीतर मृत्तिका-लेप पर) लगे रहें। अब इस पात्र को उलटा करके सूर्य के ताप में रखें। इससे मृत्तिका-लेप सूख जायेगा। बीज भी सूर्य के ताप से तप्त होंगें और उनसे तेल बहने लगेगा। (अतः इसे तेज धूप में रखना चाहिए।) पात्र उलटा रखते समय उसके नीचे एक ताँबे का बर्त्तन रखना चाहिए, जिससे सूर्यताप से तप्त बीजों का तैल उस बर्त्तन में एकत्र होता रहे। इस तैल का संग्रह करके उसे सुरक्षित रूप से रखना चाहिए ॥ १४-१५ ॥

माषार्द्धञ्चैव तत् तैलं माषार्द्धं तिलतैलकम् ।
तस्य देयं मृतस्यैतं सम्यक् तल्लेपितेन तु ॥ १६ ॥
तत्क्षणाज्जीवयेत् सत्यं गतो वापि यमालयम् ।
रोगादिसर्पादिमृताः पुनर्जीवन्ति निश्चयम् ॥ १७ ॥

यदि इस तैल को आधा मासा लेकर उसे इतने ही तिलतैल में मिलाकर मृत व्यक्ति के देह में सम्यक् परिमाण में (अर्थात् आधा-आधा मिलाकर) लगाया जाये, तब वह यमालय गया हुआ व्यक्ति भी तत्क्षण पुनः जीवित हो जाता है। जो व्यक्ति रोग से, सर्प के डँसने से अथवा अपघात आदि के कारण मर जाता है, वह व्यक्ति भी इस तैल के गुण के कारण पुनः जीवित हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

पुंशुक्रं पारदं तुल्यं तेन तैलेन मर्द्दयेत् ।
गात्रे देयं मृतस्यैव कालदष्टस्य वा क्षणात् ।
जीवमायाति नो चित्रं महादेवेन भाषितम् ॥ १८ ॥

पुरुष का वीर्य तथा पारद को समान मात्रा में लेकर ऊपरवर्णित तेल में

मिलाना चाहिए। इसे मृतक की देह में मलने से कालसर्प द्वारा डँसा गया व्यक्ति भी तत्क्षण पुनः जीवित हो जाता है। यह हमारे लिए आश्चर्य का विषय है! यह महादेव द्वारा कहा गया है ॥ १८ ॥

पुष्यभास्करयोगेन गुडूचीमूलमाहरेत्।
कर्षमुष्णोदकैः पीतमपमृत्युहरं परम् ॥ १९ ॥

जिस रविवार को पुष्य नक्षत्र पड़ा हो, उस दिन गुरुच की जड़ लाये। इसे दो तोला गरम जल के साथ खाना चाहिए। इससे अपमृत्यु का निवारण होता है ॥ १९ ॥

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः।
नमोऽस्तु सर्वसर्वेभ्यो नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

उक्तयोगद्वयस्यायमेव मन्त्रः।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे गुटिकासाधनं मृतसञ्जीवनीविद्यावर्णनं नाम अष्टादशं पटलम्।

ॐ से लेकर 'रुद्ररूपेभ्यः' पर्यन्त जो मन्त्र यहाँ अंकित है, वही इन दोनों योगों के लिए मन्त्र है।

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के गुटिकासाधन-मृतसञ्जीवनीविद्यावर्णन नामक अठारहवाँ पटल समाप्त।

ऊनविंशं पटलम्

अथादृश्यीकरणम्

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं राजद्वारे शुचिः स्थितः ।
क्षीरेण मालतीपुष्पैर्हुता सिध्यति यक्षिणी ।
ददाति गुटिकां सा तु मुखस्थाऽदृश्यकारिणी ॥ १ ॥

ऐं मदने मदनविडम्बने आत्मनोऽङ्गं देहि मे देहि श्रीं स्वाहा ।

यहाँ अंकित ऐं से लेकर स्वाहा पर्यन्त मन्त्र का राजद्वार में स्थित होकर पवित्र स्थिति में एक लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर दुग्धमिश्रित मालती पुष्प द्वारा १०००० आहुति (उक्त मन्त्र द्वारा) देनी चाहिए । इससे यक्षिणी देवी सिद्ध होती हैं और साधक को ऐसी गुटिका प्रदान करती है, जिसे मुख में रखने मात्र से साधक को कोई देख नहीं सकता ॥ १ ॥

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं श्मशाने नियतः शुचिः ।
नग्नो भूत्वा ततस्तुष्टा पटं यच्छति यक्षिणी ॥ २ ॥
तेनावृतो नरोऽदृश्यो विचरेद् वसुधातले ।
निधिं पश्यति गृह्णाति न विघ्नैः परिभूयते ॥ ३ ॥

ॐ ह्लीं श्मशानवासिनी स्वाहा ।

पवित्र तथा संयत मनःस्थिति से युक्त साधक को श्मशान में नग्न होकर आसनासीन स्थिति में "ॐ ह्लीं श्मशानवासिनी स्वाहा" मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए । इससे सन्तुष्ट होकर यक्षिणी देवी एक प्रकार का वस्त्र साधक को प्रदान करती हैं । साधक इस वस्त्र को ओढ़कर सबके लिए अदृश्य हो जाता है । उसे अज्ञात (छिपी) निधियों का दर्शन प्राप्त होता है । इस (निधिदर्शन) क्षेत्र में उसे कोई भी विघ्न पराभूत नहीं कर सकते ॥ २-३ ॥

निशायाञ्च निधिं ध्यात्वा जपन् वामेन पाणिना ।
अदृश्यकारिणीं विद्यां लक्षजापे प्रयच्छति ॥ ४ ॥

मन्त्रः—ॐ नमो विश्वाचर महेश्वर मम पर्य्यंटतः ।

रात्रिकाल में निधि का ध्यान करके वाम हाथ से ऊपर लिखे मन्त्र का जप करना चाहिए । इससे देवी प्रसन्न होकर साधक को अदृश्यकारिणी विद्या का ज्ञान प्रदान करती हैं ॥ ४ ॥

अतिबल्युपहारेण कुर्यादर्च्चनमुत्तमम् ।
ततो दीपोऽङ्कुलीतैलैर्वर्त्तिः स्यादर्कतन्तुजैः ॥ ५ ॥

प्रज्ज्वाल्य नृकपाले तु तत्पात्रे घृष्टकज्जलम् ।
अञ्जयेन्नेत्रयुगले देवैरपि न दृश्यते ॥ ६ ॥

अत्यधिक बलि एवं उपहार द्वारा यक्षिणी देवी का पूजन करना चाहिए। पूजा-समापन के अवसर पर अंकोल के तेल का दीपक दिखलाये। मदार की रुई की बत्ती का इस दीपक में प्रयोग करे। उसे अंकोल के तैल से सिक्त करके मनुष्य की खोपड़ी के दीपक में रखकर प्रज्वलित करे। इस दीपक से काजल बनाकर उस काजल को नेत्रों में लगाना चाहिए। अब साधक को देवता भी नहीं देख सकते ॥ ५-६ ॥

अर्कशाल्मलिकार्पासपट्टसूत्राजतन्तुभिः ।
पञ्चभिर्वर्त्तिकाभिश्च नृकपालेषु पञ्चसु ॥ ७ ॥
नरतैलेषु दीपेषु कज्जलं नीरजैर्दलैः ।
ग्राहयेत् पञ्चभिर्यत्नात् पूर्ववच्च शिवालये ॥ ८ ॥
पञ्चस्थानेषु युञ्जीत एकीकुर्याच्च तत् पुनः ।
मन्त्रयित्वाञ्जयेन्नेत्रं देवैरपि न दृश्यते ॥ ९ ॥

मदार की रुई, शालमली की रुई, कपास की रुई, पट्टसूत्र तथा पद्म का तन्तु —इन पाँच प्रकार के सूत्र से ५ बत्ती अलग-अलग बनाये। इन पाँचों बत्तियों को नारियल के तेल में भिगा कर ५ नरमुण्डों में जलाये। अब इन प्रज्वलित दीपकों की ज्वाला के तनिक ऊपर एक-एक कमल का पत्ता रखते हुए उसमें काजल जमने देना चाहिए। यह कार्य शिवालय के ५ पृथक्-पृथक् स्थान पर करे (अर्थात् एक-एक दीपक को अलग-अलग स्थान पर जलाये)। अब इन पाँचों स्थान के कज्जल को एक साथ मिलाये। उसे नीचे लिखे मन्त्र से अभिमंत्रित करते हुए नेत्रों में लगाने से साधक को देवता भी नहीं देख सकते ॥ ७-९ ॥

मन्त्र—इस प्रयोग का मन्त्र यह है—

ॐ ह्रीं फट् कालि कालि मांसशोणितभोजने रक्तकृष्णमुखे देवि मा मे पश्यति मनुष्यति हुं फट् स्वाहा।

अयं मन्त्रः अयुतजपेन सिद्धो भवति।

यह मंत्र १०००० हजार बार जपने से सिद्ध होता है। (सिद्ध करके पुनः अंजन लगाते समय इसे जपते हुए काजल लगाये।)

ततः सर्वे अदृश्यकरणप्रयोगा अष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्याः। अनेनैव कुर्यात्। ततः सिद्धो भवति ॥ १० ॥

सभी अदृश्यकरण प्रयोगों में इस मन्त्र से अंजन को १०८ बार अभिमंत्रित करके लाये। इससे सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १० ॥

अङ्कुलीतैलसंसिक्ता वचा सप्तदिनावधि ।
त्रिलोहवेष्टिताधातुगुटिकां कारयेच्छुभाम् ।
अदृश्यकारिणीं ध्याता मुखस्थां नात्र संशयः ॥ ११ ॥

एक टुकड़ा वचा नामक जड़ी को सात दिन पर्यन्त अंकोल के तेल में भिगाने के पश्चात् उसे त्रिलौह के बनाये गये यन्त्र में भरे। इससे एक सुन्दर धातु की गुटिका तैयार करे। इसे मुख में धारण करने से साधक सबके लिए अदृश्य हो जाता है। यह निःसंदिग्ध है ॥ ११ ॥

तत्तैले सर्षपं श्वेतः त्रिलोहेन च वेष्टयेत् ।
गुटिकामुखमध्यस्था ध्याताऽदृश्यत्वकारिणी ॥ १२ ॥

अंकोल के तेल में श्वेत सरसों (सात दिन) भिगा कर उसे उसी प्रकार त्रिलौह की गुटिका में भरे। इस गुटिका को मुख में रखने से साधक अदृश्य हो जाता है ॥ १२ ॥

काकोलूकस्य पक्षाश्च निजकेशास्तथैव च ।
अन्तर्धूमगतं दग्धं सूक्ष्मचूर्णन्तु कारयेत् ॥ १३ ॥
अङ्कोलतैलगुटिकां कृत्वा शिरसि धारयेत् ।
अदृश्यो जायते क्षिप्रं देवैरपि न दृश्यते ॥ १४ ॥

कौआ एवं उलूक के पंख और अपने बालों को एक साथ अन्तर्धूम (जिसका धुआँ बाहर न निकले, इस प्रकार) जलाकर अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण तैयार करे। (अर्थात् मिट्टी के पात्र में रखकर उसका मुख बन्द करके जलाये, अन्यथा राख नहीं बचेगी।) अब इस चूर्ण को अंकोल के तेल में मिलाकर पूर्ववत् त्रिलौह की गुटिका में भरना चाहिए। इस गुटिका को मस्तक पर धारण करते ही साधक उसी क्षण अदृश्य हो जाता है। देवगण भी उसे देख सकने में समर्थ नहीं हो सकते ॥ १३-१४ ॥

तालकं कृष्णमहिषीक्षीरमङ्कोलतैलकम् ।
तल्लिप्ताङ्गो नरोऽदृश्यो जायते शङ्करोदितम् ॥ १५ ॥

हरताल, काली भैंस का दूध तथा अंकोलतेल को मिलाकर जो व्यक्ति इसका शरीर में लेप करता है, वह सबके लिए अदृश्य हो जाता है, यह शंकर की उक्ति है ॥ १५ ॥

अङ्कोलतैलसंसिक्तं मलं पारावतोद्भवम् ।
ललाटे तिलकं तेन कृत्वाऽदृश्यो भवेन्नरः ॥ १६ ॥

मन्त्र—'ॐ कक्षतो लालामूलं हुने सौरे जाने ह्रीं ह्रीं सिद्धे स्वाहा'। उक्तयोगानामयमेव मन्त्रः ॥ १७ ॥

कबूतर की बीट को अंकोलतैल में मिलाकर उसका ललाट पर तिलक करने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है।

इन सभी प्रयोगों का मन्त्र 'ॐ कक्षतो' से 'स्वाहा' पर्यन्त है। (ये गुटिका प्रयोग श्लोक ११ से १६ तक कहे गये हैं) ॥ १७ ॥

श्वेतापराजितामूलं ग्राह्यं चन्द्रग्रहे सति।
बालाक्षौद्रेण संयुक्ता गुटिकां मूर्ध्नि धारयेत्।
वक्त्रे हस्ते च सा ग्राह्या देवैरपि न दृश्यते ॥ १८ ॥

जब चन्द्रग्रहण लगा हो, उस समय सफेद अपराजिता की जड़ लाकर उसे बला (सहदेयी) और मधु के साथ पीसकर एक गुटिका बनाये। इसे मस्तक, मुख अथवा हाथ में धारण करने से साधक को देवगण भी नहीं देख सकते ॥१८॥

पुत्रजीवोत्थितं तैलं वर्त्ति कृत्वाऽजतन्तुजाम्।
गोरोचनामधुभ्याश्च वीरमुण्डे प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥

पद्मतन्तु की बत्ती बनाकर उसे जीवितपुत्रिका के बीजों के तैल में भिगाना चाहिए। इसके पश्चात् दो वीर पुरुषों की खोपड़ी लाये। एक में गोरोचन का तथा दूसरे में शहद का लेप करे ॥ १९ ॥

दीपं प्रज्वाल्य चैकस्मिन्नपरे स्थाप्य कज्जलम्।
तदञ्जनाञ्जितो मर्त्यो विश्वेनापि न दृश्यते ॥ २० ॥

गोरोचन से लिप्त मुण्ड में उस बत्ती को जलाये और शहद से लिप्त मुण्ड को उस ज्वाला के ऊपर रखे, तानि उसमें काजल पड़े। इस काजल को नेत्रों में लगाने से साधक को इस विश्व में कोई भी नहीं देख सकता ॥ २० ॥

जरायुचूर्णमादाय श्वेतकृष्णस्य वाऽथवा।
मार्जारस्य गृहीत्वा तु कुर्यात् त्रिलोहवेष्टितम्।
मुखस्थं मस्तकस्थं वा नरस्यादृश्यकारणम् ॥ २१ ॥

सफेद अथवा काली बिल्ली के जरायु का चूर्ण लेकर उसे त्रिलौह की गुटिका में भरना चाहिए। इस गुटिका को मुख अथवा मस्तक पर रखने से साधक अदृश्य हो जाता है ॥ २१ ॥

भोजयेत् कृष्णकाकं तु महिषीनवनीतकम्।
तद्विष्ठा रवितूलेन नृकपालेषु पूर्ववत्।
श्मशाने कज्जलं ग्राह्यं तद्वत् फलमनुत्तमम् ॥ २२ ॥

एक घोर कृष्ण वर्ण कौए को भैंस का मक्खन खिलाये। उस कौए की बीट को मदार की रुई में लपेट कर बत्ती बनाये। इस बत्ती को श्मशान में बैठ कर जीवत् पुत्रिका के बीजों के तेल में भिगाये। एक वीर पुरुष की खोपड़ी

(कपाल) में गोरोचन लगाकर उसमें इस बत्ती को जलाये और अन्य वीर पुरुष की खोपड़ी में शहद का लेप करके उसे इस ज्वाला के ऊपर रखे, ताकि इसमें काजल जम जाये। इस काजल को नेत्रों में लगाने से साधक को कोई देख नहीं सकता ।। २२ ।।

पारावतस्य कुक्षिस्थं पक्षं स्रोतोऽञ्जनं तथा ।
कृष्णमार्जाररक्तेन सिक्तमञ्ज्याददृश्यकृत् ।। २३ ।।

कबूतर के कोख के पंख तथा स्रोतांजन को बिल्ली के रक्त से भिगाकर उसके काजल से नेत्रों को अंजित करने से साधक अदृश्य हो जाता है ।। २३ ।।

कृष्णमार्जाररक्तेन भाविते रक्ततन्तुभिः ।
वर्त्तिस्तत् कपिलाज्येन नृकपाले च पूर्ववत् ।
ग्राहयेत् कज्जलं दिव्यमदृश्यकरणोदितम् ।। २४ ।।

काली बिल्ली के रक्त से लाल डोरे को भिगाकर उसकी बत्ती बनाये। कपिला गौ के घृत में इसे भिगाकर श्लोक २२ में वर्णित विधि से दो नरमुण्डों का प्रयोग करके इसका काजल बनाये। यह कज्जल आँखों में लगाने से साधक सबके लिए अदृश्य हो जाता है ।। २४ ।।

दरदो देवदारुश्च चितामांसं नरस्य च ।
स्रोतोऽञ्जनयुतं कुर्यादञ्जनेऽदृश्यकारकम् ।। २५ ।।

हिंगुल, देवदारु, चिता पौधा, नरमांस तथा स्रोतांजन को एक साथ मिलाकर अंजन बनाकर लगाने से अदृश्यकारक योग तैयार हो जाता है ।।२५।।

उलूकस्य शृगालस्य शूकरस्याक्षिनासिकाम् ।
नीलाञ्जनयुतां पिष्ट्वा रुद्धा स्रावपुटे दहेत् ।
तेनाञ्जितो नरोऽदृश्यो जायते नात्र संशयः ।। २६ ।।

उलूक, शृगाल एवं शूकर के नेत्र एवं नासिका को नीलाञ्जन के साथ मिलाकर चूर्ण करके (आयुर्वेदोक्त) स्रावपुट में रखकर दग्ध करे। इस प्रकार प्राप्त भस्म का नेत्रों में अंजन लगाने से साधक अदृश्य हो जाता है। यह निःसंशय है ।। २६ ।।

खञ्जरीटं सजीवन्तु गृहीत्वा फाल्गुने क्षिपेत् ।
पञ्जरे रक्षयेत् तावद् यावद् भाद्रपदं लभेत् ।
तदा स पञ्जरेऽदृश्यो जायते नात्र संशयः ।। २७ ।।

फाल्गुन मास में एक जीवित खंजन पक्षी लाकर पिंजरे में भादो मास पर्यन्त रक्षित करे। भादो मास आते ही वह पक्षी पिंजरे में से अदृश्य हो जाता है, यह निःसंदिग्ध है ।। २७ ।।

खञ्जरीटशिखा ग्राह्या हस्तस्थाऽदृश्यकारिणी ।
त्रिलौहवेष्टितां रक्षेद् धारयेन्मूर्ध्नि सर्वदा ॥ २८ ॥

खंजन पक्षी की शिखा को हाथ में रखने से व्यक्ति अदृश्य हो जाता है । इसे त्रिलोह में वेष्टित करके रखने से भी व्यक्ति सबके लिए अदृश्य हो जाता है ॥ २८ ॥

दश हेम द्विषट् ताम्रं रौप्यं षोडशभागकम् ।
एषा सङ्ख्या त्रिलोहस्य ज्ञातव्या सर्वकर्मणि ।
क्रमेण वेष्टयेद् यत्नाद् गुटिकानामयं विधिः ॥ २९ ॥

दस भाग सोना, बारह भाग ताँबा, सोलह भाग चाँदी को मिलाकर गलाने से त्रिलौह बनता है । इसकी गुटिका में यत्नपूर्वक सामग्री को भरना चाहिए । यही गुटिका बनाने की विधि है ॥ २९ ॥

'ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय नमो रुद्राय बिलि बिलि व्याघ्रचर्मपरिधान कमल कतुल चण्ड प्रचण्ड किलि किलि स्वाहा' ।

उक्तयोगानामयं मन्त्रः ।

ऊपर जितने भी प्रयोग हैं, उनके लिए 'ॐ नमो भगवते' से लेकर 'किलि स्वाहा' पर्यन्त यह मन्त्र है ।

अजमोदस्य मूलन्तु तुरगीगर्भशय्यया ।
सह तालकसम्पिष्टं तिलकेऽदृश्यकारकम् ॥ ३० ॥

घोड़ी का जरायु तथा यमानी की जड़ और हरिताल को एक साथ पीसकर इसका तिलक लगाने से अदृश्यकारक योग बन जाता है ॥ ३० ॥

रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां लाङ्गलीमूलमुद्धरेत् ।
श्वेतच्छागलिकागर्भशय्यया नरतैलकम् ।
एकीकृत्याञ्जयेन्नेत्रे अदृश्यः खेचरो भवेत् ॥ ३१ ॥

कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में लांगली (कलिहारी) की जड़ निकाले । उसे श्वेत वर्ण की बकरी के जरायु तथा नारियल के तैल में पीसकर अंजन बनाये । इसे नेत्रों में लगाने से साधक अदृश्य होकर शून्यमार्ग में विचरण करने में समर्थ हो जाता है ॥ ३१ ॥

'ॐ अः सखे अः सकर्णे अरिदुर्बल अर्द्धाकोश दाटा कराले चक्कारावे फेत्कारिणी हुं हुं चण्डालिनी स्वाहा' ।

उक्तयोगद्वये अयमेव मन्त्रः ॥ ३२ ॥

ॐ से लेकर स्वाहा पर्यन्त मन्त्र इन दोनों योगों के लिए कहा गया है ॥३२॥

अमावस्याऽथवा पूर्णा पञ्चमी वा त्रयोदशी ।
श्वेतपुष्पैर्गन्धधूपैर्बलिदीपोपहारकैः ।
रात्रौ पूजा ततो ग्राह्या देवदाली सुमन्त्रिता ॥ ३३ ॥

ॐ अमृतगणपरिवेष्टिते रुद्रगणाय ॐ नमः स्वाहा ।
अयं मन्त्रः । ॐ नमो भगवते रुद्राय फट् । अनेन ग्राह्या ॥ ३४ ॥

अमावस्या, पूर्णिमा, पंचमी अथवा त्रयोदशी की रात्रि में 'ॐ नमो भगवते रुद्राय फट्' मन्त्र का जप करते हुए देवदाली (देवदाली) की जड़ निकाले। अब श्वेत पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, बलि प्रभृति द्वारा 'ॐ अमृतगणपरिवेष्टिते रुद्रगणाय ॐ नमः स्वाहा' मन्त्र द्वारा उस जड़ का पूजन करे ॥ ३३-३४ ॥

तद्रसैः पारदं मद्यं दिनमेकं ततोऽञ्जयेत् ।
अदृश्यो जायते सत्यं स्वयं प्रोक्तं कपर्दिना ॥ ३५ ॥

तदनन्तर इस जड़ के रस में पारद तथा मद्य को २४ घण्टा घोटकर रखे। तत्पश्चात् इस मिले पदार्थ का आँखों में अंजन लगाये। लगाते समय 'ॐ नमो भगवते रुद्राय फट्' इस मन्त्र का उच्चारण करे। इससे साधक सबके लिए अदृश्य हो जाता है। ऐसा स्वयं महादेव ने कहा है ॥ ३५ ॥

तद्रसं देवदाल्युत्थं केतकीस्तन्यसंयुतम् ।
अञ्जयेन्नेत्रयुगलमन्तर्धानकरं परम् ॥ ३६ ॥

उपरोक्त प्रकार से देवयानी (देवदाली) का रस तैयार करके (उसमें पारद-मद्य न मिलाकर) केतकी वृक्ष का रस मिलाकर २४ घंटा रखे। तत्पश्चात् उसे नेत्र में उसी मन्त्र को जपते हुए लगाये। यह भी श्रेष्ठ अदृश्यकारक योग है ॥ ३६ ॥

रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां चतुर्भिः सह साधकैः ।
एकान्ते च श्मशाने वा खड्गहस्तैर्महाबलैः ।
अर्च्चयेत् कृष्णमार्जारं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ ३७ ॥

दिन में एक काले मार्जार को भूखा रखे। तदनन्तर ४ महाबली खड्गधारी साधकों के साथ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि की रात्रि में किसी जनशून्य स्थान अथवा श्मशान में इस मार्जार को ले जाकर उसकी गन्ध, पुष्प तथा अक्षत से अर्चना करे। (उसी कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन में मार्जार को भूखा रखे) ॥ ३७ ॥

कृष्णमजं बलिं दद्यात् तस्य मेदः समाहरेत् ।
उपोषिताय तस्मै हि मेदो देयन्तु भक्षणे ॥ ३८ ॥
तेन तृप्तं तु मार्जारं गृहीत्वा पश्चिमे पदे ।

चालनाद् वामयेद् भाण्डे जलपूर्णे यथार्च्चिते ।
तद्वान्तं पाचयेदग्नौ दीपं तेनैव दापयेत् ।। ३९ ।।

तत्पश्चात् एक काले बकरे की बलि देकर उसकी चर्बी को उस भूखे उपवासी मार्जार को खाने के लिए प्रस्तुत करे । इससे वह मार्जार परितृप्त हो जायेगा । तदनन्तर उस मार्जार के दोनों पिछले पैरों को पकड़कर उसे हवा में घुमाना चाहिए, ताकि वह एक विधिवत् अर्चित जलपूर्ण पात्र में उलटी करे । इस वमन पदार्थ को अग्नि में पकाकर उससे एक प्रदीप बनाये ।।३८-३९।।

वर्त्तिश्च शुभ्रतन्तूत्था ज्वालयेन्नृकपालके ।
तत्पात्रे कज्जलं ग्राह्यं रात्रौ देवीं प्रपूजयेत् ।। ४० ।।
परस्पराश्लिष्टकराश्चत्वारः खड्गपाणयः ।
दीपमावृत्य रक्षेयुः पञ्चमस्तु जपेत् सदा ।। ४१ ।।
महाकालीयमन्त्रेण पूर्वयोग उदाहृतः ।
तत्रत्यं कज्जलं यत्नात् पञ्चभिर्ग्राहयेत् समम् ।
अदृश्यकारकं राज्यप्रदो योग उदाहृतः ।। ४२ ।।

इस हेतु सूत से निर्मित बत्ती को उक्त पकाये गये वमन पदार्थ में भिगाकर मृत मनुष्य की खोपड़ी में दीपक जलाये । एक दूसरे नरमुण्ड को प्रदीप के ऊपर रखकर काजल जमाये । रात्रि में देवी की पूजा-अर्चना करे ।

तदनन्तर चारों खड्गधारी साधक परस्पर एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए उस प्रदीप के चारों ओर घेरा बाँधकर उसकी रक्षा करें और पाँचवाँ व्यक्ति (मुख्य साधक) महाकाल के मन्त्र का जप करता रहे । तत्पश्चात् जब काजल पड़ जाये तब पाँचों साधक इस काजल को ग्रहण करें । यह अदृश्यकारक तथा राज्यप्रद योग है ।। ४०-४२ ।।

शुनकस्याऽतिकृष्णस्य गले सूत्रं विबन्धयेत् ।

"ॐ नमः अकान्ति नृकटयतु कूटकटिमेन ।" अनेन मन्त्रेण कृष्णशुनकस्य दक्षिणाधोदंष्ट्रामूलस्थं मांसं ग्राह्यम् । पञ्चोपचारैः पूजयित्वा समाहरेत् ।

त्रिलौहवेष्टितं कृत्वा वक्त्रस्थोऽदृश्यकारकः ।। ४३ ।।

एक कृष्णवर्ण कुत्ते के गले में एक डोरा बाँधे । 'ॐ नमः अकान्ति नृकटयतु कूटकटिमेन' मन्त्र को पढ़ते हुए उस कुत्ते के निचले जबड़े के दाहिनी ओर के दाँत की जड़ का मांस निकाले । पंचोपचार अर्चना के पश्चात् इस मांस को त्रिलौह की गुटिका में भरकर मुख में धारण करे । यह योग अदृश्यकारक है ।। ४३ ।।

मयूरवानरास्थीनि पाचयेन्माहिषैर्घृतैः ।
पिष्ट्वा तदञ्जयेन्नेत्रे अदृश्यो जायते नरः ।। ४४ ।।

मयूर की अस्थि तथा वानर की अस्थि को भैंस के घृत में पकाकर उसको पीसकर अंजन तैयार करके लगाने से साधक अदृश्य हो जाता है ॥ ४४ ॥

उपवासत्रयं कृत्वा ततः पुष्ये निवापयेत् ।
नृकपाले यवान् कृष्णान् कृष्णमृत्स्नाऽथ पूरिते ॥ ४५ ॥
निशायां सेचयेन्नित्यं सुपक्वानाहरेन्निशि ।
तैर्बीजैस्तु कृता माला शिरःस्थाऽदृश्यकारिणी ॥ ४६ ॥

तीन दिन उपवास करके पुष्य नक्षत्र की रात्रि में काली मिट्टी से भरे नरकपाल में काला जौ बोना चाहिए । प्रतिदिन रात्रि में उसे जल द्वारा सींचना चाहिए । इसका पौधा जम जाने पर जब उसमें बीज पक जाये तब उन बीजों से माला बनाये । इस माला को धारण करते ही साधक अदृश्य हो जाता है । (उपवास ऐसे समय करना चाहिए जिससे वह पुष्य नक्षत्र की रात्रि में समाप्त हो ।) ॥ ४६ ॥

शरेण निहते मर्त्ये दग्धे तल्लौहमाहरेत् ।
काकोलूकस्य नीलस्य ग्राह्ये एतस्य लोचने ।
तल्लौहेनाञ्जयेच्चक्षुरदृश्यो भवति ध्रुवम् ॥ ४७ ॥

जो व्यक्ति लोहे के तीर से मरा हो, उसके जलाये जाने पर देह में धसें उस लोहे के तार को ले आना चाहिए । तदनन्तर पूर्ण काले कौए और उल्लू के दोनों नेत्रों को लाकर उन्हें पीसे । इस अंजन को उक्त लोहे के तीर से आँखों में लगाने साधक निश्चित रूप से अदृश्य हो जाता है ॥ ४७ ॥

भजेद् ऋतुमतीं कन्यां श्मशाने मैथुनेन तु ।
तच्छुक्रशोणितं ग्राह्यं शिलालकविमिश्रितम् ।
ललाटे तिलकं तेन कृत्वाऽदृश्यो भवेन्नरः ॥ ४८ ॥

श्मशान में ऋतुमती कन्या के साथ संभोग करने से जो शुक्रशोणित निकले, उसे मैनसिल तथा हरताल के साथ पीसकर उसका तिलक लगाने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है ॥ ४८ ॥

सम्प्राप्ते त्वष्टमे मासे यदि गर्भो पतेत् स्त्रियः ।
तस्य नेत्रञ्च कर्णञ्च जिह्वाहृन्मांसनासिकाम् ।
गुदमेढ्रमुपादाय सन्ध्यायां तत् प्रपेषयेत् ॥ ४९ ॥

जब किसी गर्भिणी स्त्री को आठ मास का गर्भपात हो जाये, तब उस गर्भच्युत सन्तान का नेत्र, कान, जिह्वा, वक्षःस्थल का मांस, नासिका, गुह्य तथा लिंग को निकाल कर उसको सन्ध्याकाल में पीसना चाहिए ॥ ४९ ॥

चन्द्रग्रहेऽथवा सूर्ये गुटिकामभिमन्त्रयेत् ।

महाकालीयमन्त्रेण यावन्मोक्षो भवेद् ग्रहः।
गुटिकां धारयेद्धस्ते ह्यदृश्यो जायते नरः ॥ ५० ॥

(उक्त पीसे पदार्थ को गुटिका में भरकर) चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण के समय जब तक ग्रहण का मोक्ष न हो जाये तब तक उस गुटिका को महाकाली के मन्त्र से अभिमन्त्रित करता रहे। इस गुटिका को हाथ में धारण करते ही साधक अदृश्य हो जाता है ॥ ५० ॥

नृकपाले तु या लग्ना क्षितिसम्भवमृत्तिका।
चाण्डालीस्तन्यसम्मिश्रा हस्तस्थाऽदृश्यकारिणी ॥ ५१ ॥

मनुष्य के मस्तक में जो पृथ्वी से उड़ती हुई मृत्तिका लगी है, उसे चाण्डाली के दुग्ध में मिलाकर हाथ में रखने से साधक अदृश्य हो जाता है ॥ ५१ ॥

वापयेत् तुलसीबीजं कर्मकारस्य मस्तके।
रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां जलेन परिषेचयेत् ॥ ५२ ॥

किसी मृत कर्मकार (मजदूरी पर काम करने वाला) की खोपड़ी में मिट्टी भरकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को तुलसी के बीज बोकर सींचना चाहिए ॥५२॥

तद्बीजाच्चैव कालेन तुलसी जायते यदा।
वटपत्रे बलिं दत्त्वा कुक्कुटं सप्तधान्यकम्।
समूलां तुलसीमञ्ज्याददृश्यो जायते नरः ॥ ५३ ॥

जब इस बीज से तुलसी का पौधा उग आये, तब वट के पत्ते पर कुक्कुट एवं सात धान की बलि देकर तुलसी के पौधे को जड़ सहित निकाल ले। इसका अंजन बनाकर लगाने से साधक अदृश्य हो जाता है ॥ ५३ ॥

कृष्णाषाढचतुर्दश्यां कृष्णधुस्तूरबीजकम्।
वापयेन्नरमुण्डे तु नासारन्ध्रे समांशके ॥ ५४ ॥
निखनेत् कृष्णभूम्यान्तु सोच्छिष्टे सेचयेत् सदा।
सङ्क्रान्तिदर्शपूर्णासु दीपं दद्याद् घृतेन च।
रक्तसूत्रोद्भवा वर्त्तिर्यावत् तस्य फलोदयः ॥ ५५ ॥

आषाढ़ मास की कृष्णचतुर्दशी को मरे हुए मनुष्य की खोपड़ी तथा उस खोपड़ी के नासिका के छिद्र में काले धतूरे के बीज को समान मात्रा में बोना चाहिए। बोने के पहले खोपड़ी एवं नासिकाछिद्र में काली मिट्टी भरकर तब उसमें बीज बोये। जूठे मुँह से (बिना मुँह धोये) इसमें सिंचाई करना चाहिए। जब तक बीज से पौधा न हो जाये और उसमें फल न लगे, तब तक प्रत्येक संक्रान्ति, अमावस्या तथा पूर्णिमा को लाल सूत्र से बनायी बत्ती द्वारा घी का दीपक जलाये ॥ ५५ ॥

कृष्णाष्टम्यां फलं ग्राह्यं बलिं दद्यात् तु कुक्कुटम् ।
तद्बीजैर्गुटिका कार्या मुखस्थाऽदृश्यकारिणी ॥ ५६ ॥

क्रमशः इसमें फल लग जाने पर कृष्ण पक्ष की अष्टमी को फल तोड़े और मुर्गे की बलि प्रदान करे। इस फल के बीजों की गुटिका बनाकर मुख में धारण करने से साधक अदृश्य हो जाता है ॥ ५६ ॥

कृष्णमृत्पूरिते क्षेत्रे वाप्या गुञ्जा नृमुण्डके ।
रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यामतिबल्युपहारकैः ।
नित्यं कुर्याद् बलिं पूजां जलैः सिञ्च्यात् सदा निशि ॥ ५७ ॥

काली मिट्टी वाले खेत में मनुष्य की खोपड़ी में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को रात्रि में घुमची बोये। प्रतिदिन नाना प्रकार की बलि तथा उपहार द्वारा पूजन करे। जब तक घुमची का पौधा बढ़कर फलित नहीं हो जाता तब तक पूजन एवं रात्रि में जलसिंचन करता रहे ॥ ५७ ॥

यावत् फलति सा गुञ्जा ततः कृष्णमजं बलिम् ।
कृत्वा योगीश्वरांश्चैव भोजयेद् बलिपूर्वकम् ॥ ५८ ॥

उसमें फल लग जाने पर काले बकरे की बलि देकर योगीश्वरों को भी उपहार तथा बलि-मांस देकर भोजन कराये।

तस्य चाष्टोत्तरशतं ग्राह्यं गुञ्जाफलं क्रमात् ।
सूच्या च प्रोतयेत् सूत्रैः सा मालाऽदृश्यकारिणी ।
धारयेन्मूर्ध्नि कर्णे वा तद्वृक्षो न हि दृश्यते ॥ ५९ ॥

तदनन्तर इस वृक्ष से क्रमशः १०८ घुमची के फल लेकर सूई-धागा द्वारा माला बनाये। यह माला अदृश्यकारिणी होती है। इसे मस्तक अथवा कर्ण में धारण करने से उस वृक्ष को कोई नहीं देख सकता ॥ ५९ ॥

सुकृष्णमहिषीक्षीरैः पाचयेत् कृष्णजीरकम् ।
तद्भक्षणाददृश्यः स्याद् यावद् जीर्णं न संशयः ॥ ६० ॥

घोर काली भैंस के दूध में काला जीरा पकाये। इसे खाने पर जब तक पेट का जीरा पच नहीं जाता तब तक वह व्यक्ति सबके लिए अदृश्य रहता है, यह निःसंदिग्ध है ॥ ६० ॥

हृदयं कृकलासस्य ग्राहयेद् विधिपूर्वकम् ।
गोरोचनासमं पिष्ट्वा तालपत्रेण वेष्टयेत् ।
समं वा गुटिका सा तु मुखस्थाऽदृश्यकारिणी ॥ ६१ ॥

'ॐ इलापिङ्गलाय स्वाहा'।

उक्त मन्त्र पढ़ते हुए गिरगिट के वक्षःस्थल का मांस निकाल कर उतना ही गोरोचन मिलाकर पीसे। अब तालवृक्ष के पत्ते में इसे लपेटे अथवा उसे गुटिका में भरे। इसे मन्त्र पढ़कर मुख में रखने से साधक अदृश्य हो जाता है ॥ ६१ ॥

कटुतुम्बी देवयानी पटोली चेन्द्रवारुणी।
तिक्ता कोषातकी तासां शुष्कबीजानि चूर्णयेत् ॥ ६२ ॥
काकतुण्ड्यपामार्गोत्थकषायेन विलोडयेत्।
आलिप्य कांस्यपात्रन्तु धारयेदातपे खरे ॥ ६३ ॥
तं तप्तं स्वच्छवस्त्रेण पीडयेत् तैलमाहरेत्।
तेन तैलेन सङ्घृष्टं देवदारुञ्च चन्दनम्।
तेन वै तिलकं कुर्याल्ललाटेऽदृश्यकारणम् ॥ ६४ ॥

कटुलौकी, देवयानी, पटोली, इन्द्रवारुणी, तिक्ता और कोषातकी के सूखे बीज का चूर्ण करना चाहिए। काकतुण्डी, अपामार्ग, कषाय को लेकर उसे मिलाये (पीसे)। अब कांसे के पात्र पर इसका लेप लगाकर उसे सूर्य की तीव्र धूप में रखे। तदनन्तर खूब गर्म हो जाने पर इस लेप को एक स्वच्छ कपड़े में रखकर खूब निचोड़ना चाहिए, जिससे तेल निकलने लगता है। इस तेल को चन्दन एवं देवदारु के साथ पीस कर तिलक लगाने से अदृश्यकारी योग बन जाता है ॥ ६२-६४ ॥

अपामार्गकषायेन पूर्णतैलं समाहरेत्।
विषमुष्ट्युत्थबीजानां चूर्णमाम्रातचूर्णकम्।
दशांशं चित्रकं पिंष्यात् नारिकेलाम्बुना सह ॥ ६५ ॥

अपामार्ग के काढ़े के साथ पूर्वकथित तैल मिलाये। उसमें बिच्छू नामक जड़ी के बीज का चूर्ण, आमड़ा की गुठली का चूर्ण तथा चितामूल को दशांश परिमाण में मिलाकर उसका मर्दन नारियल के जल के साथ करे ॥ ६५ ॥

एवंविधक्रियायोगात् पूर्वतैलं समाहरेत्।
विषमुष्ट्युत्थबीजानां सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ६६ ॥

इस प्रकार से करके इन सबको वस्त्र में रखकर उसे निचोड़ते हुए पूर्ववत् तैल निकाले। विषमुष्टि (कुचिला) के बीजों का प्रत्येक योग में प्रयोग करना चाहिए ॥ ६६ ॥

अङ्कोलतैलनिर्दग्धं रजनीकुङ्कुम निशि।
रोचना सहदेवी च समभागानि पेषयेत्।
विषमुष्ट्युत्थतैलेन तिलकोऽदृश्यकारकः ॥ ६७ ॥

तदनन्तर रात्रिकाल में अंकोलतैल द्वारा कुंकुम एवं दारुहल्दी को दग्ध करके उसके साथ गोरोचन तथा सहदेवी को समान मात्रा में एक साथ पीसना चाहिए। तत्पश्चात् इसके साथ विषमुष्टि (कुचिला) के तेल को मिलाकर तिलक करे। यह अदृश्यकारक योग है ॥ ६७ ॥

कार्पासबीजचूर्णानि दिनमेकं विभावयेत्।
समूलोत्तरवारुण्याः कषायेन प्रयत्नतः।
पूर्ववद् ग्राहयेत् तैलं सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ६८ ॥

कपास के बीज के चूर्ण की भावना एक दिन पर्यन्त जड़ सहित उखाड़ी गयी वारुणी के काढ़े में प्रयत्नपूर्वक देनी चाहिए। इससे पहले कही विधि के अनुसार तेल निकाल कर प्रत्येक योग में इसका प्रयोग करे ॥ ६८ ॥

अम्रातबीजचूर्णानि दशांशं चित्रमूलकम्।
नारिकेलाम्बुना पिष्ट्वा वर्त्ति कृत्वा प्रयत्नतः।
ज्वलितां धारयेद्धस्ते सोऽप्यदृश्यो भवेन्नरः ॥ ६९ ॥

आमड़ा की गुठली का चूर्ण, उसका दशांश चित्रामूल (चीता की जड़) को नारियल के जल में पीसकर उससे बत्ती बनाये। पूर्वकथित तैल में उस बत्ती को भिगाकर जलाये और हाथ पर रखे। इससे मनुष्य अदृश्य हो जाता है ॥ ६९ ॥

पुत्रजीवोत्थबीजानां तैलमाम्रातवद् भवेत्।
दृश्यन्ते चाञ्जिताः सर्वे गोमूत्रैः क्षालनात् पुनः ॥ ७० ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे अदृश्यकरणं
नाम ऊनविंशं पटलम्।

इसी प्रकार पूर्वकथित विधि द्वारा जीवितपुत्रिका के बीज से तैल निकाल कर उसको जलाने से बने कज्जल को नेत्र में लगाकर अदृश्य हो सकते हैं। पुनः गोमूत्र द्वारा नेत्रों को धो लेने पर साधक सबको दृष्टिगोचर होने लगते हैं ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के अदृश्यकरण
नामक उन्नीसवाँ पटल समाप्त।

विंशं पटलम्

अथ आकर्षणम्

आकारे मन्त्रयेत् पाशं क्रोंकारे चाङ्कुशं तथा ।
त्रिगुणं वामगं पाशं दक्षिणे ज्वलिताङ्कुशम् ।
धारयेत् स्वकरे मन्त्री ततो मन्त्रमिदं जपेत् ॥ १ ॥

अब आकर्षण-प्रकरण प्रारम्भ होता है । मन्त्रज्ञ साधक को चाहिए कि 'आं' मन्त्र द्वारा पाश एवं 'क्रों' मन्त्र द्वारा एक अंकुश को अभिमन्त्रित कर ले । अब बायें हाथ में त्रिगुणित आकार का (तीन फेरा चौड़ा) पाश एवं दाहिने हाथ में अंकुश प्रज्वलित अवस्था में ले और यह मन्त्र जपे ॥ १ ॥

"ॐ ह्लीं रक्तचामुण्डे तुरु तुरु अमुकीं आकर्षय ह्लीं स्वाहा" ।
अस्य मन्त्रस्य पूर्वमेवायुतजपे सिद्धिः ।

इसे दस हजार जपने पर सिद्धि मिलती है । जहाँ 'अमुकी' लिखा है, वहाँ स्त्री का नाम कहे ।

अथवा निजमन्त्रन्तु गुरुवक्त्राद् समागतम् ।
पूर्वमेवायुतं जप्त्वा तेनैवाकर्षणं भवेत् ॥ २ ॥

आकर्षण प्रक्रिया आरम्भ करने के पहले गुरु से प्राप्त अपना मन्त्र दस हजार जपे । इससे भी आकर्षण सिद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

ध्यात्वा साध्यञ्च मलिनमात्मानं देवतानिभम् ।
ध्यायेत् साध्यगले पाशं शिरोज्ज्वलितमङ्कुशम् ॥ ३ ॥

आकर्षण करने वाले को चाहिए कि जिसका आकर्षण करना है, उसे मलिन तथा स्वयं को इष्टदेवता के समान (समुज्ज्वल) माने । वह मन ही मन यह चिन्तन करे कि उस व्यक्ति के गले में पाश लगा है और उसके मस्तक के ऊपर ज्वलन्त अंकुश स्थापित है ॥ ३ ॥

त्रिसन्ध्यन्तु जपादेव दिनानामेकविंशतिः ।
ध्याने मन्त्रे तथा जाप्ये त्रैलोक्याकर्षणं भवेत् ॥ ४ ॥

२१ दिन तीनों सन्ध्याकालों में यह ध्यान एवं मन्त्र जप (साथ-साथ) करते रहने से त्रिभुवन का आकर्षण भी किया जा सकता है ॥ ४ ॥

रक्तवक्त्रे लिखेद् यन्त्रं लाक्षया रक्तचन्दनैः ।
पूज्यं तद्धि तरोर्मूले निखनेद् धरणीतले ॥ ५ ॥

किसी स्त्री का आकर्षण करने के लिए प्रथमतः लाक्षा के रस तथा रक्तचन्दन को मिलाकर उससे एक रक्तवर्ण वस्त्र पर आकर्षण यन्त्र अंकित करके वृक्ष के नीचे यन्त्रदेवता की पूजा-अर्चना करे। तदनन्तर उसे पृथ्वी में गाड़ दे ॥ ५ ॥

त्रिसप्ताहं सदा सिञ्चेत् प्रातस्तत् तण्डुलोदकैः ।
दूरादाकर्षयेन्नारीं यदि सा निगडान्विता ॥ ६ ॥

२१ दिन तक प्रतिदिन प्रातःकाल तण्डुलोदक द्वारा उसका सिंचन करता रहे। इस प्रक्रिया द्वारा श्रृंखला में बँधी दूरदेशस्थ स्त्री भी आकर्षित हो जाती है ॥ ६ ॥

पूर्वोक्तैरौषधैर्यन्त्रं रक्तवस्त्रे लिखेत् सदा ।
वेष्टयेद् रक्तसूत्रेण जपेद् ध्यायेच्च पूर्ववत् ॥ ७ ॥

पूर्वकथित लाक्षारस तथा रक्तचन्दन द्वारा आकर्षण यन्त्र को लाल कपड़े पर ही लिखना चाहिए। उसे लाल धागे से लपेटना चाहिए और उसका जप-ध्यान भी पूर्ववत् करते रहना चाहिए ॥ ७ ॥

तद् यन्त्रं पूजयेन्मन्त्री गुरूपदेशतो यथा ।
बद्धमाकर्षयेद् यस्तु निगडैः परिपीडितम् ॥ ८ ॥

जो व्यक्ति गुरु द्वारा उपदिष्ट विधि से यन्त्र का पूजन करते हैं, वे बेड़ी से बद्ध व्यक्ति का भी आकर्षण कर सकने में समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

पूर्वोक्तैरोषधैर्यन्त्रं पूजयित्वा तथा क्षिपेत् ।
नागवल्लीदले यत्नाज्जपेद् ध्यायेच्च पूर्ववत् ।
त्रिसप्ताहे दिने प्राप्ते सम्यगाकर्षणं भवेत् ॥ ९ ॥

पूर्वोक्त लाक्षारस तथा रक्तचन्दन द्वारा यन्त्र अंकित करके पूजा करे। पान के पत्ते पर यन्त्र को यत्नपूर्वक स्थापित करे। पूर्वकथित विधि से ध्यान करे। इससे २१ दिन के अन्दर सम्यक् रूप से आकर्षण हो जाता है ॥ ९ ॥

पूर्वोक्तैरौषधैर्यन्त्रं पूजयेन्मन्त्रसंयुतम् ।
वेष्टयेत् पद्मसूत्रैस्तु निक्षिपेत् कलशान्तरे ॥ १० ॥

पूर्वकथित विधि से लाक्षारस एवं रक्तचन्दन द्वारा रक्तवस्त्र पर यन्त्र अंकित करके मन्त्र द्वारा पूजन करना चाहिए। तदनन्तर पद्मसूत्र द्वारा उसे लपेट कर एक कलश में रख देना चाहिए ॥ १० ॥

तत्रैव पूजयेन्नित्यं मासादाकर्षणं भवेत् ।
पूर्ववद्ध्यानमन्त्रेण शम्भुदेवेन भाषितम् ॥ ११ ॥

इस कलश में पूर्वोक्त ध्यान-विधि द्वारा १ मास पर्यन्त प्रतिदिन पूजन-

ध्यानादि करना चाहिए। इससे एक मास में आकर्षण प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यह शिव की उक्ति है ॥ ११ ॥

आश्लेषायां समादाय ह्यर्जुनस्याथ ब्रध्नकम् ।
अजामूत्रेण सम्पिष्य स्त्रीणां शिरसि निक्षिपेत् ।
पुरुषस्य पशूनाञ्च क्षिपेदाकर्षणं भवेत् ॥ १२ ॥

आश्लेषा नक्षत्र में अर्जुन की जड़ को लाकर उसे बकरी के मूत्र में पीसना चाहिए। इस पीसी गयी वस्तु को जिस स्त्री के शिर पर डाल दिया जाये, वह आकृष्ट हो जाती है। किसी पुरुष अथवा पशु पर फेंक देने पर भी यही प्रभाव होता है ॥ १२ ॥

जलौकानीलसर्पंश्च शोषयित्वा च चूर्णयेत् ।
जम्बीरकाष्ठैस्तच्चूर्णधूपादाकर्षणं भवेत् ॥ १३ ॥

जोंक तथा काले साँप को मारकर उसे सुखाकर उसका चूर्ण करे। तदनन्तर जम्बीरी नींबू की लकड़ी को जलाकर उस पर इस चूर्ण की धूप जलाये। यह धूप जिसके अंग का स्पर्श करती है, वह आकर्षित हो जाता है ॥ १३ ॥

साध्याया वामपादस्थां मृत्तिकामाहरेत् सुधीः ।
कृकलासस्य रक्तेन प्रतिमां कारयेत् ततः ॥ १४ ॥

साधक को चाहिए कि जिसे आकर्षित करना है उसके बायें पैर के नीचे की मृत्तिका लाकर गिरगिट के रक्त में मिलाकर उस नारी की प्रतिमा बनाये ॥ १४ ॥

साध्यानामाक्षरं तस्यास्तद्रक्तैर्विलिखेद् हृदि ।
निखनेन्मूत्रस्थाने च सदा तत्रैव मूत्रयेत् ॥ १५ ॥

तदनन्तर इस मूर्त्ति के हृदय पर उसी गिरगिट के रक्त से उस नारी का नाम लिखे, जिसकी प्रतिमा बनाई है। तत्पश्चात् वह स्वयं जहाँ पर मूत्र त्याग करता है, वहाँ उस मूर्त्ति को गाड़ दे और नित्य उसी स्थान पर मूत्र त्याग करे ॥ १५ ॥

आकर्षयेत् तु तां नारीं शतयोजनसंस्थिताम् ।
चतुर्लक्षमिते जप्ते घुंघुंतामन्त्रराजके ।
आकृष्टा च समायाति शम्भुदेवेन भाषितम् ॥ १६ ॥

इस प्रक्रिया से सैंकड़ों योजन दूर स्थित नारी भी आकर्षित हो जाती है। निम्नांकित घुं घुं ता आदि मन्त्र का चार लाख जप करने से नारी आकृष्ट होकर आ जाती है, ऐसा शंभुदेव का कथन है ॥ १६ ॥

मन्त्रः—"ॐ घुं घुं ता आकृष्टिकर्त्ता सृष्टिपुरी मे वशमानय ह्लीं ह्लीं ।

इति कामौ रतौ ग्राह्यौ भ्रमरौ यत्नतां बुधैः ।
भिन्नौ कृत्वा दहेत् तौ तु चितिकाष्ठस्तयोः पुनः ॥ १७ ॥
वस्त्रेण वेष्टयेद् भस्म पृथक् तत् पोट्टलीद्वयम् ।
तयोरेकमजाश्रृङ्गैर्दृढं बद्ध्वा परीक्षयेत् ॥ १८ ॥

विद्वान् साधक को चाहिए कि वह कामक्रीड़ा में लगे भ्रमर-भ्रमरी को यत्न से लाकर उन्हें पृथक् करे और उन्हें चिता की लकड़ी में अलग-अलग भस्म करके भिन्न-भिन्न वस्त्र में उन दोनों भस्मों को अलग-अलग बाँध कर रखे । अब एक पुटली को बकरी के सींग में बाँधकर उसे बकरे से दूर ही रखे ॥ १७-१८ ॥

यदा याति तु सा छागी तं पृथक् बन्धयेद् बुधः ।
तद्भस्म शिरसि न्यस्तं क्षणादाकर्षयेत् स्त्रियम् ॥ १९ ॥

यदि बकरी कामातुरा होकर बकरे के पास जाती है, तब उसे खींचकर अलग बाँध दे और भस्म की जो पोटली साधक के पास बची है, उसे आकर्षणीया नारी के मस्तक पर किसी प्रकार से छिड़क देना चाहिए ॥ १९ ॥

अपरं रक्षयेद्बस्ते यदि नायाति कामिनी ।
मेषीश्रृङ्गे पुनर्बद्धा त्यजेच्च पुनरेव तु ॥ २० ॥

यदि इससे भी नारी आकर्षित न हो, तब दूसरे हाथ में बची वह पोटली, जो बकरी के सींग में बाँधी थी, उसकी भस्म को उस स्त्री के मस्तक पर पुनः छिड़क दे ॥ २० ॥

मन्त्रः—"ॐकृष्णावर्त्ताय स्वाहा" । इमं मन्त्रं पूर्वमेवायुतं जप्त्वा सिद्धो भवेत्, तेन च भस्म अभिमन्त्रयेत् ।

"ॐ कृष्णावर्त्ताय स्वाहा" इस मन्त्र का दस हजार जप करके उसे सिद्ध कर लेना चाहिए । इसी मन्त्र से भस्म को भी अभिमन्त्रित करते हैं ।

"ह्लीं विलि विलि छिन्धि छिन्धि हन हन पच पच शोषय शोषय सर्वविद्याधिपतये नमः । अनेन मन्त्रेण स्नुहीकीलकमष्टोत्तरशताभिमंत्रितं कृत्वा तथा प्रतिरोपयेत् यन्नाम्ना, तमाकर्षयति ।

मनसा (स्नुही) वृक्ष के काष्ठ की एक कील बनाकर "ह्लीं विलि विलि छिन्धि छिन्धि हन हन पच पच शोषय शोषय सर्वविद्याधिपतये नमः" मन्त्र से १०८ बार अभिमंत्रित करके जिसका नाम लेकर उसे भूमि में गाड़ कर रखा जायेगा, वह आकर्षित हो जायेगा ।

ॐ आं क्षां चादुं चादुं फट् ।

लक्षमेकं जपेदस्य पूर्वमेव समाहितः ।
दूरादाकर्षयेन्नारीं तत्रत्यां क्षोभयत्यपि ।। २१ ।।

समाहित होकर “ॐ आं क्षां चादुं चादुं फट्” मन्त्र का एक लाख जप करे। जिस नारी हेतु जप किया जायेगा, वह दूरस्थ होने पर भी आकर्षित होगी, वह वहाँ से विचलित हो जायेगी ।। २१ ।।

ॐ अलमृत्यु जय मे मे । अनेन मन्त्रेण कुम्भकारमृत्तिकया प्रतिमां कृत्वा मनुष्यास्थिकीलकेनाऽष्टोत्तरसहस्राभिमन्त्रितेन स्वहस्तेन निखनेत्। सा रुधिरं स्रवति । अथ प्रतिमाकृतिं त्रिकटुकेनालिप्य मधूच्छिष्टेन वेष्टयेत् । अस्या अङ्गं सूचिकयाविध्य ललाटे तस्या नामाक्षरमनामिकया रुधिरेण लिखेत्, प्रतिकृतिं खादिराङ्गारे स्थापयेत् । ततः पूर्वं मन्त्रं जपेत् यावत् तस्या अस्थिवत् लगति, तावदाकर्षणं भवति ।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे आकर्षणं
नाम विंशं पटलम् ।

“ॐ अलमृत्यु जय मे मे” इस मन्त्र को जपते हुए कुंभकार के यहाँ की मिट्टी से उसकी प्रतिमा बनाये, जिसका आकर्षण करना है। तदनन्तर मनुष्य की एक हड्डी की कील बनाकर उपरोक्त मन्त्र से १००८ बार अभिमंत्रित करे। इस कील को अपने हाथो से जमीन में गाड़ देना चाहिए। यह करने पर उस प्रतिमा से रक्त बहने लगेगा। अब सोंठ, पीपल तथा कालीमिर्च के चूर्ण का लेपन प्रतिमा पर करके उस पर मोम की एक पर्त चढ़ा देना चाहिए। तत्पश्चात् एक रुई से प्रतिमा के अंग में छेद करते हुए अपनी अनामिका के रक्त से प्रतिमा के ललाट पर उस रमणी का नाम लिखे। तदनन्तर खदिर लकड़ी की आग में इस प्रतिमा को रखे। तदनन्तर पूर्ववत् उसी मन्त्र का जप करना चाहिए। अब उस अस्थि को भूगर्भ से निकाल कर प्रतिमा के शरीर में धसा देना चाहिए। जब तक वह अस्थि प्रतिमा में लगी रहेगी, तब तक वह रमणी साधक के प्रति आकृष्ट रहेगी।

इस प्रकार श्रीसिद्धनागाजुन विरचित कक्षपुट में
आकर्षण नामक बीसवाँ पटल समाप्त ।

एकविंशं पटलम्

अथोच्चाटनम्

अथ त्वां सम्प्रवक्ष्यामि शत्रूणां दुष्टचेतसाम् ।
उच्चाटघातविस्फोटव्याध्युन्मादादिकारणम् ।
पशुशस्यार्थनाशञ्च प्रवक्ष्यामि समासतः ॥ १ ॥

अब दुष्ट प्रवृत्ति वाले शत्रुगणों के उच्चाटन की विधि कहता हूँ। घात, विस्फोटक, उच्चाटन, व्याधि तथा उन्माद के कारण एवं पशुनाश, खेती का नाश तथा अर्थनाश के उपाय का भी वर्णन संक्षेप में करता हूँ ॥ १ ॥

वेदशास्त्रागमाद्येषु ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ।
कथितं सर्वदा सर्वैर्दुष्टदण्डो विधीयते ॥ २ ॥

इसे वेदशास्त्र आदि आगमों में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर द्वारा कहा गया है। दुष्ट के दण्ड-विधान के लिए यह सभी के लिए विहित है ॥ २ ॥

येनाहृतं गृहं क्षेत्रं कलत्रं धनधान्यकम् ।
मानं वा खण्डितं येन तस्य दण्डो विधीयते ॥ ३ ॥

जो व्यक्ति गृह, भूमि, स्त्री, धन-धान्य का हरण करता है और मान-सम्मान को चूर्ण कर देता है, उसके दण्ड के लिए उपाय कहता हूँ ॥ ३ ॥

उड्डीशं यो न जानाति सन्तुष्टः किं करिष्यति ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दुष्टदण्डो विधीयताम् ।
यो न हन्त्यातिकोपेन सोऽतिशोकेन सिध्यति ॥ ४ ॥

जो व्यक्ति उड्डीशतन्त्र में कहे गये षट्कर्म को नहीं जानता, वह सन्तुष्ट होकर भी क्या करेगा ? अतएव समस्त प्रयत्न द्वारा दुष्टों को दण्ड देना कर्त्तव्य है। जिस व्यक्ति को अत्यन्त कोप द्वारा भी नष्ट नहीं किया जा सकता, उसका विनाश अत्यन्त शोक द्वारा सिद्ध हो जाता है ॥ ४ ॥

पञ्चाङ्गुलं चित्रकस्य मूलं ग्राह्यं पुनर्वसौ ।
सप्ताभिमन्त्रितं गेहे निखन्योच्चाटनं भवेत् ॥ ५ ॥

पुनर्वसु नक्षत्र में ५ अंगुल की चित्रक (चीता) वृक्ष की लकड़ी लाकर—"ॐ लोहितमुखी स्वाहा" मन्त्र से सात बार अभिमंत्रित करके जिसके घर में गाड़ दिया जाता है, उसका उच्चाटन होता है ॥ ५ ॥

स्वात्यामौदुम्बरं ब्रध्नं मन्त्रितं चतुरङ्गुलम् ।
तं यस्य निखनेद् गेहे तस्यैवोच्चाटनं भवेत् ॥ ६ ॥

ॐ गिलि स्वाहा ।

चार अंगुल नाप की गूलर की जड़ स्वाती नक्षत्र में 'ॐ गिलि स्वाहा' मन्त्र से ७ बार अभिमंत्रित करके जिसके घर में गाड़ दिया जाये, उसका उच्चाटन हो जाता है ॥ ६ ॥

भरण्यामङ्गुलीमात्रमुलूकास्थि च कीलकम् ।
सप्ताभिमन्त्रितं यस्य निखन्योच्चाटनं भवेत् ॥ ७ ॥

ॐ दह दह दल दल स्वाहा ।

भरणी नक्षत्र में एक अंगुल नाप की उल्लू की हड्डी से निर्मित कील को "ॐ दह दह दल दल स्वाहा" मन्त्र से ७ बार अभिमंत्रित करके जिसके घर में गाड़ देते हैं, उसका उच्चाटन हो जाता है ॥ ७ ॥

काकोलूकस्य पक्षन्तु हुत्वा ह्यष्टाधिकं शतम् ।
यन्नाम्ना मन्त्रयोगेन सर्वशोच्चाटनं भवेत् ॥ ८ ॥

'ॐ नमो भगवते रुद्राय दंष्ट्राकरालाय अमुकं सपुत्रपशुबान्धवैः सह हन हन दह दह पच पच शीघ्रमुच्चाटय हुं फट् स्वाहा ठः ठः' ।

कौआ और उल्लू के पंख से उक्त मंत्र का जप करते हुए १०८ बार आहुति देने से शत्रु का परिवार सहित उच्चाटन हो जाता है। आहुति के लिए कौआ और उल्लू का पंख १०८-१०८ लेना चाहिए। १ कौआ का पंख और १ उल्लू का पंख लेकर मन्त्र से एक साथ आहुति देनी चाहिए। मन्त्र में जहाँ 'अमुकं' अंकित है, वहाँ अमुकं के स्थान पर दुष्ट शत्रु का नाम जोड़ देना चाहिए ॥ ८ ॥

पारावतवसा ग्राह्या यस्य नाम्ना तु तां क्षिपेत् ।
गृहे तूच्चाटयेच्छीघ्रं कोपान्मन्त्रं समुच्चरेत् ॥ ९ ॥
नरास्थिकीलकं द्वारे निखन्याच्चतुरङ्गुलम् ।
मन्त्रयुक्तमरिद्वारे सत्यमुच्चाटनं भवेत् ॥ १० ॥

शत्रु का नाम लेकर कबूतर की चर्बी निकाले एवं उसके गृह में फेंक दे। फेंकते समय नीचे लिखे मन्त्र का प्रयोग अवश्य करे, इससे शत्रु का शीघ्र उच्चाटन हो जाता है। चार अंगुल नाप की मनुष्य की हड्डी की कील लेकर उसे नीचे लिखे मन्त्र के द्वारा अभिमंत्रित करके शत्रु के घर के दरवाजे पर गाड़ने से उसका उच्चाटन निश्चय ही हो जाता है ॥ ९-१० ॥

इन दोनों प्रयोगों का मन्त्र यह है—

'ॐ नमो भगवते रुद्राय अमुकं गृह्ण गृह्ण पच पच त्रासय त्रासय त्रोटय त्रोटय नाशय नाशय पशुपतिराज्ञापयति ठः ठः'।

मध्याह्ने लुण्ठते भूमौ गर्दभो यत्र धूलिकाम् ।
उदङ्मुख उदीच्यान्तु गृह्णीयाद् वामपाणिना ।
यद्गृहे क्षिप्यते धूलिस्तस्यैवोच्चाटनं भवेत् ॥ ११ ॥

मध्याह्न काल में गर्दभ जिस मिट्टी में लोट रहा हो उस स्थान के उत्तर दिशा की ओर मुख करके निम्नांकित मन्त्र को पढ़ते हुए वाम हस्त से धूलि उठाये। इसे मन्त्र पढ़ते हुए जिसके घर में फेंका जायेगा उसका उच्चाटन हो जाता है। मन्त्र १२वें श्लोक के साथ अंकित किया जा रहा है ॥ ११ ॥

काकस्य मस्तकं ग्राह्यं तिलतैलेन पाचयेत् ।
तत्तैलाभ्यङ्गमात्रेण शत्रोरुच्चाटनं भवेत् ॥ १२ ॥

'ॐ नमो भगवते रुद्राय ज्वालाग्निसंख्यादंष्ट्राद्रावणाय स्वाहा'।

कौए का मस्तक लाकर उपरोक्त मन्त्र का पाठ करते हुए उसे तिल के तेल में पकाये। इस तेल के मर्दन मात्र से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ॥१२॥

(यहाँ यह स्पष्ट किया जा रहा है कि तेल का मर्दन शत्रु करे।)

अश्वत्थकीलमश्विन्यां निखनेत् सप्तमन्त्रितम् ।
यस्य गेहे भवेत् सत्यं शीघ्रमुच्चाटकारकम् ॥ १३ ॥

'ॐ खं गुः खः खाखाविनी स्वाहा'।

अश्विनी नक्षत्र में पीपल की लकड़ी की कील बनाकर उक्त श्लोक में अंकित मन्त्र से अभिमन्त्रित करके जिसके गृह में गाड़ दिया जायेगा, उसका उच्चाटन शीघ्र ही हो जाता है ॥ १३ ॥

कृत्तिकायां सर्जकीलं निखनेत् सप्तमन्त्रितम् ।
यस्य गेहे च तं शत्रुं शीघ्रमुच्चाटयेद् गृहात् ॥ १४ ॥

'ॐ नमो भगवते द्रुत द्रुत स्वाहा'।

सर्ज नामक वृक्ष की लकड़ी से बनायी गयी कील को कृत्तिका नक्षत्र में लाये और उक्त मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करके जिसके घर में गाड़ दिया जाये, उसका शीघ्र उच्चाटन हो जाता है ॥ १४ ॥

निम्बकीलकमार्द्रायां निखनेत् सप्तमन्त्रितम् ।
यस्य गेहे च तं शत्रुं शीघ्रमुच्चाटयेद् गृहे ॥ १५ ॥

'ॐ नमो भगवति कायरूपिणि स्वाहा'।

आर्द्रा नक्षत्र में नीम की लकड़ी की कील को उक्त मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करके शत्रु के घर में गाड़ देना चाहिए। इससे शत्रु का शीघ्र उच्चाटन हो जाता है ॥ १५ ॥

शिवालयाद् भौमवारे आदाय चतुरिष्टिकाम् ।
प्रत्येकं प्रतिकोणे तु निखनेच्छत्रुमन्दिरे ॥ १६ ॥
निखनेत् तद्गृहद्वारि अधः पुष्पं सचन्दनम् ।
सप्तरात्रे न सन्देहो महदुच्चाटनं भवेत् ॥ १७ ॥

'ॐ भगवते उड्डामरेश्वराय वायुरूपाय चुनु चुनु ठः ठः' ।

मंगलवार को किसी शिवमन्दिर से ४ ईंट लायें। उसे उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके शत्रु के घर के चारों कोनों पर एक-एक ईंट को गाड़े।

उस शत्रु के द्वार पर चन्दन सहित शिव की पूजा में प्रयुक्त पुष्प गाड़ दे। उक्त मन्त्र का गाड़ते समय प्रयोग करें। ७ रात में उस शत्रु का महान् उच्चाटन होगा। यह निःसंदिग्ध है ॥ १७ ॥

गुञ्जामूलं गृहद्वारे निखन्योच्चाटनं भवेत् ।
अथवा मूलनक्षत्रे न्यस्तं खादिरब्रध्नकम् ॥ १८ ॥

घुमची की जड़ जिसके द्वार पर गाड़ते हैं, उसका उच्चाटन हो जाता है। अथवा मूल नक्षत्र में खदिर की जड़ को शत्रु के घर के द्वार पर गाड़ने से वही फल प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

धात्रीफलस्य चूर्णन्तु ह्यङ्कुलीतैलभावितम् ।
उच्चाटितो भवेन्मूर्ध्नि स्नानाद् गोक्षीरतः सुखी ॥ १९ ॥

आँवला के चूर्ण को अंकोल के तैल में भावना देनी चाहिए। इसका शत्रु के सिर पर लेपन करने से उसका उच्चाटन होता है। पुनः गोदुग्ध से स्नान करने पर यह दुष्फल समाप्त हो जाता है ॥ १९ ॥

ब्रह्मदण्डी चिताभस्म बिडालस्यास्थि वाऽहरेत् ।
समं शूकरमांसञ्च कच्छपस्य शिरस्तथा ॥ २० ॥
नृकपाले विनिक्षिप्य निखनेच्छत्रुमन्दिरे ।
सकुटुम्बं समूलञ्च सत्यमुच्चाटयेत् क्षणात् ॥ २१ ॥

ब्रह्मदण्डी, चिता की भस्म, बिड़ाल की अस्थि के साथ शूकर का मांस तथा कछुए का मस्तक चूर करके मनुष्य की खोपड़ी में रखे। तदनन्तर इस मस्तक को शत्रु के गृह में गाड़ दे। उसका उच्चाटन कुटुम्ब एवं बन्धुओं के साथ अत्यन्त शीघ्र होने लगता है ॥ २१ ॥

नरवाराहमांसञ्च गृध्रस्यास्थि विषं समम् ।

गोपादं महिषीपादं निखनेच्छत्रुमन्दिरे ।
किं वा ह्युलूकपक्षाणि महदुच्चाटनं भवेत् ॥ २२ ॥

नरमांस, वाराहमांस, गृध्र पक्षी की हड्डी तथा विष समान मात्रा में, गाय का पैर तथा भैंस का पैर इन सबको शत्रु के गृह में गाड़ देने से महान् उच्चाटन होता है। केवल उल्लू के पंखों को गाड़ देने से भी यही फल मिलता है ॥ २२ ॥

ब्रह्मदण्डी चिताभस्म चित्रकं रुधिरं विषम् ।
शूकरस्य तु रोमाणि बीजतिक्तं सनिम्बकम् ।
सप्ताहं शत्रुनाम्ना तु हुत्वा चोच्चाटनं भवेत् ॥ २३ ॥

ब्रह्मदण्डी, चिताभस्म, चित्रक वृक्ष की जड़, रक्त, विष, वाराह के रोयें, कड़वी लौकी तथा नीम के बीज को मिलाकर रखे। निम्न मन्त्र को जपते हुए शत्रु का नाम लेकर इन मिली वस्तु से ७ दिनों तक नित्य हवन करने से शत्रु का चिरकाल के लिए उच्चाटन हो जाता है ॥ २३ ॥

श्लोक १८ से लेकर २३ तक में अंकित प्रयोगों के लिए यह मन्त्र कहा गया है—

'ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय उच्छादय उच्छादय उच्चाटय उच्चाटय हन हन ठः ठः'।

कृष्णपक्षे शनौ भौमे भरण्यार्द्राथ कृत्तिका ।
चितिकाष्ठाप्रमादाय कीलकं चतुरङ्गुलम् ।
वेष्टयेच्छवकेशैस्तु चाग्नेय्यां दिशि मन्त्रयेत् ॥ २४ ॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा सूर्यं दृष्ट्वाऽतिकोपतः ।
तं यस्य निखनेद् द्वारे शीघ्रमुच्चाटनं भवेत् ॥ २५ ॥
'ॐ ह्लीं यम यम उल्लूककराले विद्युज्जिह्वे अमुकमुच्चाटय हुं फट्'।

कृष्णपक्ष के जिस शनिवार अथवा मंगलवार को भरणी, आर्द्रा अथवा कृत्तिका नक्षत्र पड़े; उस दिन चिता की लकड़ी की ४ अंगुल की कील बनाकर उसे बिना जले शव के शिर के शिर के केशों से लपेट देना चाहिए और अग्निकोण की ओर मुख करके ऊपरलिखित 'ॐ ह्लीं' से लेकर 'हुं फट्' पर्यन्त मन्त्र का १०८ बार जप करना चाहिए। जप करने के अनन्तर क्रोधित चित्त से सूर्य की ओर देखते हुए शत्रु के गृह के द्वार पर गाड़ देने से उसका अतिशीघ्र उच्चाटन हो जाता है ॥ २५ ॥

छागरक्तं विषं राजीश्चिताङ्गारैः सहैकतः ।
नामग्रस्तं लिखेन्मन्त्रं काकपक्षेऽतिरोषतः ।
श्मशाने निखनेत् तच्च दशाहान्नाशयेद् रिपुम् ॥ २६ ॥

“ॐ ट्रीं देट्रां देट्रां तट्रां उच्चाटय ट्रां ठः ह्लीं रे द्रां द्रां द्रां तद्रां अमुकं उच्चाटय द्रां ठः” ।

बकरे का रक्त, विष, सफेद सरसों, चिता में जलता कोयला; इन सबको मिलाकर स्याही बनाना चाहिए । इस स्याही से कौआ के पंख पर क्रोधित होकर उक्त मन्त्र को लिखे । जहाँ ‘अमुकं’ शब्द है वहाँ अमुकं के स्थान पर शत्रु का नाम लिखे । अब इस पंख को श्मशान में गाड़ दे । १० दिन में शत्रु का उच्चाटन हो जायेगा ।। २६ ।।

उष्ट्रारूढं रिपुं ध्यात्वा हन्याद् दण्डेन मन्त्रतः ।
दक्षिणा दिक् त्रिसप्ताहं देशादुच्चाटयेद् रिपुम् ।। २७ ।।

‘ॐ ह्लीं यम यम उल्लूककराले विद्युज्जिह्वे अमुकमुच्चाटय हुं फट्’ ।

मन-ही-मन यह ध्यान करे कि शत्रु ऊँट पर बैठा हुआ है और ऐसा ध्यान करते हुए ऊपर अंकित मन्त्र को दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके पढ़ते हुए एक दण्ड से पृथ्वी को मारता रहे । ऐसा नित्य २१ दिन तक करते रहने से शत्रु देश त्याग करके चला जाता है । मन्त्र में ‘अमुकं’ के स्थान पर शत्रु का नाम लेना चाहिए ।। २७ ।।

काकपक्षं रवौ ग्राह्यं वेष्टयेदहिकञ्चुकैः ।
कुसुम्भसूत्रस्तद्बाह्ये वेष्टितव्यं ततः पुनः ।
निम्बपत्रे रिपोर्नाम लिखित्वा वेष्टयेच्च तम् ।। २८ ।।

रविवार को कौए का पंख लाये । उसे साँप के केचुल से बाँधकर पुनः कुसुम्भ के सूत्र से बाँधना होगा । तदनन्तर नीम के पत्ते पर शत्रु का नाम लिखकर इस पत्ते को उस पंख पर लपेट देना चाहिए ।। २८ ।।

तद्बहिश्चितिभस्मेन मृतवस्त्रेण वेष्टयेत् ।
तं यस्य निखनेद् द्वारे तस्यैवोच्चाटनं भवेत् ।। २९ ।।

अक इस पंख के बाहर चिताभस्म का लेपन करके मुर्दे के कफन के टुकड़े द्वारा इसे लपेट देना होगा । अब शत्रु के द्वार पर इसे गाड़ देने से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ।। २९ ।। (इस प्रयोग हेतु जो मन्त्र जपा जाता है अथवा जिसके साथ शत्रु का नाम लिखा जाता है, वह श्लोक ३० के साथ अंकित है ।)

अधःपुष्पीमुरामांसीचितिभस्मसमन्वितम् ।
कूर्ममुण्डञ्च पत्रस्थं निखनेच्छत्रुवेश्मनि ।
उच्चाटितो भवेच्छत्रुः सप्तरात्रान्न संशयः ।। ३० ।।

‘ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय उच्छादय उच्छादय विद्वेषय विद्वेषय हन हन हन ठः ठः’ ।

अधःपुष्पी (ब्रह्मदण्डी) नामक औषधि, मुरा, मांसी, चिताभस्म तथा कच्छप का मस्तक एक साथ एक पत्ते पर रखकर शत्रु के गृह में गाड़ देने से वह सात रात्रि में उच्चाटित हो जाता है। इसका मन्त्र 'ॐ नमो' से 'ठः ठः' तक ऊपर अंकित है ॥ ३० ॥

रवौ गृध्रालयो ग्राह्यः पुनः काकालयो रवौ।
चितिकाष्ठं रवौ पश्चात् सर्षपन्तु रवौ दहेत् ॥ ३१ ॥
ग्रामाद् बहिश्च तद्भस्म स्थापयेन्निक्षिपेद् रिपोः।
मूर्द्धन्युच्चाटितो गच्छेद् गोमयस्नानतः सुखी ॥ ३२ ॥

एक रविवार को गीध का घोंसला लाये, अगले रविवार को कौये का घोसला लाये। उसके अगले रविवार को चिता पर से लकड़ी उठा लाये और सरसों का संग्रह करे। इससे अगले रविवार को इन सबको एकत्रित करके जला दे।

इसके पश्चात् इस भस्म को ग्राम के बाहर स्थापित करे और शत्रु के शिर पर फेंक दे। इससे उसका उच्चाटन हो जायेगा, परन्तु गोबरमिश्रित जल से स्नान करते ही वह पुनः सुखी हो जायेगा ॥ ३१-३२ ॥

कृकलासं निहत्यादौ स्नापयेत् पूजयेत् पुनः।
श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य किञ्चिद् कुर्याच्च रोदनम् ॥ ३३ ॥

एक गिरगिट को मारकर उसे स्नान कराकर उसका पूजन करे। तदनन्तर उसे श्वेत वस्त्र से लपेट कर थोड़ी देर तक रुदन करना चाहिए ॥ ३३ ॥

ततः काकालयं ग्राह्यं चाण्डालानां गृहान्तिके।
श्मशानवह्निना चैव दहनीयौ चतुष्पथे ॥ ३४ ॥

तदनन्तर कौये का एक ऐसा घोसला लाये जो कि चाण्डाल के घर के निकट के वृक्ष पर लगा हो। अब उस गिरगिट को तथा इस घोसले को एक साथ एक चौराहे पर श्मशान की जलती लकड़ी से जलाये ॥ ३४ ॥

उच्चाटनं भवेत् तस्य स्त्रीपुत्रपशुबान्धवैः।
तद्भस्म वस्त्रसम्बद्धं क्षिपेद् यस्य गृहोपरि ॥ ३५ ॥

एक वस्त्र में इस भस्म को बाँध कर जिस शत्रु के गृह में फेंक देने से उसका स्त्री-पुत्र-पशु-बन्धु वर्ग के साथ उच्चाटन हो जाता है ॥ ३५ ॥

निम्बात् काकालयं दग्ध्वा ब्रह्मदण्डीञ्च भस्म तत्।
म्लेच्छचाण्डालविप्राणां त्रयाणां चितिभस्म च ॥ ३६ ॥
भूमधूच्छिष्टसंयुक्तं गुटिकां कारयेद् दृढाम्।
शत्रोः शिरसि नद्याश्च क्षिपेदुच्चाटयेद् रिपुम् ॥ ३७ ॥

'ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय दंष्ट्राकरालाय कपिलरूपाय अमुकं सपुत्रपशुबान्धवं हन हन दह दह मथ मथ शीघ्रमुच्चाटय हुं फट् ठः ठः'।

नीम के वृक्ष पर स्थित कौये के घोसले को लाकर उसके साथ ब्रह्मदण्डी नामक जड़ी को जलाकर भस्म करे। अब उस भस्म में म्लेच्छ, चाण्डाल तथा ब्राह्मण की चिताभस्म मिलाये।

इसमें भूमि से उत्पन्न मधुमक्खी के छत्ते की मोम को मिलाकर एक कड़ी गुटिका बनाये। इस गुटिका को शत्रु के सिर पर फेंककर नदी में फेंकने से शत्रु का उच्चाटन होता है॥ ३६-३७॥

(ऊपर ३१ से ३७ श्लोक तक में जो प्रयोग अंकित हैं उनका मन्त्र श्लोक ३७ के साथ 'ॐ नमो' से लेकर 'ठः ठः' पर्यन्त अंकित किया गया है।)

चतुर्दिङ्मृत्तिका ग्राह्या ग्रामस्य नगरस्य वा।
वृषभस्य मलैः सार्द्धं पञ्च पुत्तलिकाः क्रमात्॥ ३८॥
तां ग्रामस्य चतुर्दिक्षु ह्येकैकां निखनेत् पुनः।
पञ्चमीं ग्राममध्ये तु कुण्डे वा निखनेद् भुवि॥ ३९॥
हुनेदष्टसहस्रन्तु तत्रैव कनकानले।
तद्भस्ममुष्टिमादाय तस्मिन् ग्रामे विनिक्षिपेत्।
सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा ग्रामस्योच्चाटनं भवेत्॥ ४०॥

'ॐ नमो भगवते महाकालाय दह दह भञ्जय भञ्जय मोहय मोहय स्मर निग्रह ठः ठः हुं फट्'।

किसी नगर या ग्रामवासियों का उच्चाटन करने के लिए उस नगर-ग्राम के चारों कोनों की मिट्टी तथा उसका आधा वृषभ का गोबर मिलाकर ५ पुतलियाँ बनाये।

इनमें से ४ पुतलियाँ ग्राम के चारों कोनों पर गाड़ दे। पाँचवीं पुतली को भूगर्भ में गाड़े। अब जो पुतली (पाँचवीं) गाड़ी गई है, उसके ऊपर धतूरा की लकड़ी जलाये और ऊपर लिखे मन्त्र से १००८ आहुति दे। हवन के पश्चात् इस कुण्ड से एक चुटकी राख लेकर उसे इसी मन्त्र से ७ बार अभिमन्त्रित करके उस नगर-ग्राम में छिड़क दे। इससे उस गाँव का सामूहिक उच्चाटन होगा॥ ३८-४०॥

ब्रह्मदण्डीं चिताभस्म शिवलिङ्गेषु लेपयेत्।
गृद्ध्रास्थि च मनुष्यास्थि केशैश्चण्डालविप्रयोः।
सूत्रेण च दिशो बद्ध्वा देशस्योच्चाटनं भवेत्॥ ४१॥

'ॐ नमः कालरात्रि शूलहस्ते महिषवाहिनि रुद्रकालकृतशेखरे

आगच्छ आगच्छ भगवति अतुलवीर्ये सर्वकर्माणि मे वशं कुरु कुरु महेश्वर आज्ञापयति श्रीं श्रीं श्रीं स्वाहा'।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे उच्चाटनं
नाम एकविंशं पटलम्।

ब्रह्मदण्डी, चिताभस्म, गीध की हड्डी तथा मनुष्य की हड्डी को चूर करके शिवलिंग पर लेप करे। तदनन्तर मृत चाण्डाल तथा ब्राह्मण के बालों की डोर से उस क्षेत्र को चारों ओर से घेर दे। इससे उस समस्त क्षेत्र (देश) का उच्चाटन हो जाता है। इसके लिए मन्त्र ऊपर अंकित है। (यहाँ प्रतीत होता है कि हवन की प्रक्रिया इसमें अंकित नहीं है) ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के
उच्चाटन नामक इक्कीसवाँ पटल समाप्त।

द्वाविंशं पटलम्

अथ मारणम्

नरास्थिकीलं पुष्ये तु गृह्णीयाच्चतुरङ्गुलम् ।
निखनेद् तं गृहे यस्य भवेत् तस्य कुलक्षयः ॥ १ ॥

'ॐ वूं वूं भूं भूं वूं फट् स्वाहा' ।

अब मारण-प्रयोग का वर्णन किया जाता है। पुष्य नक्षत्र में मनुष्य की अस्थि की ४ अंगुल की कील लाये। उसे जिसके घर में मन्त्र पढ़ते हुए गाड़ दिया जायेगा, उसका कुलक्षय हो जाता है ॥ १ ॥

अश्वास्थिकीलमश्विन्यां निखनेच्चतुरङ्गुलम् ।
शत्रोर्गेहे निहन्त्याशु कुटुम्बं वैरिणां कुले ॥ २ ॥

'ॐ सुर सुरे स्वाहा' ।

चार अंगुल की एक घोड़े के अस्थि की कील अश्विनी नक्षत्र में लाकर शत्रु के घर में गाड़ देने से शत्रु के कुटुम्बी गण की मृत्यु होने लगती है। मन्त्र ऊपर अंकित है ॥ २ ॥

सर्पास्थ्न्याङ्गुलमात्रन्तु ह्याश्लेषायां रिपोर्गृहे ।
निखनेत् सप्तधा जप्तं मारयेद् रिपुसन्ततिम् ॥ ३ ॥

आश्लेषा नक्षत्र में एक अंगुल मात्र की सर्प की हड्डी को 'ॐ जय विजयति स्वाहा' मन्त्र का सात बार जप कर शत्रु के घर में गाड़ने से शत्रु की सन्तान मर जाती है ॥ ३ ॥

भूते काकालयो ग्राह्यस्तस्मिन्नग्नौ सचेतसः ।
अङ्गुल्यैकेन तद्भस्म शत्रुमूर्द्धनि निक्षिपेत् ।
म्रियते नात्र सन्देहो गृहे क्षिप्ते कुलक्षयः ॥ ४ ॥

'ॐ नमो भगवते रुद्राय मारय मारय नमः स्वाहा' ।

एकाग्र होकर चतुर्दशी तिथि को कौए का एक घोंसला लाये। उसे जलाकर उस भस्म को एक उंगली से शत्रु के मस्तक पर छिड़कने से उसकी मृत्यु हो जाती है, यह निःसंदिग्ध है। यदि यह भस्म उसके गृह में छिड़की जाये, तब वंश का नाश हो जाता है। मन्त्र ऊपर अंकित है ॥ ४ ॥

षड्बिन्दुवृश्चिकौ ग्राह्यौ विषं तद् वानरीफलम् ।

एतच्चूर्णं प्रदातव्यं शत्रुशय्यासनादिषु ।
जायते स्फोटकी तीव्रा दशाहान्मारणं ध्रुवम् ॥ ५ ॥

षड्बिन्दु कीड़ा तथा बिच्छू को लाये और विष तथा वानरीफल इन चारों को समान भाग में चूर्ण करके शत्रु के पलंग या आसन पर छिड़के । इससे शत्रु के शरीर पर तीव्रतर फोड़ा निकलेगा और वह १० दिनों में मृत हो जायेगा ॥ ५ ॥

मातुलुङ्गस्य बीजानि कीटं षड्बिन्दुसंज्ञकम् ।
कपिकच्छुररोमाणि हिङ्गु वैभीतकं फलम् ॥ ६ ॥
एतानि समचूर्णानि तथा मण्डलकारिका ।
पूर्ववत् प्रक्षिपेत् शत्रोर्मारणं भवति ध्रुवम् ॥ ७ ॥

मातुलुंग (बिजौरा नीबू) के बीज, षड्बिन्दु कीड़ा, किवाँच के रोम, हींग तथा बहेड़ा को समान भाग में लेकर इसका चूर्ण करे । इसे शत्रु की शय्या अथवा आसन पर छिड़के । यह योग गोलाकार स्फोटक (फोड़े) शत्रु की देह में उत्पन्न करके उसे मृत्यु प्राप्त करायेगा ॥ ६-७ ॥

तिलोत्पलं सकुमुदं समांशं रक्तचन्दनम् ।
कुष्ठकुक्कुटपित्तश्च लेपनेन सुखावहम् ॥ ८ ॥

उक्त शत्रु को ठीक करने के लिए कुमुद सहित तिल, कमल, रक्तचन्दन, कूठ तथा मुर्गे का पित्त समान मात्रा में लेकर पीसे । इसे मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करके देह में लगवाये, वह स्वस्थ हो जायेगा ॥ ८ ॥

स्वर्णकेशश्च सङ्ग्राह्यं तदास्ये शत्रुजं मलम् ।
क्षिप्त्वा तद् रक्तसूत्रेण वेष्टयित्वा ततः पुनः ॥ ९ ॥
भल्लातकफलैः सार्द्धं रुद्धा तन्मारयेद् रिपुम् ।
प्रक्षालयेच्छनैरद्भिस्तज्जीवास्तस्य जीवनम् ॥ १० ॥

स्वर्णकेश नामक पहाड़ी जन्तु को लाकर उसके मुख में शत्रु का मल रखकर उसके मुख को लाल धागे से बाँधकर एक 'भिलावा' फल के साथ उसे जमीन में गाड़ दे । इससे शत्रु मर जाता है । तदनन्तर इसे धीरे-धीरे जल से सींचे । यदि भिलावा के बीज से पौधा निकल आये, तब शत्रु की जीवन-रक्षा हो जाती है ॥ ९-१० ॥

स्नानभूमूत्रभूमृद्वा सर्पवक्त्रे विनिक्षिपेत् ।
वेष्टयेत् कृष्णसूत्रेण मार्गमध्ये ह्यधोमुखम् ।
निखनेन्म्रियते शत्रुस्तमुत्पाट्य सुखं भवेत् ॥ ११ ॥

शत्रु जहाँ स्नान करता हो अथवा मूत्र त्याग करता हो, वहाँ की मृत्तिका

एक सर्प के मुख में भरकर उस साँप के मुँह को काले धागे से बाँधकर सर्प को अधोमुखी स्थिति में जमीन में गाड़ दे। इससे शत्रु मृत्यु को प्राप्त होता है। शत्रु की मृत्यु के पूर्व इस गड़ी वस्तु को जमीन से निकाल देने पर वह पुनः सुखी हो जाता है ॥ ११ ॥

गर्दभस्यास्थि ह्यादाय शिरः कृष्णोरगस्य च।
निखनेद् यस्य तद्द्वारे मारणोच्चाटनं भवेत् ॥ १२ ॥

'ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय अमुकं मारय मारय'।

गधे की हड्डी तथा काले अजगर का सिर जिसके गृह के दरवाजे पर गाड़ दिया जाये, उसकी मृत्यु अथवा उच्चाटन हो जाता है ॥ १२ ॥

इन सभी प्रयोगों का मन्त्र (श्लोक ५ से १२ पर्यन्त) है—'ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय अमुकं मारय मारय'। 'अमुकं' के स्थान पर शत्रु का नाम लिखना चाहिए।

ग्राह्या कृष्णचतुर्दश्यां शाखा भूततरोः स्थिता।
मृतकस्य हृदिस्थस्य भूतकाष्ठैश्च तां दहेत्।
तदङ्गारैर्लिखेन्मन्त्रं तदा शत्रुर्मृतो भवेत् ॥ १३ ॥

'ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय अमुकं हर हर रक्ष रक्ष कालरूपेण स्वाहा'।

कृष्ण चतुर्दशी को भूत नामक वृक्ष की शाखा लाये। उसे चिता पर रखे किसी मुर्दे के वक्ष (छाती) पर रखकर उस लकड़ी को जलाये। तदनन्तर उस लकड़ी से प्राप्त जलते कोयले से उपरोक्त मन्त्र लिखे। 'अमुकं' के स्थान पर शत्रु का नाम लिखे। शत्रु की मृत्यु हो जाती है ॥ १३ ॥

वामदन्तं कुलीरस्य अधोभागस्थमाहरेत्।
शराग्रे तत्फलं कुर्याद् धनुश्च विजितेन्द्रियः ॥ १४ ॥
गवां शिरागुणं कृत्वा शत्रुं कुर्याच्च मृण्मयम्।
तं हन्यात् तेन बाणेन म्रियते तत्क्षणात् रिपुः ॥ १५ ॥

'ॐ नमो भगवते रुद्राय यमरूपिणे कालंसंशयावर्त्ते संहारशत्रुः अमुकं हन हन धुन धुन पाचय घातय हुं फट् ठः ठः'।

विजितेन्द्रिय साधक केकड़े के निचले जबड़े में बायीं ओर स्थित दाँत लाकर तीर के अगले भाग पर लगाये। गाय की शिराओं से धनुष की प्रत्यंचा बनाये। अब मिट्टी से शत्रु की एक प्रतिमा निर्मित करे। इस धनुष द्वारा शत्रु को उक्त बाण से बेंधना चाहिए। उसी क्षण शत्रु मर जायेगा। इसके लिए मन्त्र ऊपर अंकित है ॥ १५ ॥

गोधालाङ्गूलमूलञ्च क्रकलासशिरस्तथा ।
इन्द्रगोपं वंशशिखामस्थि मूत्रं गजस्य च ॥ १६ ॥
हालाहलं नृमूत्रञ्च समभागं सुपेषितम् ।
तेन स्पर्शनमात्रेण स्फोटकैर्म्रियते रिपुः ॥ १७ ॥

गोह की पूँछ का मूल भाग, गिरगिट का सिर, बरसात में निकलता वीरबहूटी कीड़ा, बाँस की शिखा, हाथी की हड्डी तथा उसका मूत्र और हलाहल विष को समान मात्रा में लेकर मनुष्य के मूत्र के साथ भली प्रकार पीसना चाहिए। इसे मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करे। इसके स्पर्श मात्र से शत्रु को फोड़ा हो जाता है और वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

ऊर्णनाभश्च षड्बिन्दुं समांशं कृष्णवृश्चिकम् ।
यस्याङ्गे निक्षिपेच्चूर्णं सप्ताहात् स्फोटकैर्मृतः ।
मयूरपिच्छनीलाजं पिष्ट्वा लेपे सुखावहः ॥ १८ ॥

मकड़ा, षड्बिन्दु कीड़ा और काले बिच्छू को समान मात्रा में लेकर चूर्ण करे। जिसके भी अंग में इसे छिड़का जायेगा वह ७ दिनों में फोड़े से मृत हो जाता है। यदि उसे ठीक करना हो तो मृत्यु के पूर्व मयूर की पूँछ और नील-कमल को पीसकर देह पर लेप करने से वह ठीक हो जायेगा ॥ १८ ॥

रिपुविष्ठां वृश्चिकञ्च खनित्वा भुवि निक्षिपेत् ।
आच्छाद्याच्छादनेनाथ तत्पृष्ठे मृत्तिकां क्षिपेत् ।
म्रियते मलरोधेन उद्धरेत् स सुखी भवेत् ॥ १९ ॥

एक पात्र में पृथ्वी में शत्रु के मल के साथ बिच्छू को गाड़ दे। इस स्थल को किसी वस्त्र से या अन्य प्रकार से ढक दे। पात्र मिट्टी से दबा रहना चाहिए। इससे शत्रु का मलरोध हो जाता है और वह मर जाता है। यदि शत्रु की रक्षा करनी हो तब उस पात्र को भूमि से निकाल देना चाहिए ॥१९॥

यो मृतो भरणीभौमे तद्भस्मादाय रक्षयेत् ।
रिपुविष्ठासमायुक्तं शरावसम्पुटोदरे ॥ २० ॥
मृतकेशैस्तदावेष्ट्यो शून्यागारेषु लम्बयेत् ।
यावच्छुष्यति तद्विष्ठा तावच्छत्रुर्मृतो भवेत् ॥ २१ ॥

जिस मंगलवार को भरणी नक्षत्र हो उस समय के मृत व्यक्ति के देह की भस्म सुरक्षित करे। उस भस्म के साथ शत्रु के मल को मिलाकर मृत्तिका-पात्र (कसोरे के सम्पुट) में पुटित करके रखे। इसे मृत व्यक्ति के केश से बाँध दे और जनशून्य एकान्त कमरे में टाँग दे। जब शत्रु का मल सूख जायेगा, तब शत्रु की मृत्यु हो जायेगी ॥ २१ ॥

मुण्डमादाय गोश्चैव तद्वक्त्रे सर्षपान् क्षिपेत् ।
मृदालिप्य पचेदग्नौ गृहीत्वा सर्षपांस्ततः ।
यस्याङ्गे प्रक्षिपेत् तांस्तु स्फोटकैर्म्रियते रिपुः ।। २२ ।।

गाय का सिर लाकर उसके मुख में सरसों फेंके । अब उस पर मिट्टी का लेप करके उसे अग्नि में तपाये (ताकि मुख में स्थित सरसों पक जायें । इन सरसों को निकलकर जिस शत्रु पर फेंका जायेगा, वह फोड़ा निकलने से मृत हो जायेगा ।। २२ ।।

श्लोक १६ से २२ तक वर्णित समस्त प्रयोगों के लिए यह मन्त्र है—

‘ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय अमुकं कालरूपेण ठः ठः ठः’ । ‘अमुकं’ के स्थान पर शत्रु का नाम लेना चाहिए ।

श्वेतापराजितामूलं कुष्ठं लवणकं विषम् ।
शशवाराहमायूरगोधानां पित्तकं तथा ।। २३ ।।
महानिम्बस्य पत्राणि समं सप्तदिनं हुनेत् ।
मारयेदद्भुतं शत्रुं यदि साक्षान्महासुरः ।। २४ ।।

‘ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय मम शत्रुं गृह्ण गृह्ण स्वाहा’ ।

सफेद अपराजिता की जड़, कूठ, सेंधानमक, विष, खरगोश, वाराह, मयूर तथा गोह का पित्त और कड़वे नीम के कुछ पत्ते इन सबको समान मात्रा में लेकर मिलायें । इनसे ऊपर लिखे मन्त्र द्वारा ७ दिन तक हवन करे । यदि शत्रु महा असुर के समान भी होगा, तो भी उसकी मृत्यु निश्चित है ।। २३-२४ ।।

स्थानभ्रष्टस्य लिङ्गस्य मूर्ध्नि पत्रं समालिखेत् ।
सपुष्पं छागरक्तेन चिताङ्गारविषेण च ।। २५ ।।
लिखित्वा रोषचित्तेन तच्छेषं लेपयेत् करौ ।
अश्वचर्मासने स्थित्वा ततो मन्त्रमिमं जपेत् ।। २६ ।।

‘ॐ नमो भगवते रक्तवर्णे चतुर्भुजे ऊर्ध्वकेशे विकृतानने कालरात्रि मानुषाणां वसारुधिरभोजने अमुकस्य प्राप्तकालस्य मृत्युप्रदे हुं फट् हन हन दह दह मांसं रुधिरं पिब पिब पच पच हुं फट्’ ।

अमुं मन्त्रं जपेद् रात्रौ रोषचित्तो रिपुं स्मरेत् ।
अर्धरात्रौ तु हस्ताभ्यां मार्जयेल्लिङ्गमस्तके ।। २७ ।।
भ्रष्टपत्रे मस्तकस्थे तत्क्षणात् म्रियते रिपुः ।
दृष्टप्रत्यय एवायं सिद्धयोग उदाहृतः ।। २८ ।।

कोई ऐसा शिवलिंग खोजना चाहिए जो अपने स्थान से उखड़ गया हो । उस लिंग के ऊपर पुष्प, बकरे का रक्त, चिता के अंगार तथा विष को पीस

कर मिलाने से बनी स्याही से बिल्वपत्र बनाये। यह कार्य क्रुद्धचित्त होकर करना चाहिए। बची हुई स्याही को अपनी हथेली पर लगा ले। घोड़े के चमड़े के आसन पर बैठकर ऊपर अंकित 'ॐ नमो' से 'हुं फट्' पर्यन्त मन्त्र का जप रात्रि में करे। जहाँ अमुकं लिखा है वहाँ शत्रु का नाम लगाये। उस समय क्रोधित चित्त से शत्रु का स्मरण करना चाहिए। जब आधी रात हो जाये तब स्याही से सने अपने हाथों द्वारा शिवलिंग के ऊपरी भाग को सहलाये। इस प्रकार से करने पर यदि शिवलिंग पर बनाया गया बिल्वपत्र पुँछ जाये, तब शत्रु की तत्काल मृत्यु होती है। यह प्रत्यक्ष फलप्रद सिद्धयोग है ॥ २५-२८ ॥

रक्ताश्वमारजं बाणं शुनोऽस्थिनिर्मितं धनुः।
मृतकेशैर्गुणं कुर्यात् सिन्दूरैः सप्त मण्डलान् ॥ २९ ॥
कुक्कुटं शत्रुनाम्ना तु सप्तमे मण्डले स्थिते।
प्रत्येकमण्डले पूज्यं धनुर्बाणश्च मन्त्रतः ॥ ३० ॥
क्रमात् षण्मण्डले प्राप्ते ततो हन्याच्च कुक्कुटम्।
मन्त्रेण म्रियते सोऽपि दूरस्थोऽपि रिपुः क्षणात् ॥ ३१ ॥

'ॐ हस्त्याथ पगुभ कुकुगुम कुखूकमलुगुरुममालूल गनां अवितानि मारमारुहीना तु सिन्धु वीरुचा नारसिंह वीर प्रचण्डकाण्ड काण्डकी शक्ति ले ले ले जिसिलावो तिसुजगुजि सुच्छु प्रयाति सुच्छाई'।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे मारणं
नाम द्वाविंशं पटलम्।

लाल करवीर के काठ से बाण, कुत्ते की हड्डी से धनुष, मृत व्यक्ति के बालों से धनुष की डोरी बनाकर धनुष गठित करे। अब सिन्दूर द्वारा पृथ्वी पर सात मण्डल अलग-अलग बनाये। सातवें मण्डल में शत्रु के नाम से एक मुर्गा रखे। अब प्रत्येक मण्डल में क्रमशः धनुष बाण रखते हुए ऊपर लिखे मन्त्र से उस धनुष-बाण का पूजन करे।

जब ६ मण्डलों की पूजा करते-करते सातवें मण्डल में पहुँचे, तब उस धनुष-बाण द्वारा (ऊपर लिखे मन्त्र को पढ़ते हुए) उस मुर्गे को बेंध देना चाहिए। इस प्रक्रिया से दूरस्थ शत्रु भी शीघ्र मर जाता है ॥ २९-३१ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के मारण
नामक बाईसवाँ पटल समाप्त।

त्रयोविंशं पटलम्

अथ कालवञ्चनम्

रोचनैः कुङ्कुमैर्लाक्षानामिकारक्तसंयुतैः ।
द्वादशारं लिखेत् पद्मं तद्बहिश्चैव तत्समम् ।
षोडशारं ततो बाह्ये मूलं बीजं ततो लिखेत् ॥ १ ॥
प्रथमस्य दले वर्षं मासांश्चैव बहिर्दले ।
दिवसाः षोडशारे तु साध्यनाम च कर्णिके ॥ २ ॥
पूजयेच्चक्रवत् तांस्तु तदन्ते तन्निरीक्षयेत् ॥ ३ ॥

मृत्यु का प्रतिरोध

गोरोचन, कुंकुम, लाक्षा तथा अनामिका उंगली के रक्त से स्याही बनाकर एक बारह दल का कमल बनाये। इसके बाहर पुनः एक बारह दल का कमल इसी स्याही से अंकित करे। इसके बाहर पुनः एक सोलह दल का कमल बनाये। इसके बीच मूल बीज लिखना चाहिए। पहले बारह दल में कमल वर्ष की संख्या, दूसरे में मास का नाम अंकित करे। षोडश दल में दिन अंकित करके उसकी कर्णिका में व्यक्ति का नाम लिखे। इस चक्राकार चित्र में मास, वर्ष आदि की अर्चना करे। पूजाकाल के अन्त में उसे एकटक देखे ॥ ३ ॥

यद्दले वाऽक्षरं लुप्तं तद्दिने म्रियते ध्रुवम् ।
वर्षमासं दिनस्यैतत् तस्य नाम्नः परस्य वा ॥ ४ ॥
यदा वर्णं न लुप्तं स्यात् तदा मृत्युर्न विद्यते ।
वर्षद्वादशपर्यन्तं कालं ज्ञेयं शिवोदितम् ॥ ५ ॥

दिन वाले जिस दल में साधक का नामाक्षर अथवा जिस व्यक्ति का नामाक्षर अंकित है, वह लुप्त प्रतीत हो तब वह उस व्यक्ति की मृत्यु का दिन होगा। यदि किसी दल का अक्षर लुप्त न हो, तब मरण नहीं होगा। इस प्रणाली से १२ वर्ष पर्यन्त मृत्यु घटित होगी अथवा नहीं होगी, यह विदित हो जाता है। यह महादेव की उक्ति ॥ ४-५ ॥

'ॐ धत्त कालपुरुषोत्तम संधा विश्वमूर्त्ते कालक्षयं अनन्तकालं प्रदर्शय प्रधानकालं दर्शय स्वाहा'।

अमुं मन्त्रं नित्यमष्टोत्तरसहस्रं जप्तव्यम्। पञ्चोपचारैः सप्तदिनपर्यन्तमनेनैव प्रपूजयेत्। प्रत्ययो भवति ॥ ६ ॥

ऊपर लिखे मन्त्र को प्रतिदिन १००८ बार जपना चाहिए ऐसा सात दिन

पंचोपचार पूजन के साथ करे, तब ऊपर अंकित द्वादश दल कमल वाले यन्त्र का प्रयोग करे। इससे मृत्युकाल का ज्ञान होता है ॥ ६ ॥

मार्गशीर्षे तु कृष्णायां पञ्चम्यां नीरजं शुभम् ।
भूर्जपत्रं समानीय लाक्षाकुङ्कुमरोचनैः ।
स्वकीयानामिकारक्तैर्लिखेद् विद्यां शिवोदिताम् ॥ ७ ॥

मार्गशीर्ष मास के कृष्णपक्ष की पंचमी को एक ऐसा सुन्दर भोजपत्र लाये जिस पर लाल रेखा न हो। उस पर लाक्षा, कुंकुम, गोरोचन तथा अनामिका के रक्त की स्याही से 'ॐ ह्लीं ह्लीं म्लें महापतये रक्ष रक्ष मृतामृतोद्भवे म्लें ह्लं ह्लीं विच्चे स्वाहा' रूपी महाविद्या के इस मन्त्र को अंकित करे ॥ ७ ॥

क्रमपूजां विधायासौ पश्चाद् विद्यां समर्च्चयेत् ।
शरावपुटमध्यस्थां जातीपुष्पैः सुवेष्टिताम् ।
शुभपीठे विधृत्याथ तां विद्यां पूजयेन्निशि ॥ ८ ॥

पहले यथाक्रम से पंचोपचार पूजन करके तदनन्तर विद्यादेवता का पूजन करने के पश्चात् दो कसोरे के बीच इस भोजपत्र को चमेली के फूलों से चारों ओर घेर कर रखे। इसके बाद किसी पवित्र पीठस्थान में (पूजास्थल में) इस सम्पुटित कसोरे को रखे और रात्रि में अर्चना करे ॥ ८ ॥

प्रातः कृत्वार्चनं भूयः कृत्वा पूज्या कुमारिका ।
साधकस्त्वेकचित्तेन पश्चाद् विद्यां विलोकयेत् ।
वर्णाधिक्ये भवेद् राज्यं मात्राधिक्ये च सम्पदः ॥ ९ ॥

प्रातः पुनः अर्चना तथा कुमारी पूजन करने के अनन्तर एकचित्त से मन्त्र को देखे, जो भोजपत्र पर लिखा है। यदि मन्त्र में एक भी वर्ण अधिक प्रतीत हो तब यह जानें कि राज्यप्राप्ति होगी। मात्रा अधिक प्रतीत होने पर सम्पत्ति-लाभ होगा ॥ ९ ॥

समत्वे सुखमारोग्यं हानिर्विन्दुविलोपनात् ।
मात्राहीने भवेद् व्याधिर्मरणं विन्दुनाशने ॥ १० ॥

अक्षरादि घटने बढ़ने की प्रतीति न होने का फल है सुख एवं आरोग्य। किसी बिन्दु का लोप प्रतीत होने का फल है हानि। मात्राहीनता से रोग तथा बिन्दुनाश प्रतीत होने का फल है मृत्यु ॥ १० ॥

मृत्युकाल का बोध कराने वाले अरिष्ट

उत्तराभिमुखस्थो यो यदि गच्छति दक्षिणम् ।
दिङ्मूढः स तदा ज्ञेयः सप्तमासान्न जीवति ॥ ११ ॥

यदि कोई उत्तराभिमुख होने पर उत्तर की ओर आते-जाते दक्षिण जाने

लगता है, तब वह दिक्मूढ़ व्यक्ति सात मास से अधिक जीवित नहीं रहता ॥ ११ ॥

शुद्धनिर्मलमादित्यविवरं यदि पश्यति ।
तद्वर्षान्ते क्षयं याति नान्यथा भैरवोदितम् ॥ १२ ॥

यदि कोई निर्मल सूर्यगोलक में छिद्र प्रतीत करता है, तब उसी वर्ष के अन्त में उसकी मृत्यु होती है । यह भैरव की उक्ति है, जो कभी अन्यथा नहीं होती ॥ १२ ॥

सितं कृष्णं हरिद्राभं समूलं भानुमण्डलम् ।
यः पश्यति सदासौ वै वर्षादर्धं न जीवति ॥ १३ ॥

जो सूर्यमण्डल को कभी काला, कभी सफेद, कभी हरित वर्ण, कभी समूल कहीं से आबद्ध देखता है, वह ६ मास से अधिक जीवित नहीं रहता ॥ १३ ॥

रविबिम्बे जले दृष्टे सम्पूर्णे न मृतिः क्वचित् ।
खण्डे दिक्षु क्रमान्मृत्युरेकद्वित्रिषु मासतः ।
मध्यच्छिद्रे दशाहेन तज्जले धूमसङ्कुले ॥ १४ ॥

जो व्यक्ति जल में सम्पूर्ण सूर्यबिम्ब देखता है, उसकी मृत्यु नहीं होती । यदि चारों ओर खण्ड-खण्ड देखता है अर्थात् एक भाग खण्ड देखने पर एक मास, दो खण्ड देखने पर दो मास, तीन खण्ड देखने पर तीन मास में मृत्यु हो जाती है । यदि सूर्यमण्डल के जलगत प्रतिबिम्ब को छिद्रयुक्त देखता है अथवा धूम्र युक्त देखता है, तब उसकी मृत्यु दस दिनों में होती है ॥ १४ ॥

अरुन्धतीं ध्रुवं सोमं छायायां वा महापथम् ।
यो न पश्यति निस्तेजो वर्षान्ते म्रियते ध्रुवम् ॥ १५ ॥

जो व्यक्ति अरुन्धती तारा, ध्रुवतारा, चन्द्रमा अथवा दीर्घ छायापथ को नहीं देखता, वह तेजोहीन होकर वर्षान्ति तक अवश्य मर जाता है ॥ १५ ॥

सच्छिद्रो दृश्यते चन्द्रस्तद्वद् वा दर्पणे रविः ।
दृश्यते निष्प्रभो वापि यस्यासौ म्रियतेऽब्दतः ॥ १६ ॥

जो दर्पण में चन्द्र या सूर्य को सच्छिद्र देखे या सूर्य को तेजहीन देखे, वह वर्षभर में मर जाता है ॥ १६ ॥

सम्पूर्णे वहते सूर्ये यस्य सोमो न दृश्यते ।
वर्षान्ते जायते मृत्युः कालज्ञानं शिवोदितम् ॥ १७ ॥

जिसकी सूर्यनाड़ी सदा प्रवाहित रहे परन्तु चन्द्रनाड़ी कदापि प्रवाहित न हो, वह वर्षान्त में मर जाता है; यह कालज्ञान शिव ने कहा है ॥ १७ ॥

यस्य वा स्नानमात्रेण हृदयं यदि शुष्यति ।
धूमो वा दर्शने यस्य सप्तमासान्तजीवनम् ॥ १८ ॥

जिसका स्नान मात्र से वक्षःस्थल शुष्क हो और नेत्रों के आगे धुँआ दिखलाई पड़े, उसकी आयु मात्र सात मास ही है ॥ १८ ॥

अग्रतः पृष्ठतो वापि यस्य स्यात् खण्डितं पदम् ।
कर्दमे पांशुपुञ्जे वा सप्तमासान्तजीवनम् ॥ १९ ॥

चलते समय जिसके पैर आगे या पीछे लड़खड़ायें अथवा जिसका पैर कीचड़ या धूल में फिसले, उसका जीवन सात माह ही है ॥ १९ ॥

कृष्णरक्तानि वस्त्राणि रक्तमाल्यानुलेपनम् ।
स्वप्ने वा लभतेऽकस्मात् षण्मासान्ते न जीवति ॥ २० ॥

जो कोई हठात् स्वप्न में काला, रक्तवर्ण वस्त्र, रक्तवर्ण माला अथवा अनुलेपन लगाये (स्वयं को देखे), वह ६ मास के अनन्तर जीवित ही नहीं बचता ॥ २० ॥

भक्तिः शीलं स्मृतिश्चैव बुद्धिर्बलमहैतुकम् ।
यस्यैतानि निवर्त्तन्ते षण्मासान्ते न जीवति ॥ २१ ॥

जिसकी भक्ति, शील, स्मृति, बुद्धि, बल अकारण ही निवृत्त हो जाये, वह ६ माह के पश्चात् जीवित नहीं बचता ॥ २१ ॥

राक्षसैर्भूतवेतालैः श्वानशूकरगर्दभैः ।
गृध्रैः काकैरुलूकैश्च महिषैर्वा क्रमेलकैः ।
स्वप्ने वेष्टितमात्मानं पश्येदब्दान्न जीवति ॥ २२ ॥

जो व्यक्ति स्वप्न में स्वयं को राक्षस, भूत, वेताल, कुत्ता, शूकर, गधा, गृद्ध, कौआ, भैंसा या ऊँट से घिरा, पकड़ा गया देखे; वह एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहता ॥ २२ ॥

आस्वोरस्कां यदा पश्येदात्मच्छायामथापि वा ।
सुकृष्णास्तारकाः पश्येत् षण्मासान्ते न जीवति ॥ २३ ॥

जो व्यक्ति अपनी छाया केवल वक्षःस्थल तक देखे, उसके ऊपर के अंगों की छाया न दीखे अथवा आकाश के तारे घोर कृष्णवर्ण प्रतीत हों, वह छः माह से अधिक जीवित नहीं रहता ॥ २३ ॥

निशि चापं दिवा चोल्काममेघे निशिदर्शनम् ।
यः पश्येन्म्रियते सोऽपि षण्मासाच्छङ्करोदितम् ॥ २४ ॥

भगवान् शंकर का कथन है कि जो रात्रि में इन्द्रधनुष और दिन में

उल्काओं का गिरना देखे और मेघहीन बादल में जिसे रात्रिभ्रम हो, वह ६ मास में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, ऐसा शिवजी ने कहा है ॥ २४ ॥

स्वप्ने देहं स्वकं स्थूलं तैलाक्तं वाथ पश्यति ।
भीतः क्रुद्धोऽथवा नित्यं मासादूर्ध्वं न जीवति ॥ २५ ॥

जो स्वप्न में अपनी देह को स्थूल देह तथा तैल से लिपटा देखता है अथवा स्वयं भयभीत एवं क्रुद्ध होता है, उसकी आयु मात्र एक मास शेष है ॥ २५ ॥

शङ्खावर्ते भ्रुवोर्मध्ये गुल्फयोर्मर्मसन्धिषु ।
स्यन्दनं यस्य नैवास्ति मासादूर्ध्वं न जीवति ॥ २६ ॥

ललाट, भौं के बीच, दोनों टखनों के जोड़ तथा मर्मस्थल में जिसे पसीना नहीं निकलता, वह एक मास से अधिक जीवित नहीं रहता ॥ २६ ॥

चक्षुषी स्रवतो नित्यं न शृणोत्यपि निश्चितम् ।
दीपगन्धं न जानाति पक्षादूर्ध्वं न जीवति ॥ २७ ॥

जिसको दोनों नेत्रों से निरन्तर जल निकले, जो दूसरे की बातें निश्चित रूप से न सुने, जो ऐसी गन्ध अनुभव न करे जो दीपक बुझने पर बुझी बत्ती से निकलती है, तब वह १५ दिनों से अधिक जीवित नहीं रहता ॥ २७ ॥

ओष्ठयोर्धूसरत्वञ्च शुष्कं वा तालुदेशकम् ।
स्कन्धौ च भग्नमायान्तौ षण्मासान्ते न जीवति । २८ ॥

जिसके ओठ धूसर वर्ण के हो जायें, तालू सूख जाये, दोनों कन्धे मानो टूट से गये हो (झुक गये हों), वह ६ माह से अधिक जीवित नहीं रहता ॥ २८ ॥

भुञ्जतो यस्य वा नित्यं यूका वा मक्षिकादयः ।
भजन्ते वाथ वैरस्यं षण्मासान्ते न जीवति ॥ २९ ॥

जिसके भोजन पर नित्य मक्खी आदि कीट बैठे अथवा जिसे भोजन से आक्रोश उत्पन्न होने लगे, वह ६ माह से अधिक जीवित नहीं रहता ॥ २९ ॥

कालज्ञानमिदं ज्ञात्वा तस्य कुर्वीत बन्धनम् ।
मन्त्राभ्यासं समारभ्य मन्त्रे तन्त्रे शिवोदितम् ॥ ३० ॥

मृत्यु का प्रतिरोध

इस प्रकार मृत्यु का कालज्ञान हो जाने पर उसका प्रतिरोध करना चाहिए । जैसा तन्त्र-मन्त्र शास्त्रों में महादेव ने उपदेश दिया है, उसका अनुशीलन करना चाहिए ॥ ३० ॥

वर्षाण्येकादश ब्रह्मा शरीरं व्याप्य तिष्ठति ।
यथा विष्णुस्तथा रुद्र एवमावर्त्तयेत् क्रमात् ॥ ३१ ॥

जन्म से ११ वर्ष की आयु तक ब्रह्मा, २२ तक विष्णु तथा ३३ वर्ष की आयु तक रुद्र शरीर में व्याप्त रहते हैं। ३३ वर्ष के पश्चात् पुनः यही क्रम आता है ॥ ३१ ॥

ब्रह्मकाले नाभिपद्मे विष्णुकाले हृदम्बुजे।
कण्ठान्ते रुद्रकाले तु ध्यात्वा कालस्य वञ्चनम् ॥ ३२ ॥

ब्रह्मा के काल में नाभिपद्म में, विष्णु के काल में हृदयकमल में, रुद्र के काल में कण्ठ में ध्यान करने से काल का प्रतिरोध होता है ॥ ३२ ॥

कालसङ्कर्षणीं विद्यां ज्योतीरूपां जपेत् ततः।
कालो विमुखतां याति लक्षजापे कृते सति ॥ ३३ ॥

तदनन्तर ज्योतिरूपा कालसंकर्षणी विद्या का जप करे। एक लाख जप से काल विमुख हो जाता है ॥ ३३ ॥

यह विद्या इस प्रकार है—

ॐ क्लीं प्रं क्ष्रौं ठौं ठां क्रौं सम्मोहिनि चण्डे कालसङ्कर्षण्यै नमः ॥ ३४ ॥

उक्तस्य पश्चिमाम्नाये प्रोक्तं कालस्य वञ्चनम्।
नाभितो ब्रह्मरन्ध्रान्ते सर्पाभां ज्योतिरूपिणीम्।
प्रोल्लसन्तीं जपेन्नित्यं मायां कालस्य वञ्चनम् ॥ ३५ ॥
'ह्रीं' इति माया ॥

पश्चिमाम्नाय में कहा गया है कि नाभि से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त स्थित सर्पसन्निभा ज्योतिरूपिणी दीप्तमती मायाबीज 'ह्रीं' का नित्य जप करने से कालवंचना होती है ॥ ३५ ॥

स्वकीयं ग्रसते योऽसौ चित्तं कालकुलाकुलम्।
ग्रासान्ते न स्मरेत् किञ्चित् कालस्तस्य करोति किम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे कालवञ्चनं
नाम त्रयोविंशं पटलम्।

जो कालकुल में आकुल अपने चित्त का ग्रास करने में समर्थ हैं और तदनन्तर चित्तवृत्ति रहित हो जाते हैं, काल उनका क्या करेगा? ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के
कालवञ्चन नामक तेईसवाँ पटल समाप्त।

चतुर्विंशं पटलम्

अथाज्ञातनिधानस्य ग्रहणम्

साधकस्य हितार्थाय शिखाबन्धो विधीयते ।
निधिग्रहणपूर्वन्तु सह सर्वैः सहायकैः ॥ १ ॥

'ॐ रक्ष रक्ष विच्चे स्वाहा' ।

अनेन सर्वसहायकानां शिखाबन्धनं कुर्यात् ।

अज्ञात निधि लेने की विधि

साधक के हित के लिए निधि ग्रहण करने के पहले समस्त सहायकों सहित अपना शिखाबन्धन 'ॐ रक्ष रक्ष विच्चे स्वाहा' मन्त्र से करे ॥ १ ॥

शाबरं धारयेद् रूपं मन्त्री सर्वार्थसिद्धये ।
गुणिनी या मृता नारी तत्केशैरुपवीतकम् ।
कृत्वा तु धारयेत् तस्या भस्मना धूनयेत् तनुम् ॥ २ ॥

सर्वार्थ सिद्धि के लिए साधक भील का रूप धारण करे । गुणवती साध्वी मृतक स्त्री के बाल का यज्ञोपवीत बनाये । उसके दाहसंस्कार के पश्चात् चिता-भस्म को अपने शरीर में लगाये ॥ २ ॥

नरमुण्डधरो नग्नः शिखिपिच्छैः सुभूषितः ।
इत्येवं रूपधृग्वीरः पूजां कुर्यात् निधिस्थले ॥ ३ ॥

तदनन्तर नग्न होकर नरमुण्ड धारण करे और मयूर के पंखों का भूषण धारण करे । इस शबर (भील) रूप को धारण करके निधिस्थल का पूजन करे ॥ ३ ॥

चतुरस्रं चतुर्द्वारं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम् ।
कृत्वैतन्मण्डलं मन्त्री कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ।
तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भं जलपूर्णं मनोरमम् ॥ ४ ॥

कुंकुम, अगरु तथा चन्दन के द्वारा चतुरस्र बनाये, जिसके मध्य में अष्टदल कमल एक सम चतुष्कोण मण्डल का निर्माण करे । मध्य में कुंकुम तथा अगरु चन्दन के साथ एक जलपूर्ण सुन्दर कलश स्थापित करे ॥ ४ ॥

तदनन्तर उस पद्म के अष्टदल में—

'ॐ सोमाय विश्वाधिपतये आगच्छ आगच्छ बलिं गृहाण मनो विश्वे स्वाहा' ॥ ५ ॥

मन्त्र से सोमादि ग्रह-देवताओं की पूजा के समापन के पश्चात् ब्राह्मी प्रभृति मातृगण की अर्चना करे। उसका मन्त्र है 'ॐ नमो ब्राह्मचै आगच्छ आगच्छ बलिं गृहाण'। तदनन्तर 'ॐ शक्र आगच्छ आगच्छ बलिं गृहाण' कहकर सभी दिक्पालों का अलग-अलग पूजन करे ॥ ५ ॥

नन्दिनश्च श्रियं पूर्वद्वारदेशे प्रपूजयेत्।
कीर्त्तिञ्चैव महाकालं दक्षिणे पश्चिमे पुनः।
सगणेशं कुमारश्च भृङ्गिदण्डिनमुत्तरे ॥ ६ ॥

तदनन्तर चतुरस्र के पूर्व द्वार पर नन्दी और श्री का पूजन करे। दक्षिण द्वार पर कीर्त्ति एवं महाकाल का, पश्चिम द्वार पर गणेश एवं कार्त्तिकेय का और उत्तर द्वार पर भृंगी एवं दण्डी का पूजन करे ॥ ६ ॥

इत्येवं पूजनं कृत्वा मन्त्रोच्चारणपूर्वकम्।
बलिं प्रदर्शयेन्मन्त्री सहायांश्चाभिषेचयेत् ॥ ७ ॥

ॐ बलिं सुबलिं तृप्यन्तु सिद्धिमादिशन्तु ॐ नमो विश्वे स्वाहा'।

साधक इस प्रकार पूजन करके उक्त बलिमन्त्र द्वारा सभी का पृथक्-पृथक् नामोच्चारण करते हुए बलि निवेदन करे और अपने सहायकों का अभिषेक भी करे ॥ ७ ॥

मण्डलं दर्शयेन्मन्त्री सहायाय समर्चितम्।
शिवकुम्भाम्भसा सर्वान् मन्त्रेणैवाऽभिषेचयेत् ॥ ८ ॥

सहायकों को यह चतुरस्र मण्डल दिखलाकर उस कलश-कुंभ के जल से 'ॐ नमो भगवते आर्भटे पिङ्गलोदराय पापं नाशय नाशय दुराचारं हन हन अभिषिक्तानां रक्ष रक्ष अभिषेकं पदम् उपधारय उपधारय कुरु समरभीषणे नमो विच्चे वौषट्'। इस मन्त्र द्वारा उनका अभिषेक करे ॥ ८ ॥

निधेः खननकाले तु जपंस्तिष्ठेदघोरकम्।
ध्यायेच्च शाबरं रूपं सर्वभूतभयापहम् ॥ ९ ॥
मयूरपक्षसंयुक्तं गुञ्जाजालेन भूषितम्।
दन्तुरोर्ध्वमतिश्यामं रक्तोत्पलनिभेक्षणम्।
किरातमीश्वरं ध्यात्वा सर्वभूतफलप्रदम् ॥ १० ॥

निधि को खोदना प्रारम्भ करने के पहले इस मन्त्र को १०००० जप कर सिद्ध करना चाहिए। इसके दशमांश की आहुति कपूर और घृत से देने पर मन्त्र सिद्ध होता है। निधि खोदते समय भी इस मन्त्र को मन-ही-मन जपता रहे। मन्त्र इस प्रकार से है—

'ॐ ह्रीं ह्रीं हूं अघोर तर तर प्रस्फुर प्रस्फुर प्रकट प्रकट धनेशाय

कह कह सम सम जात जात दह दह पातय पातय ॐ ह्लौं ह्लौं ह्लं अघोराय फट्' ।। ११ ।।

मन्त्र जपते समय सभी भूतसमूह को भय रहित करने वाले, मयूरपंखधारी, गुञ्जा की मालाओं से विभूषित, बड़े दाँतों वाले, उन्नत देह, अत्यन्त श्यामल वर्ण, लालकमल के समान रक्ताभ नेत्र युक्त, सभी प्राणियों को फल देने वाले किरात रूपी महादेव के इस शबर रूप का ध्यान करता रहे ।। ११ ।।

खन्यमाने निधौ सर्पा निःसरन्ति भयानकाः ।
औषधेन विना तेभ्यो भयं स्यान्मन्त्रिणामपि ।
तस्मादौषधयोगेन पादलेपेन तान् जयेत् ।। १२ ।।

उस स्थान पर खोदते समय भीषण सर्प-समूह निकलने लगते हैं । बिना औषधि प्रयोग किये इनसे भय हो सकता है । औषध को पैरों में लगाने से इनका भय दूर हो जाता है ।। १२ ।।

सर्पभय के विनाश का उपाय

अर्कस्य करवीरस्य पनसस्य च मूलिका ।
पिष्ट्वा पादप्रलेपात्-तु दूरे गच्छन्ति पन्नगाः ।। १३ ।।

मूलिका, मदार, करवीर तथा कटहल की जड़ को जल में पीसकर पैरों में लगाने से सर्पगण भाग जाते हैं ।। १३ ।।

मक्षिका गिरिकर्णी च श्वेतार्कं कण्टकारिका ।
वचा च मूलिकां चैषां पिष्ट्वा पादं प्रलेपयेत् ।। १४ ।।

मल्लिका, अपराजिता, श्वेतमदार, कण्टकारि, वच एवं मूलिका की जड़ों को पीसकर पैरों में लगाये ।। १४ ।।

सर्पा यक्षगणाः क्रूरा ये चान्ये विघ्नकारिणः ।
पलायन्ते निधिं त्यक्त्वा यथा युद्धेषु कातराः ।। १५ ।।

इसे देखकर सर्प, यक्षगण, क्रूर जन्तु तथा अन्यान्य विघ्न करने वाले खजाने को त्याग कर ऐसे भागते हैं, जैसे युद्ध से कायर भाग जाते हैं ।। १५ ।।

वह्निकोषातकी वज्री श्वेतार्कं गिरिकर्णिका ।
वचा पाठा च निर्गुण्डी कटुतुम्ब्याश्च मूलकम् ।। १६ ।।
निम्बकेशरबीजानि गोमूत्रैः पेषयेत् शनैः ।
अनेन पादलेपेन विघ्ना यान्ति दिशो दश ।। १७ ।।

चिता, कोषातकी नामक पौधा, वज्री, सफेद मदार, श्वेत अपराजिता, वच, पाठा, निर्गुण्डी, तितलौकी की जड़ को नीम एवं नागकेशर के बीज में

गोमूत्र के साथ धीरे-धीरे पीसना चाहिए। इसका पैर में लेपन करने से विघ्न-गण दशों दिशाओं में भाग जाते हैं ।। १६-१७ ।।

एतन्नाराचयोगेन याति पातालगं धनम् ।
गृह्णाति नात्र सन्देहः स्वयमुक्तं कपर्दिना ।। १८ ।।

इसे नाराच योग कहा गया है। इसके प्रभाव से पातालगत धन भी साधक को निःसंदिग्ध रूप से मिल जाता है, ऐसा स्वयं महादेव ने कहा है ।। १८ ।।

कूष्माण्डैरण्डधुस्तूरबीजानि पनसस्य च ।
तालदाडिममूलानि गोमूत्रैः पेषयेत् समम् ।। १९ ।।
अनेन पादलेपेन सर्पा यक्षाः पिशाचकाः ।
पलायन्ते न सन्देहो निधीन् सङ्ग्राहयेद् ध्रुवम् ।। २० ।।

कोहड़ा, रेंड़ तथा कटहल के बीज, ताड़ एवं अनार की जड़ को समान मात्रा में गोमूत्र में पीसकर पैर में लेप करने से सर्प, यक्ष, पिशाच आदि निःसंदिग्ध रूप से भाग जाते हैं। तब साधक निर्विघ्न होकर निधि का संग्रह निश्चित रूप से कर सकता है ।। १९-२० ।।

अथ दृष्टे निधिं मन्त्रकीलकैस्तन्तु कीलयेत् ।
प्लक्षपलाशलोध्रोत्थैः कदम्बनिम्बजैः सुधीः ।
शम्युडुम्बरकाश्वत्थकीलकैः पञ्चसंयुतैः ।। २१ ।।

निधिस्थल देखकर साधक उस निधि को मन्त्र युक्त कीलक के द्वारा कीलित करे। पाकड़, पलाश, लोध, कदम्ब, नीम, शमी, यज्ञोडुम्बर तथा पीपल की १२-१२ अंगुल लकड़ी लाकर उसे फल-मूल-पत्र-शाखा-त्वक् युक्त करे। अब निम्नांकित मन्त्र से उन १२ लकड़ियों को अभिमन्त्रित करे ।।२१।।

ॐ पुनन्तु मां देवगणाः पुनन्तु गणकाधिपाः ।
पुनन्तु विश्वेदेवाश्च जातवेदाः पुनीहि माम् ।। २२ ।।

देवगण मुझे पवित्र करें, गणाधिपगण मुझे पवित्र करें एवं अग्नि मुझे पवित्र करे। इसके पश्चात् उन आठों लकड़ियों को खजाने की आठों दिशाओं में एक-एक गाड़ दे ।। २२ ।।

अब 'ॐ सर्वभूताधिपतये नमः' मन्त्र द्वारा मधु-मांस की भूतबलि प्रदान करे। तदनन्तर 'ॐ ह्रीं फट्' मन्त्र द्वारा निधिस्थल पर पुष्प चढ़ाये।

'ॐ नमो भगवते केतुमालिने गरुडे शुभे ॐ ह्रीं कपालिनि उद्धारय गृहाण निधिं स्वाहा' ।। २३ ।।

इस मन्त्र द्वारा गड़े खजाने से निधि बाहर लाये ।। २३ ।।

निधि के विभिन्न भेद

चत्वारो निधयस्तत्र शम्भुदेवेन कीर्त्तिताः ।
कच्छपो मकरः शङ्खः पद्म इत्यभिधानतः ॥ २४ ॥
कच्छपो मकरश्चैतौ स्थिरचित्तौ स्वभावतः ।
सुखसाध्यौ यथापूर्वं विधानेन समाहरेत् ॥ २५ ॥

महादेव के अनुसार कच्छप, मकर, शंख तथा पद्म नामक चार प्रकार की निधियाँ होती हैं। कच्छप तथा मकर नामक निधियाँ स्वभावतः स्थिर एवं अचंचल हैं। पूर्वकथित उपाय से इन स्थिर अचंचल निधि को निकाले ॥२४-२५॥

चंचल एवं अस्थिर निधि हेतु उपाय

शब्देन तु मनुष्याणां शङ्खपद्मौ रसातलम् ।
गच्छन्तौ न तु दृश्येते तत्र मन्त्रद्वयं स्मरेत् ।
शैवञ्च वैष्णवञ्चैव ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ २६-२७ ॥

शंख तथा पद्म नामक निधियाँ मनुष्य का शब्द सुनते ही रसातल में चली जाती है। वे दृष्टिगोचर नहीं होतीं। अतः 'ॐ नमो भगवते रुद्राय निधिमुत्तिष्ठ मा चलं स्वाहा'। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय धर धर वन्ध श्रीपर्वतकुलपर्वते वसुनिधिं साधय स्वाहा'। इन दो शैव एवं वैष्णव मन्त्र का स्मरण करे। इससे दोनों निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ २६-२७ ॥

(यहाँ मन्त्र की संख्या श्लोक २७ के रूप में मूलग्रन्थ में अंकित है।)

निधि का शुद्धीकरण

मृत्काष्ठलोहभाण्डेषु स्थितं दृश्यन्तु मृत्तिकाम् ।
शैवालं वा समाश्रित्य तिष्ठेत् तच्च विशोधयेत् ॥ २८ ॥

मिट्टी के बर्त्तन, काठ के बर्त्तन तथा लोहे के बर्त्तन में रखकर गाड़ी गयी निधि में शैवाल लगा होता है। अतः उसे शोधित करे ॥ २८ ॥

बालुकैर्लवणं पिष्ट्वा तस्मिन् द्रव्ये विनिक्षिपेत् ।
यावल्लवणसंशोषैः पाचयेन्मृदु वह्निना ॥ २९ ॥
स्वर्णञ्च सर्वरत्नानि निर्मलानि भवन्ति वै ।
अर्जुनस्य बिभीतस्य चित्रकस्य च पल्लवान् ॥ ३० ॥
पिष्ट्वा तु लवणं तुल्यमारनालेन लालयेत् ।
तल्लिप्तद्रविणं ह्यग्नौ चार्पयेन्मलशान्तये ॥ ३१ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे अज्ञातनिधि-
ग्रहणनियमो नाम चतुर्विंशं पटलम् ।

बर्त्तनों में रखी निधि पर बालुका में पीसा गया नमक छिड़के। तदनन्तर जब तक वह लवण शुष्क न हो जाये, तब तक हलकी आँच में गर्म करे। इस प्रकार से स्वर्ण-रत्न निर्मल हो जाते हैं।

अथवा अर्जुन, बहेड़ा तथा चिता वृक्ष के पत्तों को पीसकर उतना ही नमक मिलाकर काँजी के साथ मिलाये। इसे स्वर्ण-रत्न पर लेपन करके अग्नि में डालने से ही वे निर्मल हो जाते हैं ॥ २९-३१ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के अज्ञातनिधि-ग्रहणनियम नामक चौबीसवाँ पटल समाप्त।

पञ्चविंशं पटलम्

अथ यक्षिणीसाधनम्

सर्वासां यक्षिणीनान्तु ध्यानं कुर्यात् समाहितः।
भगिनीमातृपुत्रीस्त्रीरूपतुल्या यथेप्सिताः ॥ १ ॥

अब यक्षिणी-साधन का वर्णन किया जाता है। समस्त यक्षिणियों के ध्यानार्थ एकाग्र चित्त से ध्यान करना चाहिए। साधक को अपनी इच्छा के अनुरूप यक्षिणी के प्रति बहन, माता, पुत्री या भार्यारूप में से कोई एक भाव ग्रहण कर लेना चाहिए ॥ १ ॥

विचित्रा-साधन

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं वटवृक्षतले शुचिः।
बन्धूककुसुमैः पश्चान्मध्वाज्यक्षीरमिश्रितैः ॥ २ ॥
दशांशं योनिकुण्डे तु हुत्वा देवी प्रसीदति।
विचित्रा साधकस्यैव प्रयच्छति समीहितम् ॥ ३ ॥
'ॐ विचित्रे विचित्ररूपे सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा'।

पवित्रावस्था में वटवृक्ष के नीचे बैठकर उक्त मन्त्र का एक लक्ष जप करे। जप पूर्ण हो जाने पर मधु, घृत तथा दुग्ध मिश्रित बन्धूक पुष्प द्वारा एक त्रिकोणाकृति योनिकुण्ड में १०००० आहुति उक्त मन्त्र द्वारा देना चाहिए। इससे विचित्रा यक्षिणी सन्तुष्ट होकर साधक को इच्छित वर प्रदान करती है ॥ ३ ॥

अथवा

त्रिपथस्थो जपेन्मन्त्रं लक्षमेकं दशांशतः।
घृताक्तैर्गुग्गुलैर्होमैर्विचित्रा सिद्धिदा भवेत् ॥ ४ ॥
'ॐ ऐं ह्लीं महानन्दे भीषणे ह्लीं हुं स्वाहा'।

अथवा साधक एक तिराहे पर बैठकर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करके घृत से मिश्रित गुग्गुल द्वारा उक्त मन्त्र से दस हजार आहुति प्रदान करे। इससे विचित्रा यक्षिणी सिद्धि देने वाली हो जाती है ॥ ४ ॥

कनकवती-साधन

गत्वा यक्षगृहं मन्त्री नग्नो भूत्वा जपेन्मनुम्।
दिनैकविंशतिं कुर्यात् पूजां कृत्वा ततो निशि ॥ ५ ॥

आवर्त्तयेत् ततो मन्त्रमेकचित्तेन साधकः ।
निशार्द्धे वाञ्छितं द्रव्यं देव्यागत्य प्रयच्छति ॥ ६ ॥
'ॐ ह्रीं नखकेशि कनकवति स्वाहा' ।

साधक यक्षगृह (एकान्त गृह) में जाकर नग्न होकर उक्त मन्त्र का जप इक्कीस दिन पर्यन्त करे । तदनन्तर पूजन करके अब रात्रिकाल में पुनः एकाग्र चित्त से मन्त्र का जप करे । ऐसा करने पर उस दिन अर्धरात्रि में कनकवती देवी प्रकट होकर साधक को इच्छित वर देती है ॥ ५-६ ॥

कुवलया-साधन

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं दशांशं गुग्गुलुं हुनेत् ।
लाक्षा उत्पलकं वाथ ध्यात्वा सर्वाङ्गलोचनाम् ।
पट्टे पटे वा संलिख्य होमान्ते वाञ्छितप्रदा ॥ ७ ॥
'ॐ कुवलये हिलि हिलि तु तु तु सिद्धिसिद्धेश्वरि ह्रीं स्वाहा' ।

उक्त मन्त्र का तीन लाख जप करके गुग्गुल से ३०००० आहुति इसी मन्त्र द्वारा प्रदान करे । होम के अन्त में रेशमी वस्त्र पर इस देवी की मूर्त्ति अंकित करके ध्यानमग्न हो जाये । इससे देवी होम के अन्त में साधक को वांछित वर देती है ॥ ७ ॥

विभ्रमा-साधन

जपेल्लक्षद्वयं मन्त्री श्मशाने निर्भयो मनुम् ।
दशांशं जुहुयात् साज्यं हुत्वा तुष्यति विभ्रमा ।
पञ्चाशन्मानुषाणाञ्च दत्ते सा भोजनं सदा ॥ ८ ॥
'ॐ ह्रीं विभ्रमरूपे विभ्रमे कुरु कुरु एह्येहि भगवति स्वाहा' ।

साधक को श्मशान में बैठकर निर्भय चित्त से उक्त मन्त्र का दो लाख जप करना चाहिए । जप समाप्त होने पर घृत द्वारा बीस हजार आहुति देना होगा । इस प्रकार करने से देवी विभ्रमा प्रसन्न होकर प्रतिदिन ५० व्यक्तियों को भोजन कराने लायक खाद्य पदार्थ प्रदान करती है ॥ ८ ॥

जलपाणी-साधन

शाकयूषपयःसक्तुं भक्षः श्वेतकमासने ।
देवतां पूजयेन्नित्यं जपेल्लक्षं त्रयोदशम् ॥ ९ ॥
पायसं होमयेत् पश्चात् सहस्रैकेण सिध्यति ।
नित्यं लोकसहस्रस्य भोजनं सा प्रयच्छति ।
लक्षायुर्दिव्यवर्षाणि दत्ते सा शङ्करोदिता ॥ १० ॥
'ॐ ह्रीं जलपाणि पिज्जल पिज्जल हुं ब्लूं स्वाहा' ।

शाक का यूष, दुग्ध एवं सत्तू भोजन करने वाले साधक को श्वेत कम्बल के आसन पर आसीन होकर देवी का पूजन करते हुए १३ लाख जप करना चाहिए । जप समाप्त होने पर पायस द्वारा एक हजार आहुति देनी चाहिए । इससे सिद्धि मिलती है और देवी प्रसन्न होकर प्रतिदिन १००० लोगों के हेतु खाद्य पदार्थ देती है और दिव्य एक लाख वर्ष की आयु प्रदान करती है । यह महादेव का कथन है ॥ १० ॥

सुलोचना-साधन

लक्षमुत्पलशाखोत्थं हुत्वा मन्त्रमिमं जपेत् ।
लक्षैकादशमावर्त्य हुत्वा मध्ये शशिग्रहे ॥ ११ ॥
अथवा मालतीपुष्पैर्हुत्वा भानुसहस्रकम् ।
ग्रहमुक्तिर्भवेद् यावत् पूर्णान्ते सिध्यति ध्रुवम् ।
सहस्रन्तु जपाद्यन्ते सहस्राणान्तु भोजनम् ॥ १२ ॥

'ॐ भूते सुलोचने ब्लूं' ।

चन्द्रग्रहण के समय पद्मबीज द्वारा १ लाख आहुति उक्त मन्त्र से देना चाहिए । तदनन्तर इसी मन्त्र का ग्यारह लाख जप करे और मध्य चन्द्रग्रहण में पुनः होम की आवृत्ति करे अथवा सूर्यग्रहण के समय १२००० आहुति मालती पुष्प द्वारा प्रदान करे । पूर्ण होम हो जाने पर सिद्धि मिलती है । हजार मन्त्र-जप के अन्त में देवी सहस्रसंख्यक व्यक्ति हेतु भोजन प्रदान करती है । यह नित्य मिलता है ॥ १२ ॥ (यह प्रयोग कुछ स्पष्ट तथा तर्कसंगत प्रतीत नहीं हो रहा है । ग्रहण काल मात्र में इतना जप असम्भव है ।)

रतिप्रिया-साधन

शङ्खलिप्ते पटे देवीं गौरवर्णां धृतोत्पलाम् ।
सर्वालङ्कारिणीं दिव्यां समालिख्याऽर्चयेत् पुनः ॥ १३ ॥
जातीपुष्पैः सोपचारैः सहस्रैकं ततो जपेत् ।
त्रिसन्ध्यं सप्तरात्रन्तु ततो रात्रौ शुचिर्जपेत् ॥ १४ ॥
अर्द्धरात्रे गते देवी समागत्य प्रयच्छति ।
पञ्चविंशतिदीनारान् प्रत्यहं सा प्रयच्छति ॥ १५ ॥

'ॐ ह्लीं रतिप्रिये स्वाहा' ।

शंख से लिप्त (शंख लगे हुए) पट पर देवी की गौरवर्णा, उत्पलधारिणी, सभी भूषणों से विभूषिता देवी मूर्त्ति का अंकन करके रात्रि में पवित्र होकर चमेली पुष्प एवं नाना उपचारों से उनका पूजन करे । तदनन्तर एक हजार जप ऊपर अंकित मन्त्र का करना चाहिए । ऐसा सात दिन तक करने पर

सातवीं रात्रि को देवी आविर्भूत होती हैं और साधक को प्रतिदिन २५ दीनार (स्वर्णमुद्रा) प्रदान करती हैं ॥ १५ ॥

पिशाचिका-साधन

एकविंशदिनं यावदुदयास्तमये जपेत् ।
नित्यं सायं स्वमाहारपिण्डं हर्म्योपरि क्षिपेत् ॥ १६ ॥
त्रिसप्ताहे तु सा तुष्टा शय्यां गत्वा पिशाचिका ।
पञ्चविंशतिदीनारान् ददाति प्रतिवासरम् ।
कर्णे कथयति क्षिप्रं यद् यत् पृच्छत्यसौ क्रमात् ॥ १७ ॥
'ॐ ह्रीं चः चः कम्बलके गृह्ण पिण्डं पिशाचिके स्वाहा' ।

२१ दिन तक सूर्योदय से सूर्यास्त तक उक्त मन्त्र का जप करे और सन्ध्याकाल में नित्य घर की छत पर अपने खाद्य द्रव्य का (जो साधक स्वयं खाता हो) पिण्ड पिशाचिका को अर्पित करता रहे । २१ दिनों में पिशाचिका सन्तुष्ट होकर साधक की शय्या के बगल में प्रकट होती है और उसे प्रतिदिन २५ स्वर्णमुद्रा प्रदान करती है । साधक क्रमशः देवी से जो भी प्रश्न करता है, देवी उस साधक के कानों में उसका उत्तर देती है ॥ १७ ॥

चन्द्रगिरा-साधन

गृहे वारण्य एकान्ते लक्षमेकं जपेन्मनुम् ।
पुष्पधूपादिभिः पूजां नित्यं कुर्यात् प्रयत्नतः ॥ १८ ॥
पञ्चामृतैर्दशांशेन हुते देवी प्रसीदति ।
दीनाराणां सहस्रैकं प्रत्यहं तोषिता सती ॥ १९ ॥
'ॐ गुलु गुलु चन्द्रामृतमयि अव जातिलं हुलु हुलु चन्द्रगिरे स्वाहा' ।

निर्जन घर में अथवा वन के निर्जन स्थल में उक्त मन्त्र का एक लाख जप करे । जप के अन्त में धूप, पुष्प आदि से यत्नपूर्वक पूजन भी करे ।

पूजा के अन्त में पञ्चामृत द्वारा १०००० आहुति उक्त मन्त्र से देना चाहिए । इससे चन्द्रगिरा यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को प्रतिदिन एक हजार स्वर्णमुद्राएँ प्रदान करती हैं ॥ १८-१९ ॥

सुरसुन्दरि-साधन

एकलिङ्गं महादेवं त्रिसन्ध्यं पूजयेत् सदा ।
धूपं दत्त्वा जपेन्मन्त्री ब्रूहि सा त्वं किमिच्छसि ॥ २० ॥
देवि ! दारिद्रयदग्धोऽस्मि तन्मे नाशकरी भव ।
ततो ददाति सा तुष्टा वित्तायुश्चिरजीवितम् ॥ २१ ॥
'ॐ ह्रीं आगच्छ सुरसुन्दरि स्वाहा' ।

प्रतिदिन तीन सन्ध्याओं में एकलिंग महादेव की अर्चना करे और धूपदान करके उक्त मन्त्र का जप करे । (जहाँ पाँच कोस की परिधि में मात्र एक ही शिवलिंग हो, उसे एकलिंग कहते हैं ।) इससे देवी प्रसन्न होकर पूछती है कि 'तुम्हें क्या इच्छा है ?

साधक को कहना चाहिए कि 'हे देवी ! मैं दरिद्रता से दग्ध हो रहा हूँ । मेरी दरिद्रता का नाश करो' । देवी प्रसन्न होकर साधक को प्रचुर धन एवं आयु प्रदान करती है ।। २०-२१ ।।

मैथुनप्रिया-साधन

कुङ्कुमेन समालिख्य भूर्जपत्रे सुलक्षणाम् ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य पूजां कृत्वा जपेत् ततः ।
त्रिसन्ध्यं त्रिसहस्रन्तु मासान्ते पूजयेन्निशि ।। २२ ।।
सञ्जपेन्नर्द्धरात्रे तु समागत्य प्रयच्छति ।
दीनाराणां सहस्रैकं प्रत्यहं परितोषिता ।। २३ ।।

'ॐ ह्रीं अनुरागिणि मैथुनप्रिये स्वाहा' ।

कुंकुम द्वारा भोजपत्र पर सर्वलक्षणयुता मैथुनप्रिया देवी-मूर्त्ति का अंकन करके प्रतिपदा तिथि से आरम्भ कर एक मास पर्यन्त नित्य तीनों सन्ध्याओं में पूजन करके उक्त मन्त्र का नित्य ३००० जप करे (प्रत्येक सन्ध्या में १००० जप) । एक मास व्यतीत होने पर अर्धरात्रि में देवी प्रकट होकर साधक को नित्य एक हजार स्वर्णमुद्राएँ प्रदान करती हैं ।। २२-२३ ।।

मनोहरा-साधन

नदीतीरे शुभे देशे चन्दनेन सुमण्डलम् ।
विधाय पूजयेद् देवीं ततो मन्त्रायुतं जपेत् ।। २४ ।।
त्रिसप्ताहं जपेदेवं प्रसन्ने विरतस्तदा ।
दीनाराणां सहस्रैकं व्ययं कुर्याद् दिने दिने ।
विना व्ययेन सा क्रुद्धा न ददाति कदाचन ।। २५ ।।

'ॐ ह्रीं सर्वकामदे मनोहरे स्वाहा' ।

नदीतट पर किसी शुभ स्थान में बैठकर चन्दन द्वारा एक सुन्दर मण्डल अंकित करे । नित्य उसमें देवी का पूजन करके उक्त मन्त्र का दस हजार जप २१ दिनों तक करे । देवी के प्रसन्न होने पर जप बन्द कर दे । मनोहरा देवी प्रसन्न होकर साधक को प्रतिदिन १००० स्वर्णमुद्राएँ देती हैं । साधक को इन्हें नित्य व्यय कर देना चाहिए, अन्यथा देवी क्रुद्ध होकर मुद्राएँ देना बन्द कर देती है ।। २४-२५ ।।

शङ्खिनी-साधन

मन्त्रायुतं जपेन्मन्त्री प्रातः सूर्योदये सति।
मासमेकं जपेदेवं पूजां कुर्याद् दिने दिने।
शङ्खसंलिप्तपट्टे तु शुभ्रपुष्पैः सपायसैः॥ २६॥
दशांशं होमयेत् साज्यैरिन्धनैः करवीरजैः।
ददाति शङ्खिनी तुष्टा नित्यं रूप्यकपञ्चकम्॥ २७॥

'ॐ ह्रीं शङ्खचारिणि शङ्खाभरणे ह्रीं ह्रीं क्लीं ऐं आं स्वाहा'।

प्रतिदिन सूर्योदय होते ही उक्त मन्त्र का प्रतिदिन १०००० जप करे तथा पूजन भी करे। ऐसा एक मास तक करे। नित्य शंखयुक्त चित्रपट पर अंकित देवी का पूजन पायस एवं सफेद पुष्पों से करता रहे। अन्तिम दिन जप के दशांश का हवन करवीर की आहुति देकर करना चाहिए। देवी प्रसन्न होकर साधक को प्रतिदिन चाँदी की पाँच मुद्रायें देती हैं॥ २६-२७॥

मणिभद्र-साधन

सहस्राष्टमिमं मन्त्रं जपेत् सप्तदिनावधि।
प्रत्यहं मणिभद्राख्यं प्रयच्छत्येकरूप्यकम्॥ २८॥

'ॐ नमो मणिभद्राय नमः पूर्णाय नमो महायक्षसेनाधिपतये मोट मोट घराह स्वाहा'।

सात दिन पर्यन्त प्रतिदिन इस मन्त्र का ८००० जप करे। यक्षसेनाधिपति मणिभद्र प्रसन्न होकर साधक को एक रजतमुद्रा प्रतिदिन देते हैं॥ २८॥

त्यागी-साधन

चतुर्लक्षमिमं मन्त्रं जपेत् त्यागी प्रसीदति।
ददाति चिन्तितानर्थांस्तस्य भोगाय मन्त्रिणः॥ २९॥

'ॐ अहो त्यागि मम त्यागार्थं देहि मे वित्तं वीरसेवितं स्वाहा'।

उपरोक्त मन्त्र का चार लाख जप करने से देवी प्रसन्न होकर वांछित अर्थ साधक के भोगार्थ प्रदान करती है॥ २९॥

सागरचेटक-साधन

रात्रौ रात्रौ जपेन्मन्त्रं सागरस्य तटे शुचिः।
लक्षजापे कृते सिद्धो दत्ते सागरचेटकः।
रत्नत्रयं महामूल्यं तेन मन्त्री सुखी भवेत्॥ ३०॥

'ॐ नमो भगवन् रुद्र देहि रत्नानि जलराशे नमोऽस्तु ते स्वाहा'।

प्रत्येक रात्रि को समुद्रतट पर शुद्धावस्था में इस मन्त्र का एक लाख जप

पूर्ण करना चाहिए। इससे प्रसन्न होकर सागरचेटक नामक यक्ष प्रसन्न होकर साधक को तीन महामूल्यवान् रत्न प्रदान करते हैं। इससे साधक सुखी हो जाता है ॥ ३० ॥

स्वामीश्वरी-साधन

एकान्ते च शुचौ देशे त्रिसन्ध्यं त्रिसहस्रकम्।
मासमेकं जपेन्मन्त्री ततः पूजां समारभेत् ॥ ३१ ॥
पुष्पधूपादिनैवेद्यैः प्रदीपैर्घृतपूरितैः।
रात्रावभ्यर्चयेत् सम्यक् सुस्थिरः सुमनाः सुधीः ॥ ३२ ॥
अर्द्धरात्रे गते देवी समागत्य प्रयच्छति।
रसं रसायनं दिव्यं वस्त्रालङ्कारभूषणम् ॥ ३३ ॥

सुखी साधक रात्रि में स्थिर चित्त होकर शुद्ध मन से पुष्प, धूप, नैवेद्य, घृत का दीपक आदि से इस मन्त्र से निर्जन पवित्र स्थान पर बैठकर देवी का पूजन करे और यह कार्य तीनों सन्ध्याओं को करे। तीनों सन्ध्याओं को 'ॐ ह्रीं महाभये हुं फट् स्वाहा' मन्त्र का जप भी १ मास पर्यन्त करे।

इस प्रकार करने से अर्द्धरात्रि में देवी प्रकट होकर साधक को दिव्य रस-रसायन तथा दिव्य वसन-आभूषण देती है ॥ २३ ॥

वटयक्षिणी-साधन

त्रिपथस्थो वटाधःस्थो रात्रौ मन्त्रं जपेत् सदा।
लक्षत्रयं ततः सिद्धा स्याद् देवी वटयक्षिणी ॥ ३४ ॥
वस्त्रालङ्करणं दिव्यं सिद्धं रसरसायनम्।
दिव्याञ्जनञ्च सा तुष्टा साधकाय प्रयच्छति ॥ ३५ ॥

'ॐ ह्रीं श्रीवटवासिनि यक्षकुलप्रसूते वटयक्षिणि एह्येहि स्वाहा'।

तिराहे पर स्थित वटवृक्ष के नीचे बैठकर रात्रि में उक्त मन्त्र का तीन लाख जप पूर्ण करे। इससे देवी वटयक्षिणी आकर्षित हो जाती है और प्रसन्न होकर साधक को वसन-आभूषण, दिव्य रस-रसायन और दिव्याञ्जन प्रदान करतीहैं ॥ ३५ ॥

चन्द्रयोगिनी-साधन

वटवृक्षं समारुह्य लक्षमेकं जपेन्मनुम्।
ततः सप्ताभिमन्त्रेण काञ्जिकैः क्षालयेन्मुखम् ॥ ३६ ॥
यामद्वयं जपेद् रात्रौ वरं यच्छति यक्षिणी।

रसं रसायनं दिव्यं क्षुद्रकर्माण्यनेकधा ।
सिद्धानि सर्वकार्याणि नान्यथा शङ्करोदितम् ॥ ३७ ॥

'ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रयोगिनि स्वाहा' ।

रात्रि में वटवृक्ष की मोटी शाखा पर चढ़कर बैठे और उक्त मन्त्र का एक लाख जप करे । तदनन्तर उक्त मन्त्र से काँजी को सात बार अभिमन्त्रित करके उससे मुख धो ले ।

रात्रि के प्रहरद्वय तक जप करे । यक्षिणी तुष्ट होकर साधक को अभीष्ट वर देती हैं । वे तृप्त होकर साधक को दिव्य रस-रसायन देकर साधक के अनेक छोटे-छोटे कार्य भी कर देती हैं । यह शंकर द्वारा कहा गया है और कभी अन्यथा नहीं होता ॥ ३६-३७ ॥

विशाला-साधन

चिञ्चावृक्षतले मन्त्रं लक्षमावर्त्तयेच्छुचिः ।
विशाला वितरेत् तुष्टा रसं दिव्यं रसायनम् ॥ ३८ ॥

'ॐ ह्रीं विशाले द्रां द्रं क्लीं एह्येहि स्वाहा' ।

चिंचा वृक्ष के नीचे पवित्र होकर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करने से विशाला देवी प्रसन्न होकर साधक को दिव्य रस-रसायन देती हैं ॥ ३८ ॥

महाभया-साधन

नरास्थिनिर्मितां मालां गले पाणौ च कर्णयोः ।
धारयेज्जपमालाञ्च तादृशीन्तु श्मशानतः ॥ ३९ ॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं साधयेन्निर्भयः सुधीः ।
ततो महाभया सिद्धा ददात्येव रसायनम् ॥ ४० ॥
तेन भक्षितमात्रेण पर्वतानपि चालयेत् ।
वलीपलितनिर्मुक्तश्चिरजीवी भवेन्नरः ॥ ४१ ॥

'ॐ ह्रीं महाभये हुं फट् स्वाहा' ।

श्मशान में दोनों हाथों तथा कानों में मनुष्य की हड्डी से निर्मित माला पहने और वैसी ही माला से श्मशान में निर्भय होकर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करे । इससे देवी प्रसन्न होकर साधक को दिव्य रसायन देती है, जिसके खाने मात्र से साधक पर्वतों को भी विचलित करने में समर्थ हो जाता है और बुढ़ापे से रहित होकर दीर्घजीवी होता है ॥ ३९-४१ ॥

चन्द्रिका साधन

शुक्लपक्षे जपेत् तावद् यावद् दृश्येत चन्द्रिका ।
दत्ते पीत्वा यदमरोऽमृतं तच्च भवेन्नरः ॥ ४२ ॥

'ॐ ह्लीं चन्द्रिके हंसः स्वाहा'।

शुक्लपक्ष की रात्रि में जब तक चन्द्रमा उदित दीखें तब तक उक्त मन्त्र जपता रहे। इससे प्रसन्न होकर देवी साधक को अमृत देती है, जिसका पान करके वह चिरजीवी हो जाता है ॥ ४२ ॥

पातालसिद्धिदा-साधन

शक्रचापोदये लक्षं निर्गुण्डीतलमध्यगः।
जपेन्मन्त्रं ततस्तुष्टा देवी पातालसिद्धिदा ॥ ४३ ॥

'ॐ ऐं क्लीं ऐन्द्रि माहेन्द्रि कुलु कुलु चुलु चुलु हंसः स्वाहा'।

हृदि ध्यात्वा जपेद् रात्रौ हंसबद्धः सचेतकः।
योगं ददाति सा तुष्टा जरामृत्युविनाशनम् ॥ ४४ ॥

जब आकाश में इन्द्रधनुष दृष्टिगोचर हो, उस समय निर्गुण्डी के नीचे बैठकर उक्त मन्त्र का जप करने से साधक को पातालगमन की शक्ति आती है। अब इनका अन्य प्रयोग इस प्रकार है—रात्रि में हंसासन पर बैठकर एकाग्रचित्त से 'ॐ हंसः सर्वलोचनानि बन्धय बन्धय देवी आज्ञापयति स्वाहा' का जप हृदय में देवी का ध्यान करते हुए करने से देवी प्रसन्न होकर जरा-मृत्यु का विनाश करने वाला रहस्य देती है ॥ ४३-४४ ॥

चेटिका-साधन

स्वीयमूर्ध्नि करं वामं दत्त्वा लक्षं जपेन्मनुम्।
वाक्सिद्धिं मन्त्रिणे देवी चेटिका वै प्रयच्छति ॥ ४५ ॥

'ॐ नमो लिङ्गोद्भव रुद्र देहि मे वाचः सिद्धिं बिनानां पर्वतगते द्रां द्रीं द्रं द्रैं द्रौं द्रः'।

अपने मस्तक पर बायाँ हाथ रखकर इस मन्त्र का एक लाख जप करे। देवी प्रसन्न होकर साधक को वाक्सिद्धि देती है ॥ ४५ ॥

रक्तकम्बला-साधन

जपेन्मासत्रयं रक्तकम्बले सुप्रसीदति।
मृतकोत्थापनं कुर्यात् प्रतिमाचालनं तथा ॥ ४६ ॥

'ॐ रक्तकम्बलमहादेवि द्रुतममुकामुकम् उत्थापय उत्थापय प्रतिमां चालय चालय पर्वतं कम्पय कम्पय लीलया चिलि चिलि हुं हुं'।

तीन मास तक प्रतिदिन इस मन्त्र का जप करने से देवी प्रसन्न होती है। वे साधक को शक्ति देती हैं कि वह प्रतिमा को चला सके और मृतक को जीवित कर दें ॥ ४६ ॥

विद्युज्जिह्वा-साधन

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा यत्किञ्चित् स्वात्मभोजनम् ।
तत्रैव वासवं दत्ते नित्यं सान्निध्यकारकम् ॥ ४१ ॥
अतीतानागतं कर्म स्वास्थ्यास्वास्थ्यं ब्रवीति सा ।
प्रतिमापर्वतान् सर्वान् चालयत्येव तत्क्षणात् ॥ ४८ ॥

'ॐ करङ्कमुखे विद्युज्जिह्वे ॐ हुं चेचके जः जः स्वाहा' ।

नित्य उक्त मन्त्र को १०८ बार जप करके साधक जो भोजन करता है, वही प्रतिदिन देवी को भी अर्पित करे । यह देवी का सामीप्य प्रदान करता है । देवी प्रसन्न होकर साधक को भूत-भविष्यत् ज्ञान, शरीर के स्वास्थ्य तथा अस्वास्थ्य की जानकारी देती हैं । साधक उनकी कृपा से अचल प्रतिमा एवं पर्वत को भी चालित करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ ४७-४८ ॥

पूर्वमेवायुतं जप्त्वा कृत्वा होमं दशांशतः ।
घृताक्तै रजनीकुष्ठैः पूर्णान्ते च पुनर्जपेत् ॥ ४९ ॥
चन्दनेनालिपेत् गात्रं रात्रौ मन्त्रं समुच्चरेत् ।
यावन्निद्रावशं याति स्वप्ने वसति सा तदा ।
वाञ्छितं यच्छुभं किञ्चित् स्यात् सिद्धं वा न सिध्यति ॥५०॥

पहले 'ॐ ह्रीं सः नमः श्मशानवासिनि चण्डवेगिनि स्वाहा' मन्त्र का १०००० जप करने के अनन्तर घृत एवं हरिद्रा द्वारा १००० आहुति प्रदान करे । तत्पश्चात् पुनः १०००० जप करे ।

तदनन्तर रात्रि में देह में रक्तचन्दन का लेप करके तब तक मन्त्रजप करे जब तक वह स्वयं निद्राग्रस्त न हो जाये । तब देवी रात्रि में स्वप्न में जो शुभ है और जो सिद्ध या असिद्ध होने वाला है, सब बतला देती हैं ॥ ४९-५० ॥

चन्द्रस्राविणी-साधन

करञ्जवृक्षमारुह्य जपेद् दशसहस्रकम् ।
तत्पश्चाञ्जेन कल्केन आपादं संविलेपयेत् ।
जपान्ते पूर्ववत् स्वप्ने कथयेत् सा शुभाशुभम् ॥ ५१ ॥

'ॐ नमश्चन्द्रस्राविणि कर्णाकर्णकारिणि स्वाहा' ।

करंज के वृक्ष पर बैठकर उक्त मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिए । तदनन्तर इसी वृक्ष के फल-फूल-पत्ता-जड़ तथा छाल को पीसकर अपने शरीर में मस्तक से लेकर तलवों तक लेप करे । तब मन्त्र जपता हुआ सो जाये । देवी स्वप्न में साधक के शुभ-अशुभ समस्त विषयों का ज्ञान कराती हैं ॥ ५१ ॥

चामुण्डा-साधन

पूर्वमेवायुतं जप्त्वा कुष्ठकल्काभिमन्त्रितम् ।
सप्तवारं प्रलेपेन स्वप्ने वक्ति शुभाशुभम् ।
त्रैलोक्ये यादृशी वार्त्ता तादृशी कथयत्यलम् ॥ ५२ ॥

‘ॐ ह्रीं आगच्छ चामुण्डे स्वाहा’ ।

पहले उक्त मन्त्र का दस हजार जप करके कूठ को पीसकर उसे सात बार अभिमन्त्रित करके शरीर में ७ बार लेप करके सो जाये । अब देवी स्वप्न में साधक को त्रिभुवन की बातें साधक की इच्छानुसार बतला देती हैं ॥ ५२ ॥

कर्णपिशाचिनी-साधन

अलाबुमूलिका पुष्ये तथा सर्पाक्षिमूलिका ।
सङ्ग्राह्या मन्त्रिता यत्नाद् रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ।
मन्त्रेण मूर्ध्नि बद्धन्तु वदत्येव शुभाशुभम् ॥ ५३ ॥

‘ॐ नमो भगवते रुद्राय कर्णपिशाचिनि स्वाहा’ ।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे यक्षिणीसाधनं
नाम पञ्चविंशं पटलम् ।

पुष्य नक्षत्र में अलाबू की जड़ तथा सर्पाक्षी की जड़ लाकर उसे यत्नपूर्वक उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके रक्तसूत्र से बाँधे । इसे मस्तक पर बाँधने से देवी साधक को समस्त शुभाशुभ का ज्ञान कराती है ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के यक्षिणी-साधन
नामक पच्चीसवाँ पटल समाप्त ।

षड्विंशं पटलम्

अथ व्याधिजननम्

बिल्ववृक्षोद्भवैः काष्ठैः करण्डं कारयेद् बुधः ।
पिचुमर्दोद्भवैः काष्ठैः पिधानं कारयेद् बुधः ॥ १ ॥

व्याधि उत्पन्न करना

अब व्याधि उत्पन्न करने का प्रकरण प्रस्तुत है। साधक बेल की लकड़ी से एक तख्ता और नीम की लकडी से उसका आच्छादन बनाये ॥ १ ॥

तत्र मध्ये क्षिपेन्मूर्त्तिमुत्तानां जीवितान्विताम् ।
वर्त्तिमुच्छिष्ठसिक्तां वा शत्रोस्तस्योदरे क्षिपेत् ॥ २ ॥

शत्रु की प्रतिकृति बनाकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करके उसे आच्छादन के नीचे लिटा दे और शत्रु के वक्ष पर एक प्रदीप जला दे ॥ २ ॥

कीलयेत् कण्टकेनैव निखनेत् सम्पुटे क्षिपेत् ।
व्याधिस्तस्य भवेच्छत्रोः पुनस्तत्क्षालनात् सुखी ॥ ३ ॥

अब इस प्रतिमा को कील से बेंधकर समस्त सामग्री सहित (तख्ता-आच्छादन-दीपक सहित) पृथ्वी में गाड़ दे। इससे शत्रु व्याधिग्रस्त हो जाता है। पुनः इस सामग्री को पृथ्वी से उखाड़ कर बाहर करते ही वह सुखी होने लगता है ॥ ३ ॥

भल्लातकरसो गुञ्जा ऊर्णनाभिः सुचूर्णितम् ।
क्षिपेद् रात्रौ भवेत् कुष्ठं सिताक्षीरं पिबेत् सुखी ॥ ४ ॥

भिलावा का रस, श्वेत घुमची एवं मकड़ी को पीसकर शत्रु पर रात्रि को छिड़कने से उसे कुष्ठ हो जाता है। चीनी के साथ दूध पीने से वह पुनः ठीक हो जाता है ॥ ४ ॥

वानरीफलरोमाणि विषभल्लातचित्रकम् ।
गुञ्जायुतं क्षिपेद् रात्रौ स्याल्लूता वेदनान्विता ॥ ५ ॥

वानरी-फल (किवाँच) का रोम, विष, भिलावा, चित्रा वृक्ष की जड़ तथा घुमची को मिलाकर सबका चूर्ण करके जिसके ऊपर छिड़का जायेगा, उसे वेदनायुक्त फोड़े हो जाते हैं ॥ ५ ॥

उशीरं चन्दनञ्चैव प्रियङ्गुं रक्तचन्दनम् ।
तगरं पेषयेत् तोयैर्लेपाल्लूतां विनाशयेत् ॥ ६ ॥

उशीर की जड़, सफेद चन्दन, प्रियंगु, तगर और रक्तचन्दन को पानी में पीसे। इसका लेप करने से श्लोक ५ में अंकित व्याधि दूर हो जाती है ॥ ६ ॥

कृष्णसर्पशिरो ग्राह्यं तद्वक्त्रे सर्षपान् क्षिपेत् ।
कृष्णभल्लाततैलेन कृष्णसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ ७ ॥
वल्मीकमृत्तिकालिप्तं श्मशाने तु विपाचयेत् ।
सुपक्वसर्षपं ग्राह्यं वानरीरोमसंयुतम् ॥ ८ ॥
शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु गात्रे वा मूर्ध्नि निक्षिपेत् ।
प्रक्षेपाज्जायते लूता शत्रूणां वेदनान्विता ॥ ९ ॥

एक काले साँप का मस्तक लाकर उसके मुँह में काला भिलावा के तेल के साथ सरसों रखे। उसके मुख को काले धागे से बाँध दे।

अब बँधे मुँह के बाहर मिट्टी का लेप करके उसे श्मशान की अग्नि में पकाये। जब अन्दर रखी सरसों पक जाये तब उसमें वानरीफल का रोया मिलाकर शरद्, ग्रीष्म या वसन्त ऋतु में शत्रु के शिर अथवा देह पर छिड़के। उसके देह में वेदना युक्त व्रण हो जायेंगे ॥ ७-९ ॥

प्रियङ्गुशर्करकुष्ठरक्तपङ्कजकेशरैः ।
गिरिकर्णीनिशानिम्बस्तथा क्षीरेण लेपयेत् ।
सप्ताहाज्जायते स्वस्थः कृपा चेद् रक्षयेद् रिपुम् ॥ १० ॥

ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय भूवाहवे उन्मने स्वाहा'।

प्रियङ्गु, शर्करा, कूठ, लालकमल की केशर, अपराजिता की जड़, हल्दी तथा नीम के पत्ते को बकरी के दूध में पीस कर शत्रु के शरीर में सात दिन तक लगाने से उसका रोग (व्रण) ठीक हो जाता है। यदि शत्रु पर दया आये तब यह प्रयोग करे।

श्लोक १ से १० तक के सभी प्रयोग में सामग्री को इसी मन्त्र से अभिमन्त्रित करके प्रयोग करे, जो श्लोक १० के साथ अंकित है ॥ १० ॥

बहुरूपधरं यस्तु सञ्चूर्णं कृकलासकम् ।
रक्तसर्षपमूलञ्च निष्कैकं भोजयेत् क्षिपेत् ।
गलत्कुष्ठी भवेच्छत्रुः स्वस्थो वा जायते क्वचित् ॥ ११ ॥

व्यक्ति उस जाति के गिरगिट को लाये जो अनेक रंग बदल लेते हैं तथा लाल सरसों की जड़ को लाये। दोनों को चूर्ण करके एक निष्क वजन भर शत्रु को खिला दे तथा उसकी देह पर छिड़क दे। शत्रु को गलित कुष्ठरोग हो जाता है। इस रोग से पीड़ित होकर वह शायद ही स्वस्थ हो पाता है ॥ ११ ॥

कृकलासं ग्रामचिल्लीं शाकं रक्तञ्च सर्षपम् ।
पिष्ट्वा तद्भक्षणादेवमङ्गस्फोटकरं रिपोः ॥ १२ ॥

कृकलास (गिरगिट), ग्रामीण चील, लाल रंग का शाक तथा सरसों को पीसकर शत्रु को खिलाने मात्र से उसकी देह में फोड़े हो जाते हैं ॥ १२ ॥

श्वेतापराजिता गुञ्जा सुश्वेता च जयन्तिका ।
पिष्ट्वा तद्भक्षणादेव समन्त्रेण निवर्त्तते ।
बालकं चन्दने द्वे च लेपोऽप्यत्र सुखावहः ॥ १३ ॥

'ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय कम्पने धूनने मुञ्च मुञ्च दुर्गः सः' ।

यदि शत्रु को स्वस्थ करना हो तब सफेद अपराजिता, सफेद घुमची तथा श्वेत जयन्ती को पीसकर श्लोक १३ में अंकित श्लोक द्वारा अभिमन्त्रित करके शत्रु के शरीर में लेप करवा दे । वह स्वस्थ हो जायेगा ॥ १३ ॥

कृकलासोद्भवं चर्म रिपुमूत्रेण पूरयेत् ।
मुखं बद्धाश्वबालेन भूमौ खन्यादधोमुखम् ।
मूत्ररोधो भवेत् तस्य उद्धृत्य क्षालनात् सुखम् ॥ १४ ॥

गिरगिट के चर्म की थैली बनाकर उसमें शत्रु का मूत्र भरे । उस थैली के मुख को घोड़े के बाल से बाँधकर भूमि में उलटा (अधोमुख) गाड़ दे । इससे शत्रु को मूत्रावरोध हो जाता है । परन्तु इसे उखाड़ देने से वह पुनः सुखी हो जाता है ॥ १४ ॥

उलूकमस्तकं ग्राह्यं लवणेन प्रपूरयेत् ।
सप्ताहं ताम्रपात्रस्थमक्षकाष्ठेन चाञ्जयेत् ।
दृष्टिस्तम्भकरं तत् स्यान्मरिचाक्षफलं तथा ॥ १५ ॥

उल्लू के मस्तक को लाकर उसमें नमक भरे और एक ताम्रपत्र में रखकर ७ दिनों तक बहेड़ा की लकड़ी की ज्वाला से उस पर काजल जमाये । इससे दृष्टिस्तम्भन होता है । साथ ही मरिच (कालीमिर्च) और बहेड़ा फल भी दृष्टिस्तम्भनकारक है ॥ १५ ॥

त्र्यङ्गुलमनुराधायामङ्कुलीमूलमाहरेत् ।
चक्षूरोगकरं गेहे निखनेद् वैरिणां ध्रुवम् ॥ १६ ॥

'ॐ अन्धेरहः अन्धेरहः स्वाहा' ।

अनुराधा नक्षत्र में तीन अंगुल अंकोल की जड़ लाकर शत्रु के घर में गाड़ देने से उसे नेत्ररोग होता है । श्लोक १५ तथा १६ के लिए उक्त मन्त्र का प्रयोग करें जो श्लोक १६ में अंकित है ॥ १६ ॥

धुस्तूरकाष्ठैर्दग्धादौ भ्रमरं मधुपूरितम् ।
जलकुम्भे क्षिपेत् तन्तु तत्पानाद् बधिरो रिपुः ।
जातीपुष्परसं पीत्वा स्वस्थो भवति तत्क्षणात् ॥ १७ ॥

मधुलिप्त भ्रमर को धतूरा-काष्ठ की अग्नि में पकाकर उसे जलपूर्ण कलश में रखे। इस जल को पीकर शत्रु बहरा हो जाता है। किन्तु चमेली पुष्प का रस पीने से उसकी बधिरता ठीक हो जाती है ॥ १७ ॥

स्नुहीक्षीरं यवक्षारं मृद्घनं पादपांशुकम् ।
सममेतत्प्रलेपेन शत्रुः खञ्जो भवत्यलम् ॥ १८ ॥

स्नूही नामक पौधे का दूध, यवक्षार, कुम्हार की मिट्टी, शत्रु के पैरों के नीचे की मिट्टी को मिलाकर शत्रु के पैर पर लेप करने से वह लंगड़ा हो जाता है ॥ १८ ॥

श्लोक १७ एवं १८ में अंकित प्रयोगार्थ यह मन्त्र है—'ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय रुद्रशेखराय खञ्जने सङ्कोचने ठः ठः'।

तण्डुलीपिप्पलीशिग्रुमारनालेन पेषयेत् ।
लेपे पाने खञ्जनाशः शत्रूणां नात्र संशयः ॥ १९ ॥

तण्डुली, पिप्पल तथा सैंजन को पीसना चाहिए। शत्रु के चरणों में लेपन तथा पिलाने से वह फिर स्वस्थ हो जाता है ॥ १९ ॥

कृष्णसर्पस्य रक्तेन नीलमक्षिकपोतविट् ।
विष्ठां विलेपयेद् यस्तु खञ्जो भवति तत्क्षणात् ।
तिलतैलैर्बलायुग्मं पिष्ट्वा लिप्तो सुखी भवेत् ॥ २० ॥

काले साँप का रक्त, नीली मक्खी, कपोत की बीट तथा शत्रु का मल लेकर इन्हें पीसे। शत्रु के पैरों में लेप करते ही वह खञ्ज हो जाता है। इसे तिलतैल में दोनों प्रकार की बला (बला-अतिबला) के साथ पीसकर लेप करने से वह पुनः स्वस्थ हो जाता है ॥ २० ॥

सर्षपश्च शिलातालं रौद्रतैलेन पाचयेत् ।
अभ्यङ्गे पादसङ्कोचं स्वस्थस्तैलाक्तरञ्जनात् ॥ २१ ॥
'ॐ नमो भगवते रुद्रशेखराय उड्डामरेश्वराय चलमालिने स्वाहा'।

श्वेत सरसों, मैनसिल एवं हरताल को कटुतैल में पकाये। इसे लगाने से खञ्जता उत्पन्न होता है। तदनन्तर पैरों में तेल लगाने से शत्रु स्वस्थ हो जाता है ॥ २१ ॥

श्लोक १९ से २१ तक के लिए विहित मन्त्र श्लोक २१ के साथ अंकित है।

रक्तेन कृकलासस्य सर्पस्य हरितस्य वा।
रञ्जिते लङ्घिते सूत्रे योषिद्रक्तं स्रवत्यलम्।
उल्लङ्घने पुनः स्वस्थो जायते वरयोषितः॥ २२॥

गिरगिट के रक्त तथा हरे साँप के रक्त को मिलाकर उसके द्वारा एक धागे को रंग दे। जो स्त्री इसका लंघन (मार्ग में) करेगी उसको भीषण रक्तस्राव होने लगेगा। यदि वह इसका पुनः लंघन कर दे, तब स्वस्थ हो जायेगी॥ २२॥

स्त्रीमूत्रभूमौ सार्द्रायां निखनेत् कृष्णवृश्चिकम्।
वराङ्गे जायते दुःखमुद्धृते तु पुनः सुखम्।
जम्बीरब्रध्नं हस्तर्क्षे दत्ते स्त्री दुर्भगा भवेत्॥ २३॥
'ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय अमुकं गृह्ण गृह्ण ठः ठः'।

जहाँ नारी मूत्रत्याग करती है, वह जब गीला रहे तभी वहाँ एक बिच्छू गाड़ देना चाहिए। इससे उस स्त्री को योनि में अत्यधिक पीड़ा होगी। बिच्छू उखाड़ते ही उसकी वेदना समाप्त हो जाती है। प्रयोग का मन्त्र श्लोक के साथ अंकित है। जहाँ 'अमुकं' लिखा है, वहाँ स्त्री का नाम लगाये॥ २३॥

भृङ्गीमूलं समुद्धृत्य कृष्णाष्टम्याश्च चूर्णयेत्।
भक्ष्ये पाने क्षिपेन्मूर्ध्नि जरातीसारकृद् भवेत्।
राजिकर्णीयमूलेन स्वास्थ्यमुत्पद्यते पुनः॥ २४॥

कृष्णपक्ष की अष्टमी को भृंगराज की जड़ लाये। उसे खाने अथवा पीने के पदार्थ के साथ जिसे भी दिया जायेगा अथवा जिसके मस्तक पर फेंका जायेगा, उसे ज्वर एवं अतिसार होगा। पुनः उस रोगी को असगन्ध की जड़ खिलाने से पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होगा॥ २४॥

मुण्ड-मांसमुलूकस्य समञ्च खरकाकयोः।
सङ्गृह्य दासमुच्चार्य सोपवासो जपेदमुम्।
ज्वरेण दह्यते शत्रुरहोरात्रे कृते जपे॥ २५॥
शुचिर्भूत्वा समारिष्टः सम्मुखं स्नानमाचरेत्।
आतुरस्य स्वयञ्चैव देवाग्रे जायते सुखी॥ २६॥

उल्लू, गदहा तथा कौये के मुण्ड का मांस बराबर लाकर उपवासी रहकर 'ॐ नमो भगवते रुद्रायोड्डामरेश्वराय अमुकं रोगेण गृह्ण गृह्ण पच पच ताडय क्लेदन हुं फट् ठः ठः' मन्त्र द्वारा जप करे। जहाँ अमुकं शब्द लिखा है, वहाँ अमुकं के स्थान पर शत्रु का नाम लिखकर उसके आगे दास शब्द जोड़कर मन्त्रजप करे। एक दिन तथा उस दिन की रात्रि (२४ घण्टे) जप करने से शत्रु ज्वरदाह से ग्रस्त हो जाता है। यदि उसे ठीक करना हो तब साधक एवं

शत्रु दोनों को पवित्र होकर देवता के सामने बैठकर स्नान करना होगा। इससे रोग दूर हो जाता है ॥ २५-२६ ॥

भुजगीवदने क्षिप्तं ताम्बूलं वैरिणां मुखात्।
दन्तकाष्ठं च वा तेषां गोनसां वदने क्षिपेत्।
आस्यरोधो भवेत् तेषां दुष्टानां दण्ड ईदृशः ॥ २७ ॥

शत्रु का थूका हुआ पान एक मादा साँप के मुँह में भरे, अथवा शत्रु के दाँत खोदने का तिनका लेकर गोनस सर्प के मुँह में भरे। इससे शत्रु को मुखरोध रोग होता है। दुष्टों को यही दण्ड देना चाहिए। मन्त्र श्लोक २६ के अनुसार है ॥ २७ ॥

कृष्णसर्पमुखे न्यस्ता शत्रूणां मूत्रमृत्तिका।
वेष्टयेद् कृष्णसूत्रेण मूत्ररोगेण मारयेत् ॥ २८ ॥

जहाँ शत्रु ने मूत्र त्याग किया हो वहाँ की मृत्तिका काले सर्प के मुँह में भर कर उस मुँह को काले धागे से बाँध देना चाहिए। इससे शत्रु मूकरोग से मर जाता है। मन्त्र पूर्ववत् है ॥ २८ ॥

श्वेतस्य करवीरस्य मूलं पुष्पश्च चूर्णयेत्।
बिल्वमज्जा तु तद् भक्ष्ये दत्तं स्याच्छर्दिकृत् रिपोः ॥ २९ ॥

श्वेत करवीर की जड़ एवं पुष्प तथा बेल का गूदा मिलाकर शत्रु को खिलाने से शत्रु को वमनरोग हो जाता है। मन्त्र पूर्ववत् है ॥ २९ ॥

भावयेत् पूगखण्डानि वज्रीक्षीरेण सप्तधा।
ताम्बूले तस्य तद् दत्तं तस्योष्ठे श्वेतकुष्ठकृत् ॥ ३० ॥

कुछ सुपारी के टुकड़ों को वज्री नामक पौधे के दूध के साथ सात बार भावना देनी चाहिए। इसे ताम्बूल में मिलाकर शत्रु को खिलाने से उसे ओठों में श्वेतकुष्ठ हो जाता है, यह निश्चित है। मन्त्र पूर्ववत् है ॥ ३० ॥

ताम्बूले इन्द्रगोपाश्च दत्त्वास्ये श्वेतकुष्ठकृत्।
प्रत्यायनं यथापूर्वं भक्ष्या वा सोमराजिका।
अजागोघृतधूपेन सुखं सञ्जायते ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

पान के अन्दर वीरबहूटी नामक बरसाती कीड़ा शत्रु को खिलाने से उसके मुख में शीघ्र रोग हो जाता है। तदनन्तर उसे स्वस्थ करने हेतु सोमराजि का बीज देने से अथवा बकरी के घृत तथा गाय के घृत को मिलाकर धूप देने से शत्रु स्वस्थ हो जाता है। मन्त्र पूर्ववत् है ॥ ३१ ॥

धुस्तूरबीजेन्द्रयवं पारेवतमलं समम्।
ग्रहावेशकरो धूपो वामानां नात्र संशयः ॥ ३२ ॥

'ॐ गृह्ण गृह्ण सुभगे ठः ठः'।

धतूरा के बीज, इन्द्रयव तथा कबूतर की बीट को समान मात्रा में लेकर श्लोक के साथ अंकित मन्त्र से धूप दे। इस धूप के लगने से नारी को ग्रहों का आवेश आता है (भूत के आवेश जैसा), इसमें कोई सन्देह नही है ॥३२॥

मन्त्र श्लोक के साथ अंकित है।

लिखेन्नामाङ्कितं यन्त्रं श्मशानोत्थेन भस्मना।
हस्तर्क्षे त्र्यङ्गुलं कीलं करवीरककाष्ठजम्।
निखनेत् कुम्भकारस्य शालायां भाण्डनाशकृत् ॥ ३३ ॥

हस्त नक्षत्र में तीन अंगुल नाप की करवीर की लकड़ी की कील बनाकर (लकड़ी भी इसी नक्षत्र में लाना चाहिए) उस कील पर शत्रु के नाम से अंकित यन्त्र को श्मशान की भस्म से लिखे। इस कील को कुम्हार के गृह में गाड़ देने पर उसका समस्त बर्त्तन (मिट्टी का बर्त्तन) टूट जाता है ॥ ३३ ॥

(यह प्रयोग केवल ऐसे शत्रु के लिए हैं जो मिट्टी के बर्त्तन बनाता है।) मन्त्र श्लोक ३४ में अंकित है।

गोक्षुरं श्रृङ्गबेरञ्च बीजं वा कोकिलाक्षजम्।
शूकरस्य मलं वाथ मूलं वा श्वेतगुञ्जकम्।
पाकस्थाने तु भाण्डानां क्षिप्त्वा स्फोटयते ध्रुवम् ॥ ३४ ॥

गोखरु, सोंठ, श्रृंगवेर के बीज, सूअर का मल तथा सफेद घुमची की जड़ को लेकर पीसे और 'ॐ मदन मदन स्वाहा' से अभिमंत्रित कर इसे रसोई घर में फेंकने से वहाँ के समस्त पात्र फूट जाते हैं ॥ ३४ ॥

लताकरञ्जबीजं वा टङ्कणेन सहैव तु।
कृत्वा भाण्डं स्फुटत्येव उक्तानां मन्त्र उच्यते ॥ ३५ ॥

सोहागा एवं लताकरंज के बीज को पीसकर उक्त मन्त्र से (जो श्लोक ३५ में अंकित है) अभिमंत्रित करके जहाँ गाड़ दिया जायेगा, वहाँ के समस्त पात्र फूट जाते हैं ॥ ३५ ॥

मधूककाष्ठकीलन्तु चित्रायां चतुरङ्गुलम्।
निखनेत् तैलशालायां तैलं तत्र विनश्यति ॥ ३६ ॥

'ॐ दह दह स्वाहा'।

चित्रा नक्षत्र में ४ अंगुल नाप की महुआ वृक्ष के लकड़ी की कील बनाकर उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर के तेली के कोल्हू अथवा तैलशाला में गाड़ देने पर उसका समस्त तैल नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥

कोकिलाक्षस्य बीजानि तैलयन्त्रस्य मध्यतः ।
निक्षिपेत् तैलभाण्डे वा न तैलं निःसरेत् ततः ॥ ३७ ॥

तैलयन्त्र (कोल्हू) में अथवा कोल्हू के साथ रखे उस पेड़ में, जिसमें कोल्हू का तेल गिरता है, कोकिलाक्षी के बीज उक्त मन्त्र से (श्लोक ३६ में अंकित मन्त्र से) अभिमंत्रित करके छोड़ देने से कोल्हू स्थित बीजों से तेल नहीं निकलेगा ॥ ३७ ॥

रजकस्थानमृद्ग्राह्या वज्राकारन्तु कारयेत् ।
पण्यागारेऽथवा क्षेत्रे क्षिप्तं तत्र विनश्यति ॥ ३८ ॥

'ॐ नमो भगवते वज्रिणे पातय वज्रं सुरपतिराज्ञापयति हुं फट् स्वाहा' ।

जहाँ धोबी कपड़ा धोता है वहाँ की मृत्तिका लाकर एक वज्र जैसी आकृति बनाये । इसे दूकान, खलिहान अथवा खेत में मन्त्र पढ़ कर फेंक देने मात्र से वहाँ का द्रव्य-अन्न नष्ट हो जाता है ॥ ३८ ॥

यत्रेन्द्रचाप उत्तिष्ठेत् तत्र वल्मीकमृत्तिकाम् ।
आदाय कारयेद् वज्रं षट्कोणं दृढमद्भुतम् ॥ ३९ ॥
क्षेत्रमध्ये क्षिपत्येव शस्यनाशो भवेद् ध्रुवम् ।
सुधाभाण्डे विनिक्षिप्य तद्भाण्डञ्च विनश्यति ॥ ४० ॥

'ॐ नमो भगवते वज्रकिरणे वज्रं पातय पातय एह्येहि भगवन् सुरपतिराज्ञापयति स्वाहा' ।

जिस ओर इन्द्रधनुष उगे उसी ओर के किसी दीमक की बाँबी की मिट्टी लाकर एक दृढ़ विचित्राकृति षट्कोण युक्त वज्र निर्मित करे । मन्त्र पढ़ कर खेत में फेंकने से खेती नष्ट हो जाती है । यही नहीं, यह इतना प्रबल है कि अमृत से भरे पात्र को भी नष्ट कर सकता है ॥ ३९-४० ॥

गन्धकं चूर्णितं क्षेप्यं जलकूलेऽभिमन्त्रितम् ।
नाशयेत् सर्वशाकानि सेकादुपवनानि च ॥ ४१ ॥

गन्धक को चूर्ण करके जलशाक पर अथवा उपवन पर श्लोक ४० में अंकित मन्त्र से अभिमन्त्रित कर के फेंकने से शाक एवं उपवन भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

बालुकां श्वेतसिद्धार्थान् प्रक्षिपेत् क्षेत्रमध्यतः ।
शलभाः सरसाः कीटा वराहा मृगमूषिकाः ।
शशकास्तत्र नायान्ति मन्त्रविद्याप्रभावतः ॥ ४२ ॥

बालू और सफेद सरसों मिलाकर खेत में फेंकने से मन्त्रविद्या के प्रभाव

से वहाँ शलभ, मधुमक्षिका, कीड़े, सूअर, मृग, चूहे तथा खरगोश आक्रमण करने में असमर्थ हो जाते हैं।

मन्त्र—ॐ नमः सुरेहो बलजः परि परि शिलि स्वाहा। ॐ नमः सुरासुरान् नमस्कृत्य इमां विद्यां प्रयोजयेत्। विद्यां प्रयोजयेदिमां विद्या मे सिध्यतां शिवे।

जम्बुकानां मूषिकाणां मृगाणां बकानां शशकानामन्येषां प्राणिनां दृष्टिबन्धं करोति। अब नीचे अन्य मन्त्र है—

'आर्द्रपाणौ कृतघ्नस्य तेन पापेन लिप्यते यदि मन्त्रो न व्यतिक्रमेति स्वाहा'।

यह प्रयोग जिसे ऊपर लिखा गया है शृगाल, मूषक, बक, मृग, खरगोश तथा अन्य प्राणियों का दृष्टिबन्धन भी कर देता है।

एतन्मन्त्रद्वयेन बालुकाभिः सह श्वेतसर्षपान् सप्तवारमभिमन्त्र्य क्षेत्रमध्ये निक्षिपेत्। सर्वोपद्रवा नश्यन्ति।

उक्त मन्त्रों से बालू के साथ सफेद सरसों को सात बार अभिमन्त्रित करके खेत में फेंके। समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

मूषजम्बूककीटानां कुरुते तुण्डबन्धनम्।
विद्या चाङ्गदनाथस्य मन्त्रो वा भैरवस्य च॥ ४३॥

अङ्गदनाथ की विद्या अथवा भैरव के मन्त्र से चूहे, शृगाल तथा अन्य कीटों का मुखबन्धन हो जाता है और वह खेती की हानि करने में असमर्थ हो जाते हैं॥ ४३॥

'ॐ नमो जगन्नाथाय हर हर शिलि सर्वेषां त्वं प्राणिनां तुण्डबन्धनं कुरु कुरु हुं फट् स्वाहा'।

अनेन मन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितं वाटिकामध्ये निक्षिप्य पुष्पं फलं सकलं निरुपद्रवं भवति।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे व्याधिजननं
नाम षड्विंशं पटलम्।

उक्त मन्त्र द्वारा जौ को सात बार अभिमन्त्रित करके वाटिका में छिड़क देने से वहाँ के पुष्प, फल आदि उपद्रव से प्रभावित नहीं होते।

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के
व्याधिजनन नामक छब्बीसवाँ पटल समाप्त।

सप्तविंशं पटलम्

आश्चर्यगुटिका

स्नुक्क्षीरं कानकं बीजं चूर्णं भाव्यञ्च काञ्चनैः ।
वस्त्रेण वेष्टितञ्चैव क्षुरस्येव तु रंहसा ।
छिद्यते केशसङ्घातं सवस्त्रमतिकौतुकम् ।। १ ।।

अब आश्चर्यकारी गुटिका का वर्णन किया जाता है । सेहुंड या थूहर नामक पौधे से निकला दूध तथा काले धतूरा के बीज को एक साथ मिलाकर (पीसकर) उससे सुवर्ण में भावना देनी चाहिए । तदनन्तर उसे एक वस्त्र-खण्ड में बाँधे । इसको शिर पर रगड़ने से वस्त्र के साथ ही केशसमूह ऐसे कटते जाते हैं, मानो छूरे से मुण्डन किया गया हो । यह अत्यन्त कुतूहल का विषय है ।। १ ।।

गुञ्जाफलं शुक्तपिष्टं लेपयेत् काष्ठपादुकाम् ।
विना बन्धं नरो गच्छेत् क्रोशमेकं न संशयः ।। २ ।।

गुञ्जाफल को (अम्लयुक्त) काँजी के साथ पीसकर खड़ाऊँ पर लेप करे । इस खड़ाऊँ को पहन कर व्यक्ति बिना बाधा के एक कोस जा सकता है ।। २ ।।

लघुदारुमयं पीठं गुञ्जापिष्टेन लेपयेत् ।
शुष्कमेतज्जले क्षिप्तमुपविष्ट न मज्जति ।। ३ ।।

हलकी लकड़ी का एक पीढ़ा बनाकर उस पर घुमची पीसकर लेपन करे । इसे तपाकर सुखाने के अनन्तर जल में फेंक देने से उस पर जो बैठेगा वह जल के ऊपर बैठा प्रतीत होगा, परन्तु जलमग्न नहीं होगा ।। ३ ।।

गुञ्जाबीजं त्वचोन्मुक्तं चूर्णं भाव्यं नृमूत्रके ।
सप्तवारं ततः कांस्ये लिप्तमङ्कोलवद् भवेत् ।
तैलमादाय तल्लिप्तं पूर्ववत् पादुकागतिः ।। ४ ।।

गुञ्जा (घुमची) के बीजों पर से खोल (छिलका) हटाकर गूदे को पीसे और उसमें मनुष्य के मूत्र की भावना प्रदान करे । अब उसका कांसे के बर्त्तन पर लेपन करे । तदनन्तर इस कांस्यपात्र में ग्रन्थ में अन्यत्र कही गयी प्रक्रियानुसार अंकोल का तेल निकाले । इस तेल का पादुका पर लेपन करके पहनने पर साधक अनायास अतिशीघ्र एक कोस मार्ग अतिक्रमण कर सकता है ।। ४ ।।

जल में प्रदीप जलाना

एरण्डस्य च बीजानि निम्बतैलं तथैव च।
वर्त्ति सर्वेरसोपेतां तैललिप्तां जले क्षिपेत्।
ज्वलिता दीपवत् तिष्ठेद् यावद् वर्त्तिर्न संशयः ॥ ५ ॥

रेंड़ के बीज, नीम का तैल तथा रुई से एक बत्ती बनाये और तेल में लपेट कर जल में फेंके। वह बत्ती जलाने पर दीपक की तरह तब तक जलती रहेगी जब तक कि बत्ती में तैल रहेगा ॥ ५ ॥

नटों की नृत्य से निवृत्ति

शिलातालकसिन्दूररोचनाञ्जनहिङ्गुलम् ।
कूर्मभुक्तमिदं पश्चात् तद्विष्ठां लेपयेत् करे।
नटा नृत्यान्निवर्त्तन्तु दर्शनान्मुष्टिबन्धनात् ॥ ६ ॥

मैनसिल, हरताल, सिन्दूर, गोरोचन, काजल तथा हिंगुल (सिन्दूर) को एकत्र करके उसे किसी कछुए को खिलाये। इसके खिलाने से कछुआ जो मल-त्याग करे उसे हाथ में लपेट कर मुट्ठी बाँध लेना चाहिए। इस मुट्ठी को देखने से नटगण या नटीगण का नृत्य बन्द हो जाता है ॥ ६ ॥

तञ्च कूर्मन्तु सप्ताहं तालकं भोजयेत् शुभम्।
तन्मलैर्लेपयेत् पाणिं मुष्टिबन्धं नटान्तरे।
निवर्त्तन्ते नराः सर्वे सभ्याः पश्यन्ति कौतुकम् ॥ ७ ॥

एक कछुए को ७ दिन तक हरताल खिलाये। तदनन्तर उसके मल द्वारा हाथों का लेप करके नटों के बीच में जाकर मुट्ठी बाँध ले। इससे उनका नृत्य बन्द हो जायेगा। सभ्य लोग इसे कौतूहल की तरह देखेंगे ॥ ७ ॥

अन्धकार में पुस्तक पढ़ना

उलूकस्य कपालेन धृतेनाहृतकज्जलम्।
तेन नेत्राञ्जिते चित्रं रात्रौ पठति पुस्तकम् ॥ ८ ॥

उल्लू की खोपडी में काजल पाड़ (बना) कर आँखों में वह काजल लगाये। साधक अन्धकार में भी पुस्तक पढ़ सकेगा ॥ ८ ॥

उलूकहृदयं पित्तं काकपित्तञ्च शोणितम्।
एतद्वर्त्याञ्जिते रात्रौ विचरेद् दिवसे यथा ॥ ९ ॥
रजनीचरजीवानां वसारक्ताक्षिचूर्णकम्।
अञ्जिताक्षो नरस्तेन कृष्णरात्रौ तु पश्यति ॥ १० ॥

उल्लू का हृदय एवं पित्त, कौए का पित्त तथा रक्त मिलाकर इसकी बत्ती

बनायें। इस बत्ती को जलाकर काजल एकत्र करके नेत्रों में लगाने से अँधेरी रात्रि में भी सब ऐसे दिखलाई पड़ता है मानो वह रात्रि न होकर दिन हो। इसी प्रकार हरिद्रा तथा गिरगिट की चर्बी, उसका रक्त एवं उसके नेत्र को एक साथ पीसकर जो व्यक्ति नेत्रों में लगायेगा, वह अँधेरी रात्रि में भी देख सकता है ॥ ९-१० ॥

शिखिपारावतभवा खञ्जरीटपुरीषजा।
गुटिकास्पर्शमात्रेण तालयन्त्रं भिनत्त्यलम् ॥ ११ ॥

मयूर, कबूतर तथा खंजन पक्षी की बीट को मिलाकर गुटिका बनाये। इसका स्पर्श किसी भी तालयन्त्र में कराते ही वह भग्न हो जाता है ॥ ११ ॥

उलूकव्याघ्रमहिषचासगृध्रविलोचनैः।
स्रोतोऽञ्जनेनाऽञ्जिताक्षो दिवावद्वीक्षते निशि ॥ १२ ॥

'ॐ नमो भगवते रुद्राय ज्योतिषाय शिवायाः पतये दातव्यस्य ते बीजं मे देहि स्वाहा'।

उल्लू, व्याघ्र, भैंसा, गृद्ध एवं चास नामक पक्षी के नेत्रों को स्रोतोञ्जन में मिलाकर नेत्रों में लगाने से व्यक्ति रात्रि में भी देख सकता है। इस अध्याय में जितने भी अंजन-प्रयोग है, सबके लिए ऊपर लिखा मन्त्र विहित है। शिवा को मन-ही-मन निवेदित करके तभी अंजन लगाये ॥ १२ ॥

पाठामूलं गले बद्ध्वा क्षीरभाण्डस्थितं यदि।
जायते तत्क्षणादेव रात्रिदृष्टिर्न संशयः।
गन्धकैरेव धूपेन पुष्पाणामन्यवर्णता ॥ १३ ॥

किसी दुग्धपात्र में रखी हुई पाठा की जड़ को यदि गले में बाँधा जाये तो उस स्थिति में उसे रात्रि में भी दिन के समान दिखलाई पड़ता है।

गंधक के धुएँ में किसी भी पुष्प को रखने से वह तत्क्षण दूसरे रंग का हो जाता है ॥ १३ ॥

कृष्णं श्वानं मृतं रक्षेद् यावत् कृमिकुलाकुलम्।
श्वेतायोपोषितायैव कुक्कुटाय तु तान् कृमीन्।
यथेष्टं भक्षणे दद्याद् विष्ठां तस्य समाहरेत् ॥ १४ ॥
तदन्नं कृमिवल्लोकैर्भक्ष्यमाणं विलोक्यते।
पलायन्ते च तं दृष्ट्वा मूर्च्छन्ति च पतन्ति च ॥ १५ ॥

एक मरे हुए काले कुत्ते को तब तक रखे जब तक उसके शव में कृमि न पड़ जाये। तदनन्तर एक सफेद रंग के मुर्गे को इन कीड़ों को खिलाये, जो अत्यन्त भूखा हो। अब इस मुर्गे की बीट का संग्रह करे।

इस विष्ठायुक्त हाथ से किसी पवित्र वस्तु का भी भोजन करने पर अन्य लोगों को यही परिलक्षित होगा कि साधक कृमियुक्त अन्न खा रहा है। उसे देखते ही लोग भयभीत होकर मूर्च्छित भी हो सकते हैं और गिर भी सकते हैं ॥ १४-१५ ॥

कटुतुम्ब्युत्थतैलेन पारावतभवं मलम्।
सम्यक् वै पेषितं तेन गर्दभस्यास्थि चैव हि ॥ १६ ॥
ललाटे तिलकं तेन कृत्वाऽसौ दृश्यते जनैः।
दशास्यो नात्र सन्देहो यथा लङ्केश्वरो नृपः ॥ १७ ॥

कटुतुम्बी के बीज का तेल, कबूतर की बीट एवं गर्दभ की हड्डी को समान मात्रा में चूर्ण करके पीसे। इसका ललाट पर तिलक करने से देखने वालों को यह प्रतीत होगा कि लंकेश्वर रावण की तरह साधक के दस शिर हैं ॥१६-१७॥

शिग्रुबीजोत्थितं तैलं पारावतपुरीषकम्।
वराहस्य वसायुक्तं शिखिमूलं समं समम् ॥ १८ ॥
ललाटे तिलकं तेन यः करोति स वै जनः।
पञ्चास्यो दृश्यते लोकैर्यथा साक्षात् सदाशिवः ॥ १९ ॥

सहजन के बीज का तैल, कबूतर की बीट, सूअर की चर्बी तथा गाजर की जड़ समान मात्रा में पीसकर ललाट पर तिलक लगाने से लोग उसे साक्षात् पाँच मुख वाले सदाशिव के समान देखेंगे ॥ १८-१९ ॥

सद्योहतस्य वीरस्य ग्राह्यं चौरस्य वा शिरः।
तद्वक्त्रे कृष्णधुस्तूरबीजं वाप्यं समृत्तिकम् ॥ २० ॥

तत्काल मारे गये वीर पुरुष के अथवा चोर के मुँह में मिट्टी भरकर काले धतूरे के बीज को बो दे ॥ २० ॥

रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यामाषाढे भैरवं यजेत्।
नानाविधोपहारैश्च पुष्पधूपाक्षतादिभिः ॥ २१ ॥
शिरः खनेत् कृष्णभूमौ भुक्तोच्छिष्टेन सेचयेत्।
दीपं रात्रौ सदा दद्यात् सूत्रवर्त्याज्यसंयुतम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर आषाढ़ मास की कृष्ण चतुर्दशी में रात्रिकाल में पुष्प, धूप तथा अक्षतादि के द्वारा देवदेव भैरव की अर्चना करे।

काली मिट्टी वाली जमीन में उस मस्तक को गाड़ दे। तदनन्तर भोजन के बाद मुख धोकर कुल्ले के जल से नित्य उसका सेचन करे और रात में वहाँ सूतों से बनाई गयी बत्ती द्वारा घृत का प्रदीप जला दे ॥ २१-२२ ॥

सकलन्तु भवेद् यावत् तावद्रक्षेच्च पूजयेत् ।
ग्राह्यं कृष्णचतुर्दश्यां बलिं दद्याच्च कुक्कुटम् ।। २३ ।।

जब तक कि खोपड़ी में रखे काले धतूरे के बीज से पौधा निकल कर वृक्ष न बन जाये और उसमें फल उत्पन्न न हों, तब तक उसकी रक्षा तथा नित्य पूजा करे। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में इस वृक्ष को उखाड़े तथा भैरव की अर्चना करके मुर्गे की बलि प्रदान करे ।। २३ ।।

पञ्चाङ्गं पेषयेत् तस्य वटिकां कारयेद् दृढाम् ।
ललाटे तिलकं कुर्यात् स नरो दृश्यते जनैः ।
तादृशश्च सहस्राक्षरूपो नैवात्र संशयः ।। २४ ।।

अब इस वृक्ष का पत्र, पुष्प, फल, जड़ तथा छाल निकाल कर समान मात्रा में पीस लेना चाहिए। इससे एक कड़ी गोली तैयार करके उससे ललाट पर तिलक करे। अब साधक इस प्रकार का लोगों को प्रतीत होगा मानो वह इन्द्र के समान हजारों नेत्रों वाला हो गया है, यह निःसंदिग्ध है ।। २४ ।।

रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां मयूरास्ये विनिक्षिपेत् ।
भृङ्गीबीजं मृदं कृष्णां कृष्णभूमौ निधापयेत् ।। २५ ।।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में एक मोर का मुख लाकर उसमें काली मिट्टी के साथ भृंगराज का बीज रखकर काली मिट्टी वाली भूमि में गाड़ देना चाहिए ।। २५ ।।

तज्जातभृङ्गीं सङ्ग्राह्य ह्यर्चयेद् रक्तपुष्पकैः ।
तत्पुष्पकर्णो पुरुषो मयूरो दृश्यते जनैः ।। २६ ।।

जब इस बीज से भृंगराज का पौधा और पुष्प उत्पन्न हो जाये, तब लाल रंग के पुष्प द्वारा इस पौधे की पूजा करके पौधे में से एक फूल तोड़ना चाहिए। जो व्यक्ति इस पुष्प को कानों में लगा लेगा, उसे लोग मयूर के समान देखेंगे ।। २६ ।।

तद्योगे कृष्णमार्जारमुखे चैरण्डबीजकम् ।
तज्जातैरण्डबीजानामेकं वक्त्रे निधापयेत् ।
तं प्रपश्यन्ति मार्जारं मनुष्या नात्र संशयः ।। २७ ।।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को ही रात्रि में काली बिल्ली के मुख में मृत्तिका के साथ रेंड़ के बीज को भूमि में गाड़ देना चाहिए। इस बीज से पौधा और पौधे में फल उत्पन्न हो जाने पर उसके फल से एक बीज निकाल कर मुख में रख ले। अब लोग साधक को बिल्ली के समान अनुभव करेंगे, यह निःसंदिग्ध है ।। २७ ।।

श्रृगालश्वानमेषाजवदने वापयेत् पृथक् ।
मयूरास्ये यथा भृङ्गी जाता सिद्धिश्च तादृशी ।। २८ ।।

इसी प्रकार श्रृगाल, भेड़ा तथा कुत्ते के मुख में अलग-अलग भृंगराज के बीज बोकर गाड़े । उसी प्रकार काली मिट्टी के साथ बीज भरकर काली मिट्टी वाली भूमि में गाड़ना चाहिए । पूर्ववत् प्रयोग द्वारा पूर्ववत् सिद्धि मिलती है । अर्थात् इनका पौधा उग आने पर उसके पुष्प को मुख में रखने से व्यक्ति उसी प्रकार का जन्तु दीखने लगता है, जिस जन्तु के मुख से उगे पौधे के बीज उसने मुख में रखे हैं ।। २८ ।।

मृता या श्वपची नारी तस्या योनौ तु खादिरम् ।
कीलकं निक्षिपेत् पश्चात् दग्धा भस्म समुद्धरेत् ।
तेनैव तिलकं कृत्वा श्वपची रूपधृग्भवेत् ।। २९ ।।

मृता चाण्डाली की योनि में खदिर की लकड़ी का एक कील डालकर रखे । तदनन्तर इस कील को लाकर भस्म करके उस भस्म को ललाट पर लगाये । अब साधक को सब लोग चाण्डाली के रूप में ही देखेंगे ।। २९ ।।

रक्तगुञ्जाफलं वाथ नृकपाले च सेचयेत् ।
जातं फलं क्षिपेद् वक्त्रे स्त्रीरूपो दृश्यते नरः ।। ३० ।।

इसी प्रकार मनुष्य (स्त्री) की खोपड़ी में लाल घुमची के बीज बोकर सींचे । जब उससे वृक्ष निकल कर फल भी आने लगे, तब उस फल को मुँह में रखने पर लोग उसे स्त्री के ही समान रूपधारी देखेंगे ।। ३० ।।

विषं गुञ्जोत्थितं तैलं सर्पपित्तञ्च पेषयेत् ।
सकुष्ठं तिलकं यस्य तं पश्यति मयूरवत् ।। ३१ ।।

विष, घुमची का तेल, साँप का पित्त तथा कूठ, इन्हें मिलाकर मर्दन करके ललाट पर तिलक करने से लोग उस साधक को मयूर के समान देखते हैं ।।३२।।

विषगुञ्जोत्थतैलेन पाणिलेपेन कुञ्जरः ।
भल्लूकः पादलेपेन जिह्वालेपेन चन्द्रमाः ।
गणेशः कुक्षिलेपेन श्रीश्च सर्वाङ्गलेपतः ।। ३२ ।।

विष एवं घुमची के तेल को पीसकर हाथ में लेपन करने से वह साधक हस्तिरूप प्रतीत होता है । पैर में लगाने से उल्लू प्रतीत होता है, जिह्वा में लेप करने से चन्द्रमा के समान, उदर पर लेप करने से गणेश के समान तथा सर्वाङ्ग पर लेप करने से श्रीरूप प्रतीत होता है ।। ३२ ।।

रात्रावङ्कोलतैलेन लिप्ताजो दृश्यते नरः ।
दीर्घदंष्ट्रोर्ध्वरोमा च रूपं रौद्रं वहन्नरः ।। ३३ ।।

रात्रि में अंगों में अंकोल का तैल लगाने से लोग साधक को बड़े दाँतों वाला, उठे हुए रोयें वाला और भीषण रूप वाला देखते हैं ॥ ३३ ॥

नवभाण्डे विनिक्षिप्य छिन्ननासान्तु मूषकम् ।
सनासं कृकलासश्च पृथग्भाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ३४ ॥
उपवासत्रये जाते तयोर्दद्यात् तु भोजनम् ।
मलं तयोः पृथक् ग्राह्यं तेन नासां प्रलेपयेत् ।
छिन्ननासो प्रदृश्येत क्षीरलेपान्निवर्त्तते ॥ ३५ ॥

एक चूहे के नाक में छिद्र करके उसे एक नये पात्र में रखे। अन्य एक पात्र में नाक में बिना छेद किये एक गिरगिट को रखे। उन्हें तीन दिन तक भूखा रखकर तब उन्हें भोजन देना चाहिए। अब उनके मल को पृथक्-पृथक् लेकर नाक पर लगाये। यह साधक सबको नाककटा प्रतीत होगा। पुनः खीर का लेप नाक पर करने से पूर्व अवस्था को प्राप्त होगा ॥ ३४-३५ ॥

अश्वस्य तु मृतं बालं गृहीत्वा तस्य चोदरे ।
हरिद्रां खण्डशः कृत्वा क्षिपेद् यावत् प्रपूर्यते ॥ ३६ ॥
तं रात्रौ निखनेद् भूमौ मन्त्रेणानेन पूजयेत् ।
तत् पञ्चाङ्गं समुद्धृत्य रजनीं शोष्य पेष्य च ॥ ३७ ॥
'ॐ अरु ॐ रः' ।

घोड़ी के एक मृत बछड़े को लाकर उसका उदर निकाले। उसमें खूब अच्छी तरह कच्ची हल्दी के टुकड़ों को भर दे। रात्रि में उसे भूमि में गाड़ कर उक्त मन्त्र से उसका पूजन करना चाहिए। तदनन्तर उसका पौधा उत्पन्न होने पर उसके पञ्चाङ्ग (शाखा, जड़, पत्ते, छाल एवं पुष्प) को तेज धूप में सुखाकर पीसे। उस समय भी मन्त्र पढ़े।

श्वेतदूर्वारनालैश्च हरिद्रां तां प्रलेपयेत् ।
तल्लिप्तदेहः पुरुषः पञ्चधा दृश्यते नरैः ॥ ३८ ॥

अब उस पञ्चाङ्ग के पीसे हुए द्रव्य को श्वेत दूब तथा काँजी के साथ पीस कर अंगों में लगाये। उस साधक को देखने वाले पाँच समान रूपों में देखेंगे ॥ ३८ ॥

तां निशां सर्षपं श्वेतं पिष्ट्वा चाङ्कोलतैलतः ।
तल्लिप्ताङ्गं नरं दृष्ट्वा चित्रं पश्यति सप्तधा ।
गोमूत्रेण पुनः स्नानादेक एव प्रदृश्यते ॥ ३९ ॥

पूर्वोक्त हरिद्रा पञ्चाङ्ग तथा श्वेत सरसों को अंकोल तैल में पीसकर शरीर में लेप करे। अब साधक को देखने वाले उसे सात समान रूप में देखते हैं। पुनः गोमूत्र से स्नान कर लेने पर वह एकाकी प्रतीत होने लगेगा ॥ ३९ ॥

अलक्तं तां निशां पिष्ट्वा देहसन्धि प्रलेपयेत् ।
भिन्नः सन्दृश्यते सोऽपि मूत्रस्नानान्निवर्त्तते ॥ ४० ॥

उक्त हरिद्रा के पञ्चाङ्ग को आलता के साथ पीसकर देह की सन्धियों पर लेपन करने से लोगों को साधक के अंग (प्रत्येक सन्धि पर से) अलग-अलग प्रकार के प्रतीत होने लगते हैं। गोमूत्र से स्नान करने पर वह पुनः पूर्ववत् एक प्रकार का (स्वाभाविक) प्रतीत होने लगता है ॥ ४० ॥

हरिद्राङ्कोलतैलाभ्यां लिप्ताङ्गो दृश्यते नरः ।
राक्षसोऽपि महारौद्रो ह्यस्य स्नानान्निवर्तते ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्त हरिद्रा (पञ्चाङ्ग) में अंकोल का तैल मिलाकर पीसकर अंग में लगाने से वह व्यक्ति भीषण राक्षस के समान प्रतीत होता है। गोमूत्र से स्नान करने पर वह पुनः स्वाभाविक रूप प्राप्त कर लेता है ॥ ४१ ॥

नरादिसर्वजीवानां ग्राह्यं सद्योहतं शिरः ।
यत्र कृष्णचतुर्दश्यां शणबीजान्वितं वपेत् ॥ ४२ ॥
भृङ्गीधुस्तूरवातारिगुञ्जानां चैकसंयुतम् ।
निखनेत् कृष्णभूम्यन्तर्बलिपूजासमन्वितम् ॥ ४३ ॥

मनुष्य आदि किसी भी जीव का तत्काल कटा मस्तक लेकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि को उस मस्तक में काली मिट्टी में सन के बीज, भृंगराज के बीज, काले धतूरे के बीज, एरण्ड के बीज तथा घुमची के बीज में से कोई एक बीज बोकर काली मिट्टी वाली धरती में गाड़े।

जब तक बीज से पौधा, पुष्प और फल न आये, तब तक यत्नपूर्वक जलसिंचन करता रहे और वहाँ मन्त्र द्वारा (जो ऊपर अंकित किया जा चुका है) बलि-पूजन करता रहे ॥ ४२-४३ ॥

सेचयेत् फलपर्यन्तं तत्र बीजानि चाहरेत् ।
तत्तद्बीजे गते वक्त्रे तत्तद्रूपो भवत्यलम् ॥ ४४ ॥

जब तक उस पौधे में फल नहीं आता तब तक सिंचाई करे। फल आने पर उसके बीज को मूख में रखने पर साधक को वही जीव रूप प्राप्त होगा जिस जीव के मस्तक में बीज बोया गया था ॥ ४४ ॥

इत्येवं कौतुकं लोके नानारूपस्य दर्शनम् ।
मुक्ते बीजे भवेत् स्वस्थो नात्र कार्या विचारणा ॥ ४५ ॥

इस प्रकार से साधक इस लोक में नाना प्रकार के रूपों को धारण करके दिखला सकता है। मुख से बीज निकाल लेने पर वह पूर्व अवस्था को प्राप्त करता है, यह निःसंदिग्ध है ॥ ४५ ॥

कृकलासस्य रक्तेन अर्द्धलिप्तन्तु दर्पणम् ।
संस्थापयेद् गिरेर्मूर्ध्नि ग्रहणं दृश्यते नरैः ॥ ४६ ॥

दर्पण के आधे भाग में गिरगिट के रक्त का लेप करके उसे पर्वत पर रखे । उसमें देखने पर लोगों को चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण का दृश्य प्रतीत होने लगेगा ॥ ४६ ॥

भौमवारे मृतायास्तु तच्चिताङ्गारमाहरेत् ।
मुष्टिद्वयेन तद्बद्ध्वा निमज्य जलमध्यतः ॥ ४७ ॥
ऊर्ध्वं दक्षिणबाहुः स्याद् यथा तोयैर्न सिच्यते ।
तच्छुष्कं चापरं सिक्तं पृथग् रक्षेत् समग्रतः ॥ ४८ ॥

जो स्त्री मंगलवार को मरी हो उसकी चिता का कोयला लाकर हाथों की दोनों मुट्ठी में रखे । जल में जाकर दाहिने हाथ को जल के बाहर करे, ताकि मुट्ठी में स्थित कोयला गीला न हो । बायें हाथ को जल में रखे, जिससे उस हाथ में स्थित कोयला जल से भींग जाये । तदनन्तर बाहर आकर उन दोनों कोयलों को अलग-अलग सुरक्षित रखना चाहिए ॥ ४७-४८ ॥

शुष्काङ्गारकृता रेखा क्षीरभाण्डस्य पूर्वतः ।
चित्रं शुष्यति तत् क्षिप्रमार्द्राङ्गारेण तत् पुनः ।
अग्रतो रेखया पूर्णं भवत्येवाऽतिकौतुकम् ॥ ४९ ॥

आश्चर्य का विषय है कि किसी दूध से भरे पात्र के पूर्व दिशा की ओर सूखे कोयले से रेखा खींचने से उस पात्र का दूध सूख जाता है । अब गीले कोयले से पात्र के सामने रेखा खींचते ही वह पात्र पूर्ववत् दुग्ध से भर जाता है । यह अत्यन्त कौतुक है ॥ ४९ ॥

चौरस्य नासिकादन्तचूर्णं पाणौ प्रलेपयेत् ।
हस्तस्पर्शात् स्फुटत्येव नारिकेलो हि निश्चितम् ॥ ५० ॥

चोर के नाक एवं दाँत को उखाड़ कर उसके चूर्ण को हथेलियों पर लगाये । हाथ के स्पर्श मात्र से नारियल का फल टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा, यह निश्चित है ॥ ५० ॥

भल्लूकास्थिभवैस्तैलैः सर्वसन्धीन् प्रलेपयेत् ।
सङ्घातं नारिकेलस्य धारयेद् यस्तु कौतुकी ॥ ५१ ॥

भालू की अस्थि में स्थित मज्जातैल का लेपन शरीर की समस्त सन्धियों में करना चाहिए । अब साधक एक नारियल का गुच्छा पकड़े ॥ ५१ ॥

स्फुटन्ति पीडनादेव नारिकेलानि कौतुकम् ।
तेनैवाङ्कोलतैलेन स्फुटत्येव न संशयः ॥ ५२ ॥

मामूली आघात मात्र से नारियल फटने लगते हैं, यह एक कौतुक है। इसी प्रकार अंकोल का तैल सन्धियों में लेपन करके नारियल पर मामूली आघात करने मात्र से वह फटने लगता है, यह निःसंदिग्ध तथ्य है ॥ ५२ ॥

कृष्णसर्पो रवौ ग्राह्यस्तद्वक्त्रे कृष्णमृत्तिकाम् ।
क्षिप्त्वाथ वापयेत् तत्र कृष्णधुस्तूरबीजकम् ॥ ५३ ॥

रविवार को एक काला साँप लाकर उसके मुख में काली मिट्टी और काले धतूरे के बीज मिलाकर भरना चाहिए ॥ ५३ ॥

तथा मत्स्यमुखे मृच्च तद्बीजञ्च प्रवापयेत् ।
पृथक् पृथक् क्षिपेद् भूमौ तयोः शाखां समाहरेत् ॥ ५४ ॥

इसी प्रकार एक मृत मछली के मुँह में काली मिट्टी के साथ काले धतूरे के बीजों को भरकर उसे और उक्त साँप के मुँह को अलग-अलग स्थानों पर (काली मिट्टी की भूमि में) गाड़े। जब बीज से पौधा निकल आये तब दोनों पौधों की शाखा अलग-अलग लाकर रक्षित करे ॥ ५४ ॥

सर्पशाखा मत्स्यशाखास्पर्शात् सर्पो भवेद् ध्रुवम् ।
मत्स्यशाखाः सर्पशाखास्पर्शात् मत्स्या भवन्ति हि ॥ ५५ ॥

सर्पमस्तक वाली शाखा का स्पर्श मछली वाली शाखा से कराने से सर्प निकलते हैं और मछली वाली शाखा का स्पर्श सर्प वाली शाखा से कराने पर मछलियाँ निकलने लगती हैं, यह निश्चित है ॥ ५५ ॥

क्षिप्त्वा तच्चूर्णकं क्षेत्रे धौतवस्त्रेण छादयेत् ।
प्रातः प्रयत्नतो नित्यं दिनानामेकविंशतिः ।
ततस्तद्वस्त्रखण्डन्तु जलैः सिक्त्वा निपीडयेत् ॥ ५६ ॥
मृत्तिकायां ततो धान्यं वापयेत् तत् प्ररोहति ।
तद्वस्त्राच्छादितं शीघ्रं सर्वधान्यानि कौतुकम् ॥ ५७ ॥

काले धतूरे के बीज को पीसकर किसी खेत में छिड़क कर उस स्थान को श्वेत वस्त्र से ढाँक दे। प्रातःकाल नित्य २१ दिनों तक वस्त्र को भिगाकर उसे उस भूमि पर निचोड़े और पुनः ढाँक दे।

अब इस गीली भूमि पर (२१वें दिन) धान्य को बोने से वह तत्काल अंकुरित हो जाता है। उस वस्त्र से ढाँक देने पर उसमें धान्य भी उत्पन्न होने लगता है। यह अत्यधिक कौतुक का विषय है ॥ ५६-५७ ॥

निक्षिपेत् सर्वधान्यानि सार्द्रगर्दभचर्मणि ।
सिञ्चेत् कुक्कुटरक्तेन त्रिसप्ताहन्तं नित्यशः ॥ ५८ ॥
जाताङ्कुरे च संरक्षेन्निवार्यं जायते क्षणात् ।
तद्धान्यं फलपर्यन्तं लोके भवति कौतुकम् ॥ ५९ ॥

इसी प्रकार समस्त धान्य-बीजों को गर्दभ-चर्म के ऊपर गीली काली मिट्टी में बो दे। नित्य मुर्गे के रक्त से उसका सिंचन २१ दिनों तक करे। जब उनमें अंकुर निकलने लगे तब उसकी समस्त बाधाओं से रक्षा करे। उनसे तत्क्षण धान उत्पन्न होने लगता है। इससे लोगों में कौतुक फैलेगा ॥ ५८-५९ ॥

स्नुह्यश्वत्थवटानाञ्च क्षीरमौडुम्बरं तथा।
काकोडुम्बरिकाक्षीरं लौहचूर्णञ्च गन्धकम् ॥ ६० ॥
इष्टिकां वै सर्जरसं तिलतैलञ्च सिक्थकम्।
क्रमोत्तरं तच्च मर्द्यं कुर्यात्तेन कुठारकम् ॥ ६१ ॥
क्षुरिकास्त्रफलं कुम्भं वज्रं नाराचमेव च।
कुठारेणास्य वृक्षादि स्फोटयेच्छेदयेदपि ॥ ६२ ॥

थूहर, पीपल, बरगद, उदुम्बर तथा कठगूलर के पौधों का दुग्ध, लौह चूर्ण, गन्धक, ईंट का चूरा, सर्जरस, तिलतैल तथा मोम को एक से अधिक एकत्र करे। अर्थात् मनसा-पौधे के दुग्ध से अधिक पीपल का दुग्ध, उससे अधिक वट का दुग्ध; इस प्रकार से उत्तरोत्तर एक से अधिक परिमाण में लेकर एक साथ पीसे। इससे एक कुठार का निर्माण करे। इसी से छूरा, तलवार, कुंभ, वज्र, वाण आदि का निर्माण करे। इस कुठार से तो वृक्ष भी काटा जा सकता है। अन्य अस्त्र भी इसी प्रकार काटते, छेदते तथा फोड़ते हैं, जो इस योग से निर्मित होते हैं ॥ ६०-६२ ॥

हरितालं शिलाचूर्णमङ्कुलीतैलभावितम्।
तल्लिप्तवस्त्रं शिरसि स्थितं पश्यति वह्निवत् ॥ ६३ ॥

हरिताल एवं मैनसिल को चूर्ण करके उसमें अंकोल के तैल द्वारा भावना देकर एक वस्त्र पर लेपन करना चाहिए। इस वस्त्र को शिर पर रखने से ऐसा प्रतीत होता है कि शिर पर अग्नि रखी हो ॥ ६३ ॥

सिन्दूरं गन्धकं तालं समं पिष्ट्वा मनःशिलाम्।
तल्लिप्तवस्त्रच्छन्नाङ्गो रात्रौ सन्दृश्यतेऽग्निवत् ॥ ६४ ॥

सिन्दूर, गन्धक, हरिताल तथा मैनसिल को समान मात्रा में पीस कर एक वस्त्र पर लेपन करे। रात्रि में इस वस्त्र से शरीर ढाँकने से साधक अग्नि के समान प्रतीत होने लगता है ॥ ६४ ॥

खद्योतभूलताचूर्णे ललाटे तिलके कृते।
रात्रौ सन्दृश्यते ज्योतिस्तस्मिन् स्थाने तु कौतुकम् ॥ ६५ ॥

जुगनू तथा भूलता (किंचुलक) के चूर्ण का तिलक ललाट पर लगाने से रात्रि में यह प्रतीत होगा मानो तिलकस्थान से ज्योति निकल रही है ॥ ६५ ॥

त्र्यूषणं चूर्णयेदादौ तत्कल्के नरमूत्रकम्।

एकीकृत्य लिपेच्छीर्षे वर्त्तिस्तत्रैव धारयेत् ।
ज्वलन्ति न दहत्येव केशमात्रं न संशयः ॥ ६६ ॥

पहले सोंठ, पीपल तथा कालीमिर्च का चूर्ण करके उसके गाढ़े काढ़े को मनुष्य के मूत्र में मिलाकर इस द्रव्य का शिर पर लेपन करे और उस पर जलती बत्ती रखे । उस साधक का एक भी केश नहीं जलेगा ।। ६६ ।।

मातुलुङ्गस्य बीजानि पुष्ये सौवीरमञ्जनम् ।
एकीकृत्यैव जुहुयाद् धात्रीकाष्ठान्वितेऽनले ।
सन्दृश्यते रुद्रगणो नात्र कार्या विचारणा ॥ ६७ ॥

बिजौरा नीबू के बीज तथा सौवीराञ्जन को पुष्य नक्षत्र में लाकर उसका आँवलेकी लकड़ियों की आग में हवन करे । इससे उस व्यक्ति को रुद्रगण का साक्षात्कार होता है, यह निःसंदिग्ध है ।। ६७ ।।

मुनिपुष्परसे पुष्ये घृष्ट्वा स्रोतोऽञ्जनं ततः ।
अञ्जिताक्षो नरो पश्येन्मध्याह्ने तारकागणम् ॥ ६८ ॥

पुष्य नक्षत्र में अगस्त्यपुष्प के रस में स्रोतोञ्जन को घिसकर उसको नेत्रों में लगाने से दिन में भी आकाशस्थ तारे परिलक्षित होने लगते हैं ।। ६८ ।।

बिल्वपत्ररसैः सिद्धं गुञ्जामूलं जनान्तिके ।
अञ्जिताक्षो नरः पश्येत् पिशाचानतिकौतुकम् ॥ ६९ ॥

एकान्त स्थल पर बेलपत्र के रस में घुमची की जड़ को सिद्ध करे । इसका अंजन आँखों में लगाने से मनुष्य को दिन में भी पिशाचों का दर्शन होगा । यह अत्यन्त कौतुक है ।। ६९ ।।

अङ्गारं शिखिपिच्छेन पिष्ट्वा प्रज्वालितं भवेत् ।
पावकं तन्मुखे धृत्वा वह्नेर्ज्वाला सुदृश्यते ॥ ७० ॥

मोर के पित्त के साथ जले हुए कोयलों को पीसकर उसे पुनः जलायें और उन्हें मुख में रखे । इससे मुख में अग्निशिखा दीखती है, परन्तु मुख नहीं जलता ।। ७० ।।

भल्लातकोद्भवं तैलं मृतमत्स्येषु लेपयेत् ।
ते जीवन्ति जले क्षिप्ताः सद्यः सद्योहता इव ॥ ७१ ॥

तत्काल मृत मछलियों के शरीर में भिलावे का तेल लगाकर उन्हें जल में फेंक दे । वे मछलियाँ तत्काल आहत परन्तु पुनः जीवित मछलियों की तरह जल में जीवित हो जायेंगी (अर्थात् छटपटाते हुए जीवन प्राप्त कर लेंगी) ।। ७१ ।।

धुस्तूरतैलसंयुक्ता विषचूर्णेन लेपिता ।
वर्त्तिः सा ज्वलिता लोकैः पुष्पवद् दृश्यते ध्रुवम् ॥ ७२ ॥

एक बत्ती को धतूरे के तेल से लपेट कर उस पर विषचूर्ण का लेपन करे । जब उसे जलाया जायेगा तब वह लोगों को पुष्प के समान दृष्टिगोचर होगी ॥ ७२ ॥

मण्डूकवसया दीपमरण्ये ज्वालयन् निशि ।
चतुर्दिक्षु च तन्मध्ये सागरो दृश्यते जनैः ॥ ७३ ॥

रात्रि में वनखण्ड के चारों ओर मेढ़क की चर्बी से दीपक जला दें । देखने वालों को उन बत्तियों के बीच में सागर दिखलाई देगा ॥ ७३ ॥

श्वेतखर्जूरमूलन्तु भूलतां श्वेतमभ्रकम् ।
पेषयेच्छिखिपित्तेन मुष्ट्या बद्ध्वा तु तन्निशि ।
गृहोपरि विनिक्षिप्ते दृश्यते ज्वलदग्निवत् ॥ ७४ ॥

सफेद खजूर की जड़, भूलता (किंचुलक) तथा श्वेत अभ्रक को मोर के पित्त के साथ पीसे । उसे मुट्ठी में बाँधकर रात्रि में घर के ऊपर फेंक देने से प्रतीत होता है कि गृह में आग-सी लगी है । अर्थात् वहाँ जलती हुई अग्नि का भ्रम होने लगता है ॥ ७४ ॥

धात्रिकाबीजपिष्टेन लिप्तं कृत्वा प्रयत्नतः ।
बहुकालप्रदीपन्तु दीपो ज्वलति कौतुकम् ॥ ७५ ॥

आमलकी के बीजों को यत्नपूर्वक पीस कर एक बत्ती पर उसका लेप करे । इसके फलस्वरूप बहुत अधिक समय तक दीपक जलता रहता है । यह कौतुक है ॥ ७५ ॥

रक्तार्जुनस्य मूलेन तिलके जलघर्षिते ।
कृते त्वयुतहस्तोऽसौ दृश्यते राक्षसाकृतिः ॥ ७६ ॥

रक्तवर्ण अर्जुन वृक्ष की जड़ को जल में घिसकर ललाट पर तिलक धारण करने से उसे लोग हजारों हाथों वाले राक्षस की आकृति में देखते हैं ॥ ७६ ॥

इत्येवं सर्वयोगानां मन्त्रराजं शिवोदितम् ।
पूर्वमेवायुतं जप्त्वा ततः सिध्यति कौतुकम् ॥ ७७ ॥

इति श्रीसिद्धनागाजुनविरचिते कक्षपुटे कौतुकं नाम सप्तविंशं पटलम् ।

ऊपर अंकित समस्त प्रयोगों को करने से पहले शिव द्वारा उपदिष्ट मन्त्र 'ॐ नमो भगवते रुद्राय उड्डामरेश्वराय बहुरूपाय नानारूपधराय सह सह सस नृत्य नानाकौतुकेन्द्रजालदर्शनाय हुं फट् ठः ठः स्वाहा' का १०००० (दस हजार) जप करके तब यह कौतुक-कर्म करना चाहिए ॥ ७७ ॥

**इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन बिरचित कक्षपुट में कौतुक
नामक सत्ताईसवाँ पटल समाप्त ।**

अष्टाविंशं पटलम्

अथ स्तम्भनम्

गमनोत्थानवाग्बाणखड्गादिशस्त्रकेषु च ।
शत्रुसैन्याशनीनाञ्च स्तम्भनं शम्भुनोदितम् ॥ १ ॥

अब स्तम्भन के सम्बन्ध में कहा जा रहा है । लोगों के चलने, उठने, बोलने तथा बाण, खड्ग प्रभृति शस्त्र के और शत्रुसैन्य एवं वज्र प्रभृति के स्तम्भनार्थ महादेव द्वारा कथित प्रयोग कहा जा रहा है ॥ १ ॥

गतिस्तम्भन

रजन्या हरितालैर्वा भूर्जपत्रे समालिखेत् ।
यन्त्रं हरितसूत्रेण वेष्टयित्वा ततः पुनः ।
शिलायां बन्धयेत् तच्च गतिस्तम्भकरं परम् ॥ २ ॥

हरिद्रा अथवा हरिताल द्वारा भोजपत्र पर स्तम्भन-यन्त्र को अंकित करना चाहिए । उसे हरे रंग के धागे से लपेट कर एक पोटली बनाये । इसे इच्छित व्यक्ति के सामने फेंकने से उसकी गति स्तम्भित हो जाती है । यह सिद्धयोग है ॥ २ ॥

उत्थानस्तम्भन

चर्मकारस्य कुण्डाच्च रजकस्य तथैव च ।
कुण्डान्मलं समुद्धृत्य चाण्डालीऋतुवाससा ॥ ३ ॥
बन्धयेत् पोट्टलीं प्राज्ञो यस्याग्रे तां विनिक्षिपेत् ।
तस्योत्थाने भवेत् स्तम्भः सिद्धयोग उदाहृतः ॥ ४ ॥

पहले चर्मकार के यहाँ से और धोबी के यहाँ से उस कुण्डस्थान का कीचड़ लाये जहाँ चर्मकार चमड़ा धोता है और जहाँ धोबी कपड़ा धोता है । चाण्डाली के ऋतुकालजनित रक्त से रंगे वस्त्र में इन दोनों को बाँधकर एक पोटली बनाये । इसे शत्रु के सम्मुख फेंकने पर उसकी गति वहीं स्तम्भित हो जाती है । यह सिद्धयोग कहा गया है ॥ ३-४ ॥

गोमेषादिस्तम्भन

उष्ट्रस्यास्थि चतुर्दिक्षु निखनेद् भूतले ध्रुवम् ।
गोमेषमहिषीवाजीन् स्तम्भयेत् करिणोऽपि च ॥ ५ ॥

जहाँ गाय, भैंस, घोड़ा या हाथी बाँधे जाते हैं अथवा रहते हैं, वहाँ पर

चारों ओर जमीन में ऊँट की हड्डी गाड़ देने से उसमें रहने वाले पशु, यहाँ तक कि हाथी भी स्तम्भित हो जाते हैं ॥ ५ ॥

लोकस्तम्भन

सिद्धगुञ्जाफलं वाप्यं नृपात्रे पीतमृत्सह ।
निशि कृष्णचतुर्दश्यां त्रिदिनं तत्र जागृयात् ।
नित्यं सिञ्चेज्जलेनैव मन्त्रं पूजाञ्च कारयेत् ॥ ६ ॥
तस्याः शाखा लता ग्राह्या शुभर्क्षे सुनिमन्त्रिता ।
क्षिपेद् यस्यासने तान्तु स्तम्भयत्येव तं ध्रुवम् ॥ ७ ॥

'ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ वज्ररूपाय नमः । ॐ वज्रकिरणे शिवे रक्ष रक्ष भवेद् गाधि अमृतं कुरु कुरु स्वाहा' ।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में मनुष्य की खोपड़ी में पीली मिट्टी के साथ सफेद घुमची का फल बोना चाहिए । वहाँ तीन दिन जागरण करते हुए उक्त मन्त्र से जप करे ।

जब उस बीज से पौधा निकले, तब उसकी शाखा एवं लता को इसी मन्त्र से अभिमन्त्रित करके जिसके आसन के नीचे रखा जायेगा, वह निश्चित रूप से आसन से उठ नहीं सकेगा ॥ ६-७ ॥

मुखस्तम्भन

हरिद्राकारितं पद्मं तालपत्रे सुपूजितम् ।
चत्वरे साध्यमन्त्राङ्कं मुखस्तम्भकरं रिपोः ॥ ८ ॥

'ॐ सहचरवद शायि अमुकस्य मुखं स्तम्भय स्वाहा' ।

तालवृक्ष के पत्ते पर हरिद्रा की स्याही से (हरिद्रा को पीसकर) एक अच्छा कमल बनाकर उसमें शत्रु का नाम लिखे । तदनन्तर उक्त मन्त्र से पूजा करके उसे गाड़ देने पर शत्रु का मुख स्तम्भित हो जाता है । मन्त्र में जहाँ 'अमुकस्य' है वहाँ इसके स्थान पर शत्रु का नाम लेना चाहिए ॥ ८ ॥

वाक्स्तम्भन

अकारः पन्नगाकारः साध्यकर्णे विचिन्तितः ।
करोति वचनस्तम्भं चित्रं देवगुरोरपि ॥ ९ ॥

'ॐ मूकन्तु सुकर्णाय स्वाहा' ।

अपने शत्रु के कानों का ध्यान करके यह चिन्तन करे कि उसमें 'अ' अक्षर सर्पाकृति में विराजित है और मन्त्र का जप करे । इससे देवगुरु बृहस्पति तक की भी वाणी स्तम्भित हो जाती है ॥ ९ ॥

शत्रुस्तम्भन

शतं जप्तेन कीलेन खादिरेणास्य बन्धनम् ।
जायते वैरिणां स्तम्भो दुर्गान्ते कीलितं ध्रुवम् ।। १० ।।

'ॐ स इति मूर्त्तिरुद्राय स्वाहा' ।

खदिर (खैर) की लकड़ी द्वारा एक कीलक बनाकर उक्त मन्त्र से १०० बार अभिमन्त्रित करे और साथ ही यह मन्त्र लिखकर उसमें बाँध भी दे। इसे शत्रु के दुर्ग (किला) में गाड़ देने पर शत्रुओं में स्तम्भन का संचार हो जाता है ।। १० ।।

कुङ्कुमैर्लिखितं पद्मं भूर्ज्जे नामाङ्कितं रिपोः ।
वेष्टितं नीलसूत्रेण सम्यक् स्तम्भकरं भवेत् ।। ११ ।।

'ॐ सह धनेशाय स्वाहा' ।

भोजपत्र पर कुंकुम द्वारा शत्रु का नाम एक पद्म पर लिखकर उसे नीले धागे से बाँधें । यह सम्यक् रूप से स्तम्भन करता है । उक्त मन्त्र से १०० बार अभिमन्त्रित भी करे ।। ११ ।।

शत्रु का वाक्यस्तम्भन

लिखित्वा प्रेतवक्त्रे च साध्यनाम पुरीकृतम् ।
वेष्टितं नीलसूत्रेण श्मशाने प्रोत्थयेत् ध्रुवम् ।
वाक्स्तम्भनं भवेच्छत्रोः शम्भुदेवेन भाषितम् ।। १२ ।।

'ॐ सहश्वेताय अमुकस्य वाचं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा' ।

मृत व्यक्ति (शव) के मुख में पहले यह मन्त्र लिखे । जहाँ 'अमुकस्य' लिखा है वहाँ शत्रु का नाम अंकित करे । इसे नीले धागे से बाँधकर श्मशानभूमि में गाड़े । महादेव का कथन है कि इस युक्ति द्वारा शत्रु का वाक्स्तम्भन हो जाता है ।। १२ ।।

मन, वचन एवं गति का स्तम्भन

यस्याभिधानमुच्चार्यं सप्ताहं जप्यते रिपोः ।
मनोवचोगतिस्तम्भं चेटकं कुरुते ध्रुवम् ।। १३ ।।

'ॐ नमो हुण्डने अमुकस्य मुखं वाचं गतिं स्तम्भय ज्वालागर्दभाग्निमुत्काधिकं बन्ध बन्ध स्तम्भय कुरु च महेप्सितानि ठः ठः हुं फट् स्वाहा' ।

हरिद्रया क्षिपेद् यन्त्रं भूर्जपत्रे समाहितः ।
वेष्टयेद् पीतसूत्रैश्च पीतपुष्पैश्च पूजयेत् ।
स्थापयेत् शिलयोर्मध्ये वाक्स्तम्भो जायते ध्रुवम् ।। १४ ।।

साधक ध्यानमग्न होकर भोजपत्र पर हल्दी द्वारा स्तम्भन-यन्त्र अंकित करे। तदनन्तर उसे दो पत्थरों के बीच में रखे। अर्थात् पहले एक पत्थर उस पर यन्त्र, उस पर पुनः पत्थर रखे। इस प्रकार शत्रु का वाक्स्तम्भन होता है ॥१४॥

बुद्धिस्तम्भन

भृङ्गराजोऽप्यपामार्गः सिद्धार्थं सहदेविका।
तुल्यं तुल्यं वचा श्वेता द्रव्यमेषां समाहरेत् ॥ १५ ॥
लौहपात्रे विनिक्षिप्य द्विदिनान्ते समुद्धरेत्।
तिलके सर्वशत्रूणां बुद्धिस्तम्भकरं भवेत् ॥ १६ ॥

भृंगराज, चिड़चिड़ा, सफेद सरसों, सहदेई और सफेद वचा को समान मात्रा में लेकर लोहे के पात्र में उनका रस निकाल कर दो दिन ढांक कर सुरक्षित रखे। तीसरे दिन उसका तिलक करने पर उसके सभी शत्रु जब उसे देखेंगे, तब उनकी बुद्धि का स्तम्भन होगा ॥ १५-१६ ॥

मन्त्रजप द्वारा मुख तथा गति का स्तम्भन

'ॐ नमो भगवते विश्वामित्राय नमः सर्वमुखीभ्यां विश्वामित्राय विश्वामित्रोद्दापयति शक्त्या आगच्छतु।' अनेन मन्त्रेण नदीं प्रविश्य अष्टोत्तरशताम्बुभिस्तर्पयेत्। शत्रुणो मुखस्तम्भो भवति।

'ॐ नमो ब्रह्मवेसरि रक्ष रक्ष ठः ठः'। अनेन मन्त्रेण सप्त पाषाणान् गृहीत्वा त्रीन् कट्यां बद्ध्वा अपरे मुष्टिकाभ्यां धारणीयाः। चौराणां गतिस्तम्भो भवति।

नदी के जल में खड़े होकर 'ॐ नमो भगवते' से 'आगच्छतु' पर्यन्त के मन्त्र को १०८ बार जपते हुए इसी मन्त्र से १०८ बार तर्पण करे। इससे शत्रु का मुखस्तम्भन होता है।

अन्य प्रयोग से चोरों की गति स्तम्भित होती है। 'ॐ नमो ब्रह्मवेसरि' से 'ठः ठः' पर्यन्त के मन्त्र को जपते हुए सात ढेले लेने चाहिए। इनमें से तीन को कमर में खोंसे तथा दो-दो ढेलों को दोनों मुट्ठी में बन्द करे।

अग्नि, मूषक, बाघ, राजा, चोर तथा शत्रु भय-निवारण

अङ्कुली लक्ष्मणा पुंसी सर्पाक्षी शिखिमूलिका।
विष्णुक्रान्ता जटा नीला पाठा श्वेतापराजिता ॥ १७ ॥
पाटली सहदेवी च मूलश्च सहदेविका।
पुष्यार्के तु समुद्धृत्य मुखे शिरसि संस्थिता ॥ १८ ॥
एकैकं वारयत्येव शस्त्रसन्धारणो नृणाम्।
वह्न्याखुव्याघ्रभूपालचौरशत्रुभयं त्यजेत् ॥ १९ ॥

अंकोल-फल, लक्ष्मणा (सफेद कंटकारी, पुत्रदा), कण्टकारी, सर्पाक्षी अपाङ्ग (गाजर) की जड़, काली अपराजिता, जटामांसी, नीली, पाठा, सफेद अपराजिता, पाटली और सहदेई (पीली तथा श्वेत) की जड़ (इन सबकी जड़) को ऐसे रविवार को लाये जब पुष्य नक्षत्र हो। इन्हें मिलाकर मुख या मस्तक पर धारण करने से, प्रत्येक में शत्रु के शस्त्रस्तम्भन की शक्ति आ जाती है और अग्नि, मूषक, बाघ, राजा, चोर एवं शत्रु जनित भय का निवारण हो जाता है ॥ १७-१९ ॥

बाणस्तम्भन

श्वेतगुञ्जीयमूलन्तु ऋक्षे चोत्तरभाद्रके।
उत्तराभिमुखं ग्राह्यं बाणस्तम्भकरं मुखे ॥ २० ॥

उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में उत्तर की ओर मुख करके सफेद घुमची की जड़ लाकर मुख में रखने पर विपक्ष के बाणों का स्तम्भन हो जाता है ॥ २० ॥

शत्रुभय-निवारण

मूलं शुक्लत्रयोदश्यां ग्राह्यं शिखरिकन्ययोः।
बलामूलं तथा ग्राह्यं पिष्ट्वा तद् गोलकीकृतम्।
धार्यं मूर्ध्नि करे बाहौ सर्वशत्रुनिवारणम् ॥ २१ ॥

शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को अपाङ्ग की जड़, घीकुँआर की जड़ तथा बला की जड़ को लाकर पीसे और उसकी गोली बनाये। इसे शिर अथवा बाहु में धारण करने से समस्त शत्रुभय का निवारण होता है ॥ २१ ॥

संग्राम में शत्रुस्तम्भन

गोजिह्वा हठली द्राक्षा वचा श्वेतापराजिता।
विष्णुक्रान्ता हरिकर्णी सुश्वेता कण्टकारिका ॥ २२ ॥
मूलान्यादाय पुष्यार्के रम्भासूत्रेण वेष्टयेत्।
स्वहस्ते कङ्कणं धार्यं शत्रुस्तम्भकरं रणे ॥ २३ ॥

गोजिह्वा नामक शाक, जलकुम्भी, द्राक्षा, वच, श्वेत अपराजिता, नीली अपराजिता, पलाश एवं श्वेत कण्टकारी की जड़ ऐसे रविवार को लाये, जब कि पुष्य नक्षत्र हो। इसे केले के पेड़ की छाल के सूत से बाँधकर बाहु में कंगन की तरह बाँधने से संग्राम में विजय मिलती है ॥ २२-२३ ॥

पाठा रुद्रा जटा वाथ श्वेता च शरपुङ्खिका।
श्वेतगुञ्जीयकं मूलं पुष्यार्के तु समुद्धृतम्।
प्रत्येकं मुखमध्यस्थं रणेषु स्तम्भकृद् रिपोः ॥ २४ ॥

पाठा, रुद्रा, (रुद्रजटा), जटामांसी, कण्टकारी, शंखपुष्पिका तथा सफेद घुमची की जड़ को ऐसे रविवार को निकाले जब पुष्य नक्षत्र पड़ा हो। इन्हें मुख में रखने से रण में (शत्रु के लिए) साधक भयंकर-सा हो जाता है ॥ २४ ॥

गम्भारीं चैव कुम्भीं च पुष्यार्के तु समुद्धरेत् ।
मूलं तण्डुलतोयेन पिष्ट्वा पीत्वा दिनत्रयम् ।
प्रत्येकं वारयत्येव शत्रुसङ्घं रणे ध्रुवम् ॥ २५ ॥

पुष्य नक्षत्र में पड़े रविवार के दिन गम्भारी एवं कुम्भी की जड़ को लाकर चावल की माड़ में मलकर तीन दिन पीने से वह साधक रण में शत्रु का स्तम्भन करने में निश्चित रूप से सफल होता है ॥ २५ ॥

खड्गस्तम्भन एवं शत्रुबाधा-निवारण

केतकी मस्तके नेत्रे तालमूली मुखे स्थिता ।
खर्जूरे चरणे हृत्स्थे खड्गस्तम्भः प्रजायते ॥ २६ ॥

केतकी पौधे की जड़ को मस्तक एवं आँखों पर, तालमूली की जड़ मुख में तथा खजूर की जड़ पैर तथा वक्षःस्थल में धारण करने से शत्रु के खड्ग का स्तम्भन हो जाता है ॥ २६ ॥

एकत्र त्रीणि मूलानि चूर्णीकृत्य घृतैः पिबेत् ।
प्रातः सायं ततः शत्रुर्यावज्जीवं न बाधते ॥ २७ ॥

श्लोक २६ में वर्णित तीनों जड़ों को एक साथ चूर्ण करके घृत में मिलाकर सुबह एवं रात्रि को पीने से आजीवन शत्रु की बाधा एवं शत्रुविघ्न का प्रकोप नहीं होता ॥ २७ ॥

शिरीषमूलं पुष्यार्के ग्राहयेत् पेषयेज्जलैः ।
अर्द्धाहारे कृते पश्चात् तज्जलं चार्द्धकं पिबेत् ॥ २८ ॥

पुष्य नक्षत्र वाले रविवार को शिरीष वृक्ष की जड़ लाकर जल के साथ पीसे। आधा भोजन करने के पश्चात् इस पीसे हुए द्रव्य का आधा हिस्सा पी लेना चाहिए। तदनन्तर बचा भोजन समाप्त करके पुनः द्रव्य का आधा पी लेना होगा ॥ २८ ॥

यावद्दिनानि तत् पीतं तावत् शस्त्रैर्न बाध्यते ।
तन्मूले तु गले बद्धे खड्गैर्मध्ये न छिद्यते ॥ २९ ॥

जब तक साधक इस प्रकार से उस जल का पान करेगा तब तक उसे कोई शस्त्र पीड़ित नहीं कर सकेगा। यहाँ तक कि लाई गई उक्त जड़ को यदि बकरे के गले में बाँध दिया जाये तो उसे भी कोई खड्ग द्वारा छेदन नहीं कर

सकेगा। (पुष्य नक्षत्र युक्त रविवार को शिरीष की जड़ प्रचुर मात्रा में लाकर रखे और उसमें से नित्य एक-एक टुकड़ा लेकर पीसे और उक्त रीति से उसका पान करे) ॥ २९ ॥

पुंसीमूलञ्च पुष्यार्के वराटस्योदरे क्षिपेत् ।
तं वराटं समानीय फलमध्ये विनिक्षिपेत् ।
तत्फलं मुखमध्यस्थं शस्त्रस्तम्भकरं परम् ॥ ३० ॥

पुष्य नक्षत्र जिस रविवार को पड़े, उस दिन मदार की जड़ उखाड़ कर एक छोटे तावीज में भरे। तदनन्तर इसे एक फल के भीतर भरे। इस फल को मुख में रखने से शत्रु का मुखस्तम्भन हो जाता है ॥ ३० ॥

ग्रस्ते रवौ समुद्धृत्य शरपुङ्खं समन्त्रकम् ।
वक्त्रे यो धारयेन्मौनी शत्रुखड्गैर्न बाध्यते ॥ ३१ ॥

सूर्यग्रहण के समय जो व्यक्ति मौन धारण करके उक्त मन्त्र को पढ़ते हुए सरसों के पोधे की जड़ को उखाड़ कर मौन अवस्था में ही मुख में रखता है, उसे शत्रु की तलवार या खड्ग से आहत होने का भय नहीं रह जाता ॥३१॥

समूलपत्रं शाखां तु विष्णुक्रान्तां विचूर्णयेत् ।
तैलपक्वं ततः कृत्वा तेनैवाङ्गानि मर्दयेत् ।
खड्गादिसर्वशस्त्राणां भवेद् युद्धे निवारणम् ॥ ३२ ॥
'ॐ नुरु रुरु चेतालि स्वाहा' ।

काली (नीली) अपराजिता की जड़, पत्ते, शाखा तथा फूल आदि का चूर्ण करे। उसे तेल में पकाकर सर्वाङ्ग में मले। इससे वह युद्ध में खड्ग आदि शस्त्र के भय से रहित हो जाता है। मन्त्र पूर्ववत् है ॥ ३२ ॥

कृकलासस्य वामाङ्घ्रिं हरितालेन वेष्टयेत् ।
ताम्रपत्रैः पुनर्वेष्ट्य मुखस्थं सर्वशत्रुजित् ॥ ३३ ॥
'ॐ चामुण्डे भयहारिणि स्वाहा' ।

गिरगिट के बायें पैर को लाकर उसे हरिताल द्वारा बाँधे। पुनः उसे ताँबे की महीन चादर के टुकड़े से लपेटे (या ताँबें की तावीज में भरे)। इसे मुख में रखने से समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। प्रयोग में उक्त मन्त्र का १००८ जप करे ॥ ३३ ॥

वज्रहेमाभ्रकं ताप्यं कान्तं सूतं समं समम् ।
सद्यो जम्बीरजैर्द्रावैर्दिनं खल्वे ततः पुनः ॥ ३४ ॥
ब्रह्मवृक्षस्य बीजानि कार्पासास्थीनि राजिका ।
वन्ध्या च जनयित्री च पिष्ट्वा तन्मध्यगं कुरु ॥ ३५ ॥

पूर्वं यन्मर्दितं गोलं लघु सप्तपुटैः पचेत् ।
ततो गजपुटं दद्यान्मुखं रुद्ध्वा धमेद्धठात् ॥ ३६ ॥
तद् गोलं धारयेद् वक्त्रे शस्त्रस्तम्भकरो भवेत् ।
हन्ति रोगं जरामृत्युं गुटिका सुरसुन्दरी ॥ ३७ ॥

हीरा, सोना, अभ्रक, सोनामाखी प्रभृति रत्न, लोहा तथा पारा इन सब द्रव्यों को समान भाग में लेकर ताजे जम्बीरी नीबू के रस को खल में डालकर १ दिन तक मर्दन करके गोली बनाये ।

अब किसी ऐसी स्त्री से जिसे सन्तान कभी हुई ही न हो, अथवा ऐसी स्त्री से जिसका कोई बच्चा कभी मरा न हो, उदुम्बर के बीज, कपास के बीज तथा सरसों को समान मात्रा में पिसवा कर उस गोली के साथ मिलवाये ।

तदनन्तर अत्यन्त धीमी अग्नि में इसे सात बार पुटपाक में पकवाये । तदनन्तर तुरन्त आयुर्वेदोक्त रीति से गजपुट यन्त्र में इसे सात बार पुनः पकाना चाहिए । इस बटी को मुख में रखने से शत्रुओं का स्तम्भन हो जाता है । यह बटी देवताओं को भी प्रिय है । इससे समस्त रोग, असमय का बुढ़ापा तथा मृत्युभय का निवारण हो जाता है ॥ ३४-३७ ॥

सर्वेषामुक्तयोगानां कुम्भकर्णः स्मरेद् यदि ।
आयान्तं सम्मुखं शत्रुसमूहं सन्निवारयेत् ॥ ३८ ॥

'ॐ अहो कुम्भकर्ण महाराक्षस निकषागर्भसम्भूत परसैन्यभञ्जन महारुद्र भगवन् रुद्र आज्ञा अग्नि स्तम्भय ठः ठः' ।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे शत्रुस्तम्भनं
नाम अष्टाविंशं पटलम् ।

औषध निर्माण काल में 'ॐ अहो' से लेकर 'ठः ठः' पर्यन्त मन्त्र को १०००० बार जपे । इससे यह योग सिद्ध हो जाता है । इसे धारण करने से सामने आये शत्रु भी भाग जाते हैं ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट में शत्रु-
स्तम्भन नामक अट्ठाईसवाँ पटल समाप्त ।

ऊनत्रिंशं पटलम्

अथ दिव्यास्त्रम्

अघोरमन्त्र-साधनोपाय

'ॐ अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः'।

पूजा पूर्वमघोरस्य पञ्चलक्षमिदं जपेत्।
ब्रह्मचारी जितक्रोधः पशुसम्बन्धवर्जितः ॥ १ ॥
कुलाचाररतो धीरः सदाचारः सुदीक्षितः।
दिनान्ते नक्तभुक् शुद्धो भूमिशायी जितेन्द्रियः ॥ २ ॥

अघोरमन्त्र की सिद्धि कही जाती है—ब्रह्मचर्यपरायण, क्रोधजयी, पश्वाचार प्रवृत्ति वालों से दूर रहने वाला, कौल मार्ग में निरत, वीर श्रेणी का साधक सदाचार युक्त होकर तथा गुरु द्वारा अभिषिक्त होकर अघोर रूपी शिव की अर्चना के पश्चात् उक्त मन्त्र का पाँच लाख जप करे। इसमें दिन के समय उपवासी रहे। रात्रि में आहार करने के अनन्तर शुद्ध चित्त एवं शुद्ध अन्तःकरण से जितेन्द्रिय होकर भूमि पर शयन करे ॥ १-२ ॥

अञ्जलींस्तर्पयेत् सप्त जपेद् रुद्राक्षमालया।
पञ्चलक्षे कृते जापे होमं कुर्याद् दशांशतः ॥ ३ ॥

पहले सात अंजली जल से तर्पण करे और रुद्राक्षमाला द्वारा ही उक्त मन्त्र का पाँच लाख जप करे। तदनन्तर ५०००० आहुति भी उक्त मन्त्र द्वारा देनी चाहिए ॥ ३ ॥

शिवशक्तिसमुद्भूतं षट्कोणं मेखलान्वितम्।
हस्तमात्रप्रमाणेन खानयेत् कुण्डमुत्तमम् ॥ ४ ॥

हवन का कुण्ड शिवशक्ति से उत्पन्न, षट्कोण तथा मेखलायुक्त हो, इस उत्तम कुण्ड को एक हाथ गहरे गड्ढे में गाड़ दें ॥ ४ ॥

महास्यमहिकर्णञ्च चन्द्रसूर्याग्निलोचनम्।
सदंष्ट्रं तं महाजिह्वमूर्ध्ववक्त्रं विचिन्तयेत् ॥ ५ ॥
घृताक्तं हविरादाय मृगमुख्याख्यमुद्रया।
भैरवास्ये महारौद्रे जुहुयान्मन्त्रसिद्धये।
एवं सन्तोष्य देवेशं मन्त्रश्चैवात्र कथ्यते ॥ ६ ॥

इस कुण्ड में महा विशाल मुखगह्वर वाले, सर्प से विभूषित कानों वाले, अग्नि-चन्द्र-सूर्य रूप तीन नेत्रों वाले, कराल दाँतों से युक्त, लपलपाती जीभ वाले, ऊर्ध्वमुख अघोर का ध्यान करना चाहिए। मन्त्रसिद्धि हेतु मृगी, मुद्रा तथा घृत समन्वित समिधा लेकर उक्त महारौद्र भैरव (कुण्ड) के मुख में होम करके, इस प्रकार देवेश (भैरव) को सन्तुष्ट करे। उसका मन्त्र भी यहाँ कहा जा रहा है ॥ ५-६ ॥

एषा विद्या ह्यघोराख्या सर्वशास्त्रेषु गोपिता।
प्रस्फुटा पश्चिमाम्नाये पञ्चप्रणवसंयुता ॥ ७ ॥

यह अघोर विद्या सभी शास्त्रों में गुप्त रखी गयी है। यह शिवजी के पश्चिम मुख से आविर्भूत है तथा पाँच प्रणवों से युक्त है ॥ ७ ॥

प्रस्फुटा शम्भुदेवेन मेरुतन्त्रे प्रकाशिता।
पूजनाज्जपनाद्धोमात् सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥

यह विद्या शंभुदेव ने मेरुतन्त्र में प्रकाशित की है। इसके द्वारा पूजन, जप तथा होम करने से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ ८ ॥

ब्रह्मास्त्र-साधना

यथा सम्प्राप्यते वीरस्तथेदानीं निगद्यते।
विलिप्य सर्षपान् मन्त्री ब्रह्मपुष्पाणि होमयेत् ॥ ९ ॥

उक्त मन्त्र को सिद्ध करने के अनन्तर बीर साधक जिसके द्वारा ब्रह्मास्त्र प्राप्त कर सकते हैं, अब उस प्रक्रिया को कहा जा रहा है। (कोई भी दिव्यास्त्र सिद्ध करने के पूर्व उक्त प्रक्रिया द्वारा अघोरमन्त्र सिद्ध करे, तब उसे दिव्यास्त्र पाने की साधना करनी चाहिए।)

साधक को चाहिए कि पलाश के फूलों में सरसों के बीजों को लपेट कर हवन करे। यह होम सिद्धिप्रद होता है ॥ ९ ॥

अष्टोत्तरसहस्रन्तु सङ्ख्या सर्वत्र सिद्धिदा।
ब्राह्मी सन्तोषमायाति ब्रह्मास्त्रं सा प्रयच्छति ॥ १० ॥

हवन १००८ संख्यक आहुति से करे। यह संख्या सर्वत्र सिद्धि को देती है। इससे ब्राह्मी देवी प्रसन्न होकर साधक को ब्रह्मास्त्र प्रदान करती हैं ॥ १० ॥

कल्पान्ते क्रुद्धकालाग्निसदृशं कुण्डमध्यतः।
उत्तिष्ठत्यस्त्रमत्युग्रं देवासुरभयङ्करम्।
गृहीत्वा पाणिनाऽस्त्रञ्च सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

'ॐ अघोररूपे श्रीब्राह्मि अवतर अवतर ब्रह्मास्त्रं देहि मे देहि स्वाहा'।

इस मन्त्र से उक्त हवन करना चाहिए। कल्पान्त काल में उस यज्ञकुण्ड से कालाग्नि-तुल्य सुर-असुरों के लिए भी भयंकर अति उग्र अस्त्र उत्पन्न होता है। इसे हाथ में लेने पर सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं ।। ११ ।।

पावकास्त्र-साधना

मेषरक्तेन संलिप्तलाङ्गलीपुष्पहोमतः।
अष्टोत्तरसहस्रेण माहेशी शस्त्रदा भवेत् ।। १२ ।।
कालानलसमप्रख्यं दुर्जयं निर्जरैरपि।
तदादाय करे मन्त्री स्पर्द्धयेत् विद्विषां प्रियम् ।। १३ ।।

'ॐ अघोररूपेण श्रीमाहेश्वरि अवतर अवतर पावकास्त्रं देहि मे देहि स्वाहा'।

पहले अघोरमन्त्र सिद्ध करके लांगली (कलिहारी) के फूलों को भेड़ के रक्त में लपेट कर १००८ आहुति उक्त मन्त्र से देने पर माहेशी देवी प्रसन्न होकर पावकास्त्र प्रदान करती हैं। साधक देवताओं के लिए भी कालानल के समान अजेय हो जाता है। इस अस्त्र को धारण करके वह साधक शत्रुओं के ऐश्वर्य को भी गौण कर देता है ।। १२-१३ ।।

शक्ति अस्त्र-साधना

महिषोत्थेन रक्तेन संयुक्तं कुङ्कुमान्वितम्।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु कौमारी शक्तिदा भवेत् ।। १४ ।।
तया करस्थया मन्त्री साधयेदवनीतलम्।
सर्वराजकमाक्रम्य महेन्द्र इव राजते ।। १५ ।।
'ॐ अघोररूपे श्रीकौमारि शक्ति शस्त्रं देहि मे देहि स्वाहा'।
उलूकशोणिताभ्यक्तबिभीतपत्रहोमतः।

पहले ५ लाख अघोरमन्त्र सिद्ध करके तब भैंसे के खून में कुंकुम को मिलाकर अंकित मन्त्र की १००८ आहुति देने से कौमारी देवी प्रसन्न होकर साधक को शक्ति नामक अस्त्र देती हैं। साधक इस अस्त्र को हाथ में लेकर समस्त पृथ्वी को तथा राजाओं को भी वशीभूत करके इन्द्र के समान भूतल में वह साधक शोभित होता है ।। १४-१५ ।।

चन्द्रहास-साधना

अष्टोत्तरसहस्रन्तु हुत्वा तुष्यति वैष्णवी ।। १६ ।।
चन्द्रहासञ्च सा दत्ते करस्थश्चक्रवर्त्तिजित्।
जगत्यसौ महावीरो राजते वरुणो यथा ।। १७ ।।
'श्रीवैष्णवि अवतर अवतर खड्गं देहि मे देहि स्वाहा'।

पहले ५००००० अघोरमन्त्र सिद्ध करके तदनन्तर उल्लू के रक्त से बहेड़े के पत्तों को सानकर उक्त मन्त्र से १००८ आहुति देने पर वैष्णवी देवी प्रसन्न होकर साधक को चन्द्रहास नामक अस्त्र प्रदान करती है। इसे हाथ में धारण करके साधक समुद्र सहित पृथ्वी का अधिपति होकर वह चक्रवर्त्ती को भी जीत लेता है और वह महावीर साधक जगत् में वरुण के समान विराजित हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

वरुणास्त्र-साधना

मीनस्नेहसमायुक्तवरुणेन्धनहोमतः। ।
अष्टोत्तरसहस्रेण वरुणास्त्रं लभेन्नरः ॥ १८ ॥
मन्त्री पाणिगतं दृष्ट्वा तदस्त्रं वसुधातलम्।
प्लावयन्ति जलौघेन मेघा दर्दुरगर्ज्जिताः ॥ १९ ॥

'ॐ अघोररूपे श्रीवाराहि अवतर अवतर वरुणास्त्रं देहि मे देहि स्वाहा'।

पहले अघोरमन्त्र का ५ लाख जप करे। तदनन्तर साधक मछली के तेल से लिपटी वरुण की लकड़ी के द्वारा उक्त मन्त्र से १००८ आहुति दे। इससे वाराही देवी साधक को वरुणास्त्र देती हैं। साधक के हाथों में इस अस्त्र को देखकर मेघगण पृथ्वी को इतनी वर्षा प्रदान करते हैं कि मेढ़क भी आनन्दित होकर शब्द करने लगते हैं ॥ १८-१९ ॥

वज्रप्राप्ति-साधना

वज्रपल्लवदुग्धाभ्यां होमादैन्द्री प्रसीदति।
अष्टोत्तरसहस्रेण कुण्डमध्ये हुताशनम् ॥ २० ॥
गृहीत्वा पाणिना मन्त्री मारयेद् दुष्टभूभुजः।
तदीयं राज्यमासाद्य कुर्याद्धर्ममनेकधा ॥ २१ ॥

'ॐ अघोररूपे श्रीइन्द्राणि अवतर अवतर वज्रं देहि मे देहि स्वाहा'।

पहले ५ लाख अघोरमन्त्र का जप सिद्ध करके तदनन्तर साधक मनसा वृक्ष के पत्तों को दूध में भिगाकर उक्त मन्त्र से १००८ आहुति प्रदान करे। इससे सन्तुष्ट होकर इन्द्राणी देवी कुण्ड में से वज्र प्रदान करती हैं। साधक इस अस्त्र को हाथों में धारण करके शत्रु राजाओं का ध्वंस करके नाना प्रकार का धर्माचरण कर सकता है ॥ २०-२१ ॥

शूलप्राप्ति-साधना

अष्टोत्तरसहस्रन्तु साज्यं श्रीफलहोमतः।

त्रिशूलं कुण्डमध्योत्थं महालक्ष्मीः प्रयच्छति।
दुर्जयो देवदैत्यानां कैलासमनुगच्छति ॥ २२ ॥

पहले पाँच लाख अघोरमन्त्र सिद्ध करे। तब घृत से लिप्त बेल के फलों से 'ॐ अघोररूपे श्रीमहालक्ष्मि अवतर अवतर शूलं देहि में देहि स्वाहा' मन्त्र द्वारा १००८ आहुति प्रदान करे। महालक्ष्मी प्रसन्न होकर होमकुण्ड में से त्रिशूल निकाल कर साधक को देती हैं। साधक इसे धारण करके सुर तथा असुर गण को भी जीत लेता है और कैलास का अनुसन्धान (पता लगा) करके वहाँ जा सकता है ॥ २२ ॥

नन्दगोपरथप्राप्ति-साधना

अश्वरक्तेन संलिप्य देवदार्विन्धनें हुते।
चतुर्दशसहस्राणि विपरीतप्रयोगतः ॥ २३ ॥
देवि मे रथमुच्चार्य मन्त्रान्ते साधकोत्तमः।
लभते नन्दिगोपाख्यं रथं ब्राह्मीप्रसादतः ॥ २४ ॥
श्वेताश्वं किङ्किणीजालमण्डितं श्वेतकेतनम्।
तमारुह्य महावीरो विचरेद् भुवनत्रये ॥ २५ ॥

'ॐ स्वाहा देहि मे देहि अवतर अवतर लक्ष्मी ब्राह्मी अघोररूपे देहि मे रथम्'।

पहले पाँच लाख अघोर मन्त्र का जप करके, देवदारु की लकड़ी को अश्व (घोड़े) के रक्त से लिप्त करके उक्त मन्त्र को (जो यहाँ अंकित है) १४००० बार पढ़ते हुए उस लकड़ी की आहुति देनी चाहिए। अन्त में साधक 'देहि मे रथं' का उच्चारण करे। ब्राह्मी देवी प्रसन्न होकर नन्दिगोप रथ प्रदान करती हैं।

महावीर साधक सफेद घोड़ों से युक्त, किंकिणी माला से सुशोभित तथा सफेद पताका से मण्डित इस रथ पर आरूढ़ होकर त्रैलोक्य में विचरण करने में समर्थ हो जाता है ॥ २३-२५ ॥

पूजां वक्ष्ये अघोरस्य ह्यस्त्राणां सिद्धिदायिनीम्।
शुभे शुभे गृहे कुर्याद् रक्षां पूर्वं शिवोदिताम् ॥ २६ ॥

अस्त्रों के लिए सिद्धिदायिनी अघोर-पूजा कहता हूँ। इन अस्त्रों को सिद्ध करने के पहले शुभ काल में पवित्र गृह में शिवकथित रक्षा का सम्पादन करे ॥ २६ ॥

अश्वत्थं खदिरोत्थञ्च देवदारुबिभीतकम्।
उदुम्बरोत्थं चिञ्चोत्थं वटोत्थं बिल्वसम्भवम् ॥ २७ ॥

कीलकं पूर्वमारभ्य रुद्रान्तं निखनेत् क्रमात् ।
सुकीलकां हस्तमात्रां ब्रह्ममनुसुमन्त्रिताम् ।। २८ ।।

पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके ईशान कोण तक क्रमशः पहले अश्वत्थ तदनन्तर खदिर, तदनन्तर देवदारु, तदनन्तर बहेड़ा, तदनन्तर उदुम्बर, तदनन्तर चिंचा, तदनन्तर वट, तदनन्तर बिल्व की लकड़ी की एक-एक हाथ की कील को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके गाड़े ।। २७-२८ ।।

कृत्वैवं भस्मना स्नात्वा रक्तकृष्णाम्बरः शुचिः ।
केशजं वाथ दर्भोत्थं धार्यं यज्ञोपवीतकम् ।। २९ ।।
पञ्चमुद्राधरो भूत्वा मृगचर्मकृतासनः ।
करशुद्धि प्रकुर्वन्ति पञ्चभिः प्रणवैः क्रमात् ।। ३० ।।

इस प्रकार सर्वाङ्ग में भस्म मलकर स्नान करके पवित्र होकर लाल या काला कपड़ा पहने और बाल द्वारा अथवा दूर्वा का बना यज्ञोपवीत पहने ।

तदनन्तर मृगचर्मासन पर बैठकर पंचमुद्रा धारण करके निम्नलिखित पञ्चप्रणव—(ॐ, ह्रीं, श्रीं, प्रीं, ऐं) द्वारा क्रमशः करशुद्धि (करन्यास) करें ।। २९-३० ।।

हृच्छिरस्तालुकाबाहुनेत्रेष्वेकैकशो गतः ।
पञ्चभिः प्रणवैश्चास्त्रं स्वस्वनामाङ्कितं न्यसेत् ।। ३१ ।।

तदनन्तर हृदय, मस्तक, तालु, बाहु एवं चक्षु इनका नाम उल्लेख करके पंचप्रणव में से एक-एक के द्वारा एक-एक अंग का अंगन्यास करे ।। ३१ ।।

ॐ ॐ हृदयाय फट् ।
ॐ ह्रीं शिरसे फट् ।
ॐ श्रीं शिखायै फट् ।
ॐ प्रीं कवचाय फट् ।
ॐ ऐं नेत्रत्रयाय फट् ।
ॐ ॐ ह्रीं श्रीं प्रीं ऐं अस्त्राय फट् ।

रोचना मधु कर्पूरं कुङ्कुमं चन्दनं तथा ।
एतैर्मण्डलमालिख्य चतुरस्रं समं शुभम् ।। ३२ ।।

तदनन्तर गोरोचना, मधु, कपूर, कुंकुम तथा चन्दन से एक चतुरस्र मण्डल बनाकर उसमें अष्टदल कमल अंकित करे ।। ३२ ।।

तन्मध्ये ह्यष्टदलं पद्मं मद्यपात्रञ्च कारयेत् ।
सशक्तिपरमेशानं यजेत् तत्क्रम उच्यते ।। ३३ ।।

उसके मध्य में सुरापात्र रखकर पूर्व से लेकर ईशान तक की आठों दिशाओं में इस प्रकार पूजन करे—

पूर्व : ॐ अघोरे ऐं ब्राह्मि अवतर अवतर नमः ।
अग्निकोण : ॐ अघोरे ह्रीं कामेश्वरि अवतर अवतर नमः ।
दक्षिण दिशा : ॐ घोर घोरतरे कौमारि अवतर अवतर नमः ।
नैर्ऋत्यकोण : गं श्रीं वैष्णवि अवतर अवतर नमः ।
पश्चिम दिशा : सर्वंतः श्वेतवाराहि अवतर अवतर नमः ।
वायव्यकोण : सर्वत्रः फें द्रं इन्द्राणि अवतर अवतर नमः ।
उत्तर दिशा : रुद्ररूपे चामुण्डे अवतर अवतर नमः ।
ईशानकोण : क्ष्रौं नमस्ते महालक्ष्मि अवतर अवतर नमः ।
मध्य में : मूलविद्या मन्त्र से परमात्म देवता का पूजन करे ।
अन्त में : ॐ श्रीं कठादिगुरुभ्यो नमः से गुरु पूजन करे । बलि से क्षेत्रपाल की पूजा करे—क्षां क्षीं क्ष्रूं क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नमः बलिं गृह्ण स्वाहा ।। ३३ ।।

अङ्गुष्ठौ गर्भकौ कृत्वा कमले कर्णिका इव ।
अङ्गुल्यष्टार्कपत्राष्टौ पद्ममुद्रा त्वियं भवेत् ।। ३४ ।।
मुष्टिद्वयकनिष्ठाभ्यां विदार्य सृक्कणीद्वयम् ।
करालीयं भवेन्मुद्रा लोलजिह्वाप्रचालनात् ।। ३५ ।।

पहले पंचमुद्रा से पूजन का उल्लेख किया गया है । अब उसका वर्णन किया जाता है ।

(१) दोनों हाथों के अंगूठों को पद्म की कर्णिका के समान हथेली के मध्य में करके शेष आठों अंगुलियों को पत्ते के समान करे । यह पद्ममुद्रा है ।

(२) दोनों मुट्ठियों को बन्द करके कनिष्ठिकाओं को फैलाकर उनसे अपने ओठों को फैलाना ही कराली मुद्रा है ।

(३) जिह्वा को बाहर-भीतर करना ही लोलजिह्वा मुद्रा है ।।३४-३५।।

कनिष्ठान्योन्यमाक्रम्य सङ्कुच्याङ्गुष्ठयोर्द्वयोः ।
मध्यमाभ्यां समाक्रम्य तर्जन्यगौ वृतौ सृतौ ।। ३६ ।।
नीत्वा पराङ्मुखौ नाभौ पृष्ठे लोलां विचिन्तयेत् ।
स्वाहा हुं फें कृतैः कायचालनाद् भैरवी मता ।
मुखस्य विकृताकारकरणाद् विकृतानना ।। ३७ ।।
मुद्रा भवति सामर्थ्यदायिका शङ्करोदिता ।
एषा पूजा समाख्याता कर्त्तव्या मन्त्रसिद्धये ।। ३८ ।।

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे दिव्यास्त्रं
नाम ऊनत्रिंशं पटलम् ।

(४) दोनों हाथों की कनिष्ठिका को परस्पर मिलाकर दोनों अंगूठों को संकुचित करे। तदनन्तर मध्यमा अंगुलियों से दोनों तर्जनी के अग्रभाग को बलपूर्वक लगाकर उन्हें मानो दूर हटाने की चेष्टा की स्थिति में रखे। तदनन्तर दोनों हाथों की अनामिकाओं को उनके पीछे संचालित करे और 'स्वाहा हुं फें' का उच्चारण करके देह को हिलाये-डुलाये। यह है–भैरवी मुद्रा।

(५) मुख को विकृत आकार में करना, यह विकृतानना मुद्रा कही गयी है।

ये मुद्राएँ देह को सामर्थ्य देने वाली हैं। मन्त्रसिद्धि हेतु यह पूजा करें।

(६) तात्पर्य यह है कि पहले ५ लाख अघोर मन्त्र की सिद्धि करके तदनन्तर श्लोक २६ से श्लोक ३७ तक वर्णित विधि के अनुसार पूजन करके तब दिव्य शस्त्रों की साधना करनी चाहिए ॥ ३६-३८ ॥

इस प्रकार श्रीसिद्धनागार्जुन विरचित कक्षपुट के
दिव्यास्त्र नामक उनतीसवाँ पटल समाप्त।

त्रिंशं पटलम्

सर्वसिद्धिकर योग

भागाः षोडश चाज्यस्य सहदेव्यास्त्रिपञ्चकाः ।
त्रयोदश शिलाभागाः पुत्रजीवी द्विभागिका ॥ १ ॥
हस्तापेटारिका सप्त भागा गौराश्चतुर्दश ।
एकादशन्तु दन्त्यास्तु वन्ध्याकर्कोटिकाऽष्ट च ॥ २ ॥
दशभागा रुद्रजटा विष्णुक्रान्ता तदर्द्धिका ।
श्वेतार्कस्य चतुर्भागा लज्जा च नवभागिका ॥ ३ ॥
षड्भागा लक्षणा ज्ञेया द्विषट्का मेषशृङ्गिका ।
चाण्डाली भाग एकः स्यात् त्रिभागा चेन्द्रवारुणी ।
एतत् षोडशकं योगं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥ ४ ॥

गाय का घृत १६ भाग, सहदेवी १५ भाग, शिलाजीत १३ भाग, जीवित्पुत्रिका २ भाग, हस्तापेटारिका की जड़ सात भाग, श्वेत सरसों १४ भाग, दन्ती ११ भाग, बिना फल वाले कर्कोटिका वृक्ष की जड़ ८ भाग, रुद्रजटा १० भाग, अपराजिता की जड़ ५ भाग, श्वेत मदार की जड़ ४ भाग, लज्जावती की जड़ ९ भाग, लक्ष्मणा की जड़ ६ भाग, मेषश्रृंगी की जड़ १२ भाग, चाण्डाली की जड़ १ भाग तथा इन्द्रवारुणी ३ भाग। इन १६ प्रकार के योग को मानव के लिए सर्वसिद्धि देने वाला योग कहा गया है ॥ १-४ ॥

योगस्थापन पद्धति

प्रतियोगं चतुष्कोष्ठे चतुस्त्रिशं तु भागिकाः ।
ग्राहयेदुक्तयोगेन यथा यत्र तथोचितम् ।
एतेषां परिभाषा तु ज्ञप्तिहेतोर्निगद्यते ॥ ५ ॥

अब इस संख्या के अनुसार द्रव्य प्रयोग के लिए कहे गये संकेत को समझ ले। प्रत्येक योग में निम्नोक्त प्रक्रिया के अनुसार रचित मन्त्र के चार घरों में ३४ भाग बनाये। जिस घर में जिस प्रकार का भाग स्थापित हो, कहे गये प्रयोग के द्वारा उसी प्रकार के भाव-समूह को ग्रहण करे। यही है ज्ञान की परिभाषा ॥ ५ ॥

भूर्जपत्रे पटे वाथ चतुरस्रं समालिखेत् ।
रोचनाकुङ्कुमाभ्यान्तु कुर्यात् षोडशकोष्टकम् ।
हां हीं हू हश्चतुर्दिक्षु एकैकं बीजमालिखेत् ॥ ६ ॥

(अब श्लोक ५ में अंकित परिभाषा को स्पष्ट किया जाता है) एक भोजपत्र या वस्त्र पर पहले चतुरस्र बनाकर गोरोचन एवं कुंकुम की स्याही से सोलह कोष्ट बनाये (चतुरस्र भी इसी स्याही से बनाना होगा)। मण्डल के चारों कोणों में 'हाँ' 'हीं' 'हूं' तथा 'हः' को अंकित करे ।। ६ ।।

मात्राष्टकं लिखेद् दिक्षु मम रक्षतु संयुगे ।
मन्त्रेण हुंफडन्तेन प्रणवाद्येन तु क्रमात् ।
रुद्ध्वा पाशाङ्कुशाभ्यान्तु रेखाग्रे वज्रमालिखेत् ।। ७ ।।

अब मण्डल के पूर्व से लेकर ईशानकोण पर्यन्त की आठों दिशाओं, विदिशाओं में क्रम से 'ॐ हूं फट् मम रक्षतु संयुगे हुं फट्' के आठ शब्द लिखे। इसके बाहर आठों दिशाओं को' 'आं क्रों' मन्त्र से घेर कर रेखा के अग्रभाग में वज्र बनाये ।। ७ ।।

षोडशानान्तु कोष्ठानां मध्ये ह्येकैकमौषधम् ।
स्थापयेत् पूजयेद् धीमांश्चण्डमन्त्रेण भक्तितः ।। ८ ।।
ईशान्यादिक्रमेणैव कुण्डलाकारतो भवेत् ।
स्थापनं पूजनञ्चैव सर्वकामार्थसिद्धये ।। ९ ।।

'ॐ ह्रीं रक्तचामुण्डे तुरु तुरु सर्वसिद्धि कुरु कुरु स्वाहा भवान्यै नमः ।'

उक्त १६ कोष्टों में प्रत्येक में २-२ औषधियों को ऊपर लिखे मन्त्र द्वारा स्थापन करे और इसी मन्त्र द्वारा भक्ति सहित पूजन करे।

औषधि की स्थापना का क्रम ईशान कोण से प्रारम्भ होगा। इस प्रकार सर्वकामनाओं की सिद्धि हेतु पूजा करनी चाहिए ।। ८-९ ।।

जगद्वशकर योग

पूर्वमेवायुतं जप्त्वा सर्वसिद्धिकरो भवेत् ।
कलागुणस्मरैर्द्वाभ्यामङ्गलेपे जगद्वशम् ।। १० ।।

उन सोलहों कोष्टकों में औषधि स्थापना करने के पहले श्लोक ९ के साथ अंकित मन्त्र को १०००० बार जपना आवश्यक है। यह सर्वसिद्धिकर योग है। अब उक्त संख्या से अंकित औषधि में से केवल द्वितीय कोष्ठस्थित औषधि के साथ कला (१६वें), गुण (तीसरे) तथा स्मर (१३वें) भाग में स्थापित औषधि का लेप शरीर पर करने से जगत् वशीभूत हो जाता है ।। १० ।।

युद्धविजय योग

दिगष्टसप्तनवभिः पाणौ लेपे कृते सति ।
योद्धा विजयमाप्नोति यथा दुर्योधने ध्रुवम् ।। ११ ।।

दिग् (दशवें), अष्ट (आठवें), सातवें एवं नवें भाग की औषधि को हाथों पर लेप करके योद्धा को महाबली दुर्योधन जैसे पराक्रमी से भी युद्ध करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है ।। ११ ।।

चौरबाधाहरण योग

मनुस्मरत्रिभिर्वेदैः कृत्वा तु गुटिकां करे।
बाहौ शिरसि कर्णे च धृत्वा चोरैर्न बाध्यते ।। १२ ।।

चौदहवें, तेरहवें, तीसरे तथा चौथे भाग की औषधि उठाकर उसे पीसे एवं गुटिका बनाये। इसे बाँह, शिर एवं कान में धारण करने से चोरजनित पीड़ा नहीं होती ।। १२ ।।

शत्रुजयकर योग

स्मरसूर्येन्दुवसुभिश्चूर्णं कृत्वा जले क्षिपेत्।
तत् पीत्वा परसैन्यन्तु दर्पहीनं प्रजायते ।। १३ ।।

तेरहवें, बारहवें पहले एवं आठवें भाग वाली औषधि को पीसकर उसे जल में छोड़े। इस जल को पीने मात्र से शत्रुसेना दर्पहीन हो जाती है ।। १३ ।।

रुद्रेन्दुषट्कलायुक्तं जले न्यस्तश्च पूर्ववत्।
तिलकं बाहुमूलेन धारयेद् वाथ मूर्द्धनि।
वीरसैन्याः पलायन्ते नात्र कार्या विचारणा ।। १४ ।।

ग्यारहवें, पहले, छठे तथा सोलहवें भाग में रखी औषधि का चूर्ण जल में छोड़ कर पीने से अथवा उसका तिलक बाहु एवं मस्तक पर धारण करने से शत्रुसेना भाग जाती है। इसमें संशय तथा द्विधा है ही नहीं ।। १४ ।।

कलाग्रहयुगैर्बाणैः पिष्ट्वा पादं प्रलेपयेत्।
यथेष्टं जलमध्ये तु गच्छति वा यथा स्थले।
चन्द्रार्कपक्षभुवनैः पादलेपाच्च पूर्ववत् ।। १५ ।।

सोलहवें, नौवें, चौथे तथा पाँचवें भाग की औषधि को एकत्र करके पीसे। उसका पैर में लेप करने से व्यक्ति पानी पर चल सकता है। ऐसा प्रतीत होगा कि मानो वह स्थल पर चल रहा है। इसी प्रकार पहले, बारहवें, दूसरे एवं सातवें भाग की औषधि का लेप करने से भी यही फल मिलता है ।। १५ ।।

वेददिङ्मुनिकामैश्च वक्त्रस्थैर्नाक्रमेत् विषम्।
स्मरार्केषुगुणैर्युक्तं तिलकं शत्रुजिद् भवेत् ।। १६ ।।

चौथे, दसवें, सातवें एवं तेरहवें भाग की औषधि को मुख में धारण करने से विष का प्रभाव नहीं होता। तेरहवें, बारहवें, पाँचवें तथा तीसरे भाग की

औषधि को पीसकर तिलक लगाने से साधक अवश्यमेव शत्रुओं को पराजित कर देता है ।। १६ ।।

सप्तषण्णवपक्षास्तु पुष्यार्के मूलसंयुताः ।
दत्तं धूपं नरस्त्रीणां सर्वलोकवशङ्करम् ।। १७ ।।

पुष्य नक्षत्र युक्त रविवार को सातवें, छठे, नवें एवं पन्द्रहवें भाग में स्थित औषधि को पीसकर उसकी धूप देने पर उस धूप को जो कोई भी सूँघता है, वही वश में हो जाता है ।। १७ ।।

युगेन्दुमुनिपक्षाङ्कैः पेषयित्वा रवेर्दिने ।
पुष्यार्के लेपयेत् स्वाङ्गं सर्वत्र विजयी भवेत् ।
स्पर्शमात्रेण सन्देहः शत्रुवादे भयङ्करः ।। १८ ।।

चतुर्थ, प्रथम, सप्तम तथा पन्द्रहवें भागों में स्थित औषधि को रविवार को वहाँ से उठाकर पीसे। इसे ऐसे रविवार को शरीर में लगाये जब पुष्य नक्षत्र हो (अर्थात् पुष्य नक्षत्र युक्त रविवार को ही इसे पीसना एवं लगाना चाहिये)। इससे सर्वत्र विजय प्राप्त होती है। यदि कोई विरुद्ध व्यक्ति वाद-विवाद भी करता है तब उसे छू लेने मात्र से साधक को विजय मिल जाती है। यह निःसंदिग्ध है ।। १८ ।।

धनधान्यकर योग

गुणषड्नगदिग्भिस्तु युक्तं पञ्चमलैः सह ।
दशांशं धूपलेपोऽयं धनधान्यकरो गृहे ।। १९ ।।
कलारुद्रेन्दुऋतुभिर्लेपनाद् धारणादपि ।
युद्धे वारणविख्यातं तथा लोकवशङ्करम् ।। २० ।।

तीसरे, ,छठे, नवें तथा दशवें स्थान (भाग) स्थित औषधि को अपने मूत्र, विष्ठा, आँखों के कीचड़, कान के मैल तथा नाक के मैल के साथ मिलाकर दशांश धूप का निर्माण होता है। इसे घर में रखने पर धन-धान्य की वृद्धि होती है।

सोलहवें, ग्यारहवें पहले तथा छठे भाग में स्थित औषधि को पीसकर लेप करने से या तावीज में भरकर धारण करने से युद्धविजय एवं सर्वलोकवशंकर योग बनता है ।। १९-२० ।।

पृथ्वी के भीतर निधिदर्शन

तिथिपक्षयुतैः कामैर्दिनैर्दिनचतुष्टयम् ।
नरतैलेन तद्वर्त्तिर्दिवा पश्यति भूनिधिम् ।। २१ ।।

पन्द्रहवें, दूसरे, तेरहवें तथा सातवें भाग में स्थित औषधि को पीसकर एक

बत्ती बनायें। उसे ४ दिनों तक नारियल के तैल में भिगाकर पाँचवें दिन जलाये। इस आलोक में भूगर्भ स्थित निधि दिन में परिलक्षित हो जाती है ॥ २१ ॥

बन्धनमुक्ति

कलाकामगुणैर्द्राभ्यां कृत्वा रक्षां विधारयेत्।
मुच्यते बन्धनाच्छीर्षे कृतदोषक्षयं लभेत् ॥ २२ ॥

सोलहवें, तेरहवें, तीसरे तथा दूसरे भाग में स्थित औषधि को सुरक्षापूर्वक धारण करे। इसे मस्तक पर धारण करे। ऐसा करने से साधक बन्धनमुक्त हो जाता है और पूर्वकृत दोषों का क्षय हो जाता है ॥ २२ ॥

वज्रकाय योग

कलागुणयुगै रुद्रैः शतधा चाज्यपीडितैः।
कर्षमात्रं सदा भोज्ये दद्यान्न पलितं व्रजेत्।
वज्रकायो भवेद् वर्षाज्जीवेद् ब्रह्मदिनं त्रयम् ॥ २३ ॥

सोलहवें, तीसरे, चौथे तथा ग्यारहवें भाग में स्थित औषधि को १०० बार घृत से मर्दित करके एक तोला मात्र भोजन के साथ नित्य लेने से वार्द्धक्य नहीं आता। वह व्यक्ति इस योग को एक वर्ष खाकर वज्र के समान दृढ़ शरीरवाला हो जाता है और ब्रह्मा के तीन दिन पर्यन्त (अर्थात् अतिदीर्घकाल पर्यन्त) जीवित रहता है ॥ २३ ॥

सुन्दरीकरण योग

रुद्रेन्दुमनुनागाश्च नवनीतेन संयुताः।
रविपत्रेण लेपेन नेत्रयोरञ्जनेन च।
पुरुषो जायते रम्यो यथा रम्भा गुणान्विता ॥ २४ ॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कक्षपुटे सर्वसिद्धिकरयोगो नाम त्रिंशं पटलम्।

ग्यारहवें, पहले, चौदहवें तथा आठवें भाग में स्थित औषधियों को मक्खन के साथ मिलाकर मदार के पत्ते के रस के साथ देह में प्रलेप करे अथवा उसका अञ्जन नेत्रों में लगाये। वह व्यक्ति रम्भा के सदृश अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होने लगेगा ॥ २४ ॥

श्रीसिद्धनागार्जुनविरचित कक्षपुट में सर्वसिद्धिकरयोग नाम तीसवाँ पटल समाप्त।

औषधद्रव्य-सूची

पृष्ठ

अ

अंकोल (ढेरा, टेरा — बंगभाषा में इसे बांध कहते हैं) ४३
अजमोदा (यमानी) ३३
अजिनासनः (मृगचर्म) १०
अतिबलाः (ककहिया) १५४
अपामार्ग (चिरचिटा) २१
अलाबूः (लौकी) १५०
अश्वगन्धाः (असगन्ध) ३८

इ

इन्द्रयव (कुरैया के बीज) १५७
इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण) २४

उ

उदुम्बर (गूलर) १७०

क

कटुतुम्बी (कड़वी लौकी) १०६
करवीर (कनेर) २१
कर्कोटिका (खेखसा) १८९
काकतुण्डी (काकनासा या बिछुआ) ८७
काकमाची (मकोय) ६२
काकोली (यह दक्षिण पूर्व नेपाल में मिलती है) ६७
काञ्चनपत्र (कचनार का पत्ता) ६२
काञ्चनीमूल (स्वर्णक्षीरी) ८६
काशीस (कसीस) ७३
कुमारी (घीकुआर) ३२
कुसुम्भ (कुसुमया बर्रे) ३०
केतकी (केवड़ा) १०१
कोकिलाक्ष (तालमखाना) ७९

पृष्ठ

कोषातकी (तरोई या तोरई) १०६

ख

खदिर (खैर) ६७

ग

गुंजा (घुंघची) ३५
गोजिह्वा (गोभी या गाजवाँ) ३४

घ

घृतकुमारी (घीकुआर) ३२

च

चक्रमर्द (चकवड़) ३२
चित्रक (चीता की जड़) १०७

ज

जपा (अरणी, टेकार, अगेथू) ६३

त

तण्डुली (चौलाई का शाक) १५४
तण्डुलोदक (चावल का धोवन) १०९
तार (चाँदी) ७३
तालमूली (काली मुसली) १७८
तिक्ता (कुटकी) १०६
तिलपर्णी (लालचन्दन) ५६

द

देवदाली (सोनैया, घघरबेल) १०१

ध

धात्री (आँवला) ३९

प

पटोली (परवल) १०६
पद्मिनी (कमलिनी) ८२
पाटली (पाढ़ल) १७६
पुत्रजीवी (पितौजिया, जिउतिया) ७६
प्रियंगु (फूलप्रियंगु, गहुला) २८

पृष्ठ

ब

बकपुष्प (मौलसिरी का फूल) ६७
बदरी (बेर) ४४
बला (बरियारा, सहदेई) ९८
बलाद्वय (बला, अतिबला) १५४
बिम्बीफल (कुन्दरू) ४३
बृहती (बड़ी कटेरी, कंटकारी) ३६
बेतसमूल (बेदमुश्क) ७९
ब्रह्मदण्डी (अधःपुष्पी) ११९

भ

भल्लातक (भिलावा) १२३
भूर्जपत्र (भोजपत्र) १९०
भूलता (किंचुलक, केंचुआ) १७०

म

मदनफल (मैनफल) ४३
मधुपुष्प (महुआ) ६५
मर्कटबल्ली (चिरचिटा) ३६
मल्लिका (जूही) ७२
महानीली (काली अपराजिता) २०
मातुलुंग (बिजौरानीबू) ३९
मासी (जटामासी) ११९
मुरा (कपूरकचरी) ११९
मूलिका (मूली) १३६
मेघनाद (चौलाई शाक) २६
मेषश्रृंगी (काकड़ासिंगी) १८९
मोहिनी (उपोदिका या पाषाण भेद) ४३

य

यवक्षार (जवाखार) १५४

र

रक्त अश्वमार (लालकनेर) २३
रुद्रजटा (ईश्वरमूल) ८८
रोचना (गोरोचन) [redacted] २६

पृष्ठ

ल

लक्ष्मणा (पुत्रदा) १७७
लताकरंज (कटकरंज) १५७
लाक्षा (लाख) १०९
लांगली (कलिहारी) २२

व

वज्रीक्षीर (सेंहुड का दूध) १५६
वन्ध्याकर्कोटिका (बाँझ खेखसा) १८९
वरुण (वरना) १८४
वानरीफल (किवाँच) १५१
वासा (अडूसा) २९
विशाला (गोरक्षकर्कटी) ४३
विष (वत्सनाभ) ४३
विषमुष्टि (कुचला) १०६

श

शंखपुंखिका (शंखपुष्पी) १७८
शाल्मली (सेमल) ९६
शिरीष (सिरसवृक्ष) ५२
शैवालपुष्प (जलकुंभी का फूल) ७१
श्वेतबृहती (सफेद कंटकारी) ३६

स

सर्जकील (शालवृक्ष) ११५
सर्जरस (शाल की गोंद) १७०
सर्पाक्षी (सरहरी) १७७
सूर्यावर्त (सफेद हुरहुर) ६२
सैन्धव (सेंधानमक) ७५
सोमराजी (बाकुची) १९३
सौवर्चल (चोहार कोड़ा) ७५
स्नुहीपत्र (सेहुंड के पत्ते) ७३
सिंही (कण्टकारी) २०

ह

हंसपदी (हंसराज की पत्ती) ६२

[redacted]